# बुन्देलखण्ड में शिक्षा, चिकित्सा एवं न्याय व्यवस्था

## (१८८५-१९४७ई०)

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झाँसी

में

पी० एच० डी० की उपाधि हेतु
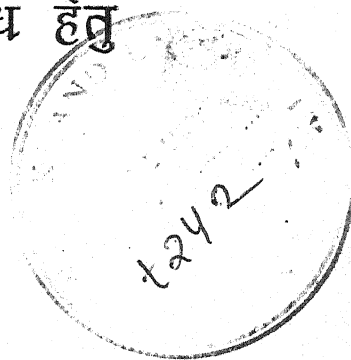
## शोध प्रबन्ध

२००१


शोध निर्देशक

डा० कैलाश खन्ना

एम० ए० पी० एच० डी०

रीडर, इतिहास विभाग

बुन्देलखण्ड कालेज झाँसी

प्रस्तुत कर्ता

अवतार सिंह

Dr. KAILASH KHANNA

M.A. Ph.D.

READER, DEPTT. OF HISTORY
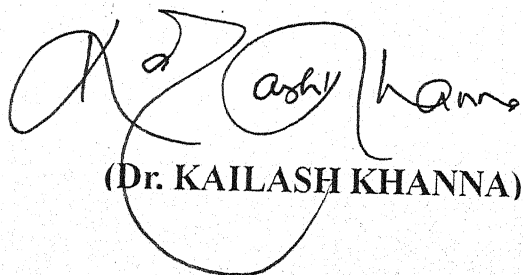
BUNDELKHAND COLLEGE

JHANSI.

## CERTIFICATE

This is to certify that the research work embodied in the thesis submitted for the degree of Ph.D. in History, entitled "बुन्देलखण्ड मे शिक्षा, चिकित्सा एवं न्याय व्यवस्था (1885 – 1947)" is the original research work done by AVTAR SINGH ANAND.

He has worked under my guidance and supervision for the required period.

(Dr. KAILASH KHANNA)

## प्राक्कथन

बुन्देलखण्ड की महत्वपूर्ण भौगोलिक स्थिति के कारण समय समय पर अनेक शोध कर्ताओ ने इस क्षेत्र के विभिन्न पहलुओ की जानकारी प्राप्त करने का प्रयास किया है। अपनी गौरवमयी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के कारण बुन्देलखण्ड ने अनेक इतिहास कारो को अपने अतीत के पन्नो में झांकने के लिये प्रेरित किया है। कई जिज्ञासुओं ने क्षेत्र के महत्वपूर्ण इतिहास को सम्मुख रख कर यहां के आर्थिक एवं सामाजिक विकास की प्रगति की समीक्षा का प्रयत्न किया है।

ब्रिटिश शासन में बुन्देलखण्ड मे शिक्षा की स्थिति, चिकित्सा सुविधाएं उपलब्ध कराने के लिए किये गये विभिन्न प्रयासो एवं तत्कालीन समाज मे हो रहे अपराधों एवं उन्हे रोकने के लिये किये गये उपायों के सम्बन्ध में जानने की इच्छा ने मुझे इस विषय पर शोध कार्य करने के लिये प्रेरित किया। यह सभी वे महत्वपूर्ण पहलू हैं जिनकी प्रगति किसी भी क्षेत्र के विकास के लिये अत्यन्त आवश्यक है। इनकी समीक्षा का प्रयास करके हम तत्कालीन बुन्देलखन्ड के विकास एवं इस सम्बन्ध मे अपनायी गयी नीतियों का आकलन कर सकते है।

"बुन्देलखण्ड मे शिक्षा, चिकित्सा एवं न्याय व्यवस्था" नामक शोध प्रबन्ध के लेखन मे मैं सर्वप्रथम करोड़ो कोटि कल्प तक अपने प्रत्येक जीव पर कृपा दृष्टि रखने वाले ईश्वर को धन्यवाद देता हूं जिसकी असीम कृपा से यह कार्य

पूर्ण हो सका। इस कार्य में मेरे निर्देशक डा. कैलाश खन्ना, रीडर, इतिहास विभाग बुन्देलखन्ड महाविद्यालय, झांसी निरन्तर मेरा मार्गदर्शन एवं मेरी सहायता करते रहे। मैं उनका हृदय से आभारी हूं। बुन्देलखन्ड महाविद्यालय के प्रिंसिपल एवं इतिहास विभाग के अध्यक्ष डा. एस.पी. पाठक के मार्गदर्शन एवं उनके द्वारा निरन्तर दी गई प्रेरणा के प्रति मैं कृतज्ञता प्रकट करता हूं। इतिहास विभाग के अन्य सभी प्राचार्यो के प्रति मैं आभार प्रकट करता हूं जिनसे मुझे पी.एच.डी. करने की प्रेरणा मिली। अपने माता-पिता का मैं सदैव ऋणी रहूंगा जिन्होंने अपने जीवन के अमूल्य क्षण मेरे मार्गदर्शन में लगाये एवं जिनके अथक परिश्रम एवं आर्शीवाद से मैं जीवन में शिक्षा के इस उच्च स्तर तक पहुंच सका।

राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली के अधिकारियों एवं कर्मचारियों के प्रति मैं हार्दिक आभार व्यक्त करना चाहता हूं जिन्होंने इस कार्य के लिये अध्ययन सुविधा उपलब्ध कराकर मेरी सहायता की। मैं अमेरिकन लाइब्रेरी, ब्रिटिश लाइब्रेरी नई दिल्ली, सचिवालय लाइब्रेरी लखनऊ, बुन्देलखन्ड विश्वविद्यालय लाइब्रेरी झ ांसी, बुन्देलखन्ड महाविद्यालय लाइब्रेरी झांसी, झांसी कलेक्ट्रेट अभिलेखागार के अधिकारियों एवं कर्मचारियों का आभारी हूं जिन्होंने मुझे इस शोध कार्य से सम्बन्धित अध्ययन सामग्री एकत्र करने में सहायता प्रदान की।

(अवतार सिंह आनन्द)

# बुन्देलखण्ड मे शिक्षा , चिकित्सा एवं न्याय व्यवस्था

## (1885 – 1947)

## विषय सूची

# अध्याय प्रथम

# बुन्देलखण्ड : भौगोलिक स्थिति एवं संक्षिप्त ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

# बुन्देलखण्ड : भौगोलिक स्थिति एवं संक्षिप्त ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

बुन्देलखण्ड भारत के केन्द्र में स्थित है । ऐसा कहा जाता है कि इसका प्राचीन नाम 'दर्शाण' था । 'दर्शाण' नाम दस नदियों के कारण पड़ा, जो इस प्रकार हैं :- धसान, पार्वती, सिन्ध, बेतवा, चम्बल, यमुना, नर्मदा, केन, टोंस और जामनेर।[1]

बुन्देलखण्ड क्षेत्र 23° 52′ से 26° 26′ उत्तरी अक्षांश तथा 77° 53′ से 81° 39′ पूर्वी देशान्तर के मध्य स्थित है । इसकी भौगोलिक सीमाओं का निर्धारण प्रायः इस प्रकार किया जाता है वह क्षेत्र जिसके उत्तर में यमुना नदी, उत्तर पश्चिम में चम्बल नदी, दक्षिण में जबलपुर तथा सागर, दक्षिण पूर्व में बघेलखण्ड तथा विंध्याचल की पहाड़ियां स्थित हैं उसे हम बुन्देलखण्ड के नाम से पुकारते हैं।[2] अपनी भौगोलिक स्थिति तथा पठारी स्वरूप के कारण यह क्षेत्र सामरिक रूप से हमेशा महत्वपूर्ण रहा है । यमुना, चम्बल, बेतवा, धसान और केन इस क्षेत्र की महत्वपूर्ण नदियां हैं ।

बुन्देलखण्ड के मैदानी भाग में बहुत सी पर्वत श्रेणियां हैं । फ्रैंकलिन ने इस पर्वत श्रृंखला को तीन भागों में विभक्त किया है - विंध्याचल, पन्ना तथा बन्धेर ।[3] विंध्याचल

---

1 मोती लाल त्रिपाठी-बुन्देलखण्ड दर्शन पृष्ठ 27-28

2 एटकिंसन ई.टी.-स्टेटिस्टिकल डिस्क्रिप्टिव एंड हिस्टारिकल एकाउंट आफ दि नार्थ वेस्ट प्रोविन्सस आफ इंडिया भाग-I (बुन्देलखण्ड) - 1874 - पृष्ठ-1.

3 इम्पीरियल गजेटियर आफ इंडिया भाग-II पृष्ठ 264 एवं फ्रैंकलिन-मेमायर आफ बुन्देलखण्ड

पर्वत श्रेणी सिंध नदी पर स्थित सिहोन्दा से शुरू हो कर दक्षिण-पश्चिम में नारवाड़ तक जाती है तथा वहां से दक्षिण-पूर्व में होती हुई उत्तर पश्चिम में अजयगढ़ तथा कालिंजर से होकर जबलपुर और इलाहाबाद के बीच स्थित बरदारह तक जाती है । समुद्र तट से इसकी ऊंचाई कहीं भी 2000 फीट से अधिक नहीं है । वह पठारी भाग जो इस पर्वत श्रृंखला के साथ स्थित है वह 10 से 12 मील चौड़ा है । इस पठार के दक्षिणी भाग में दूसरी पर्वत श्रृंखला जिसे पन्ना श्रृंखला कहा गया है, स्थित है । समुद्रतट से इसकी ऊंचाई 1050 फीट से 1200 फीट के लगभग है । इस श्रृंखला के दक्षिण पश्चिम में बन्धेर श्रृंखला है, जिसके पठार की औसत ऊंचाई समुद्र तट से लगभग 1700 फीट है जो कहीं-कहीं 2000 फीट ऊंचा भी है । क्षेत्र में कहीं-कहीं अलग-अलग पहाड़ियां भी हैं जिनके कारण क्षेत्र को मुगल सम्राटों के आक्रमण से समय-समय पर अभूतपूर्व सुरक्षा प्राप्त हुई है । इन पहाड़ियों से निकलकर अनेक छोटी-छोटी नदियां यमुना में मिलती हैं जिनमें से सिंध तथा उसकी सहायक नदियां पाहुज, बेतवा, धसान, बिरमा, केन, बंगई, पैसुनी तथा टोंस प्रमुख हैं । यह सभी नदियां आमतौर पर उत्तर-पूर्व दिशा में बहती हैं । इनमें से केवल केन नदी खेने योग्य है।[1] इस प्रकार क्षेत्र में बहुत सी नदियां हैं किन्तु क्षेत्र पहाड़ी होने के कारण सिचाई का सदैव महत्वपूर्ण स्थान रहा है और इस उद्देश्य से क्षेत्र में बहुत सी छोटी-छोटी झीलें भी बनाई गई

---

1 इम्पीरियल गजेटियर आफ इंडिया - भाग-II पृष्ठ 266

हैं।[1]

इस क्षेत्र की जलवायु शुष्क है तथा तेज गर्मी पड़ती है । अक्तूबर से मई तक हवाएं दक्षिण-पश्चिम की ओर चलती हैं तथा शेष महीनों में गंगा की घाटी से हवाएं चलती हैं।[2]

ब्रिटिश जिले हमीरपुर, जालौन, झांसी, ललितपुर और बांदा के अतिरिक्त ओरछा, समथर एवं सनद प्राप्त की हुई रियासतें जैसे अजयगढ़, अलीपुर, धुरवई, टोडी फतेहपुर, बिजना, बंका-पहाड़ी, बावनी, बरौन्ध, बेरी, बीहट, बीजावर, चरखारी, कालिंजर की चौबे जागीर, कामता रज्जौला, नैगांव-रिबाई, पालदेव, पहरा, तराउन, छतरपुर, गरौली, गौरीहार, जासो, जिगनी, खनियाधाना, लुगासी, पन्ना और सरिला बुन्देलखण्ड में शामिल थे।[3]

ऐसा कहा जाता है कि इस क्षेत्र का नाम बुन्देला ठाकुरों के नाम पर पड़ा । बुन्देला इस क्षेत्र में निवास करने वाली सबसे महत्वपूर्ण जाति थी ।[4] इस जाति का उदय किस प्रकार हुआ, इसके बारे में ठीक-ठीक जानकारी प्राप्त नहीं होती किन्तु प्रचलित लोक-कथाओं के आधार पर कहा जाता है कि 'बुन्देला' शब्द का सम्बन्ध राजा पंचम से है, जो

---

1 इम्पीरियल गजेटियर आफ इंडिया भाग-II पृष्ठ-266

2 -वही

3 एटकिन्सन ई.टी.-स्टेटिस्टिकल डिस्क्रिप्टिव एंड हिस्टारिकल एकाऊंट आफ दि नार्थ वैस्ट प्रोविन्सस आफ इंडिया भाग-I (बुन्देलखण्ड) इलाहाबाद 1874 पृष्ठ-1

4 इम्पीरियल गजेटियर आफ इंडिया

काशी (बनारस) और कान्तित के गहरवाड़ राजाओं का वंशज था। । पंचम ने अपने भाइयों द्वारा राज्य से निष्कासित किए जाने पर विंध्याचल में शरण ली और वह विंध्याभासिनी भवानी का भक्त हो गया । वहां रहते हुए उसने स्वयं को देवी की बलि के रूप में प्रस्तुत करने का प्रण किया । अपने इस प्रण को पूरा करने के लिए जब उसने अपने शरीर पर घाव किया तभी अचानक भवानी प्रकट हुई और उसे ऐसा करने से रोका । उसकी भक्ति से प्रसन्न होकर देवी ने उसे आर्शीवाद दिया कि उसका राज्य उसे पुनः मिल जाएगा तथा खून की वह बूंदें जो उसके शरीर के घाव से निकल कर गिर पड़ी थीं, उसके बदले में उसके वंशजों को बुन्देला कहा जाएगा ।[1] इस प्रकार पंचम की बलि से बुन्देला वंश का उदय हुआ ।[2]

लेकिन इतिहासकार इलियट उपरोक्त कथा को बुन्देला वंश के उदय का कारण नहीं मानते । उसके अनुसार हरदेव, जो गहरवाड़ जाति का था, खैरागढ़ से एक बांदी को साथ लेकर आया तथा ओरछा के समीप रहने लगा,वहां उसे करार के खंगार राजा से अपनी पुत्री के विवाह का निमंत्रण मिला । शुरू में उसने ऐसा करने से मना कर दिया

---

1 ई.टी. एटकिन्सन-स्टेटिस्टिकल डिस्क्रिप्टिव एंड हिस्टारिकल एकाउंट आफ नार्थ वैस्टर्न प्रोविन्सस आफ इंडिया-भाग-I (बुन्देलखण्ड)-इलाहाबाद 1874 पृष्ठ-19.

2 इम्पीरियल गजेटियर आफ इंडिया भाग IX पृष्ठ 68.

किन्तु बाद में इस शर्त पर विवाह की स्वीकृति दे दी कि राजा अपने सगे-सम्बन्धियों के साथ उसके यहां आकर उसके साथ भोजन करे ताकि जाति के भेदभाव को पूरी तरह समाप्त किया जा सके। खंगार राजा ने इसकी स्वीकृति दे दी । इसके पश्चात् गहरवाड़ों ने बेतवा और धसान नदियों के बीच स्थित उस क्षेत्र पर अधिकार कर लिया जो अभी तक खंगार जाति के अधीन था । 'बुन्देला' या 'बन्देला' नाम इसलिए पड़ा क्योंकि इस विवाह के फलस्वरूप जो पुत्र पैदा हुआ वह एक बांदी अर्थात् दासी का पुत्र था ।[1]

ऐसा माना जाता है कि बुन्देलखण्ड में कुछ लोग दक्षिण से आए जिन्होंने धीरे-धीरे पुराने हिन्दू राजाओं को वहां से हटा दिया जो आन्तरिक झगड़ों और मुसलमानों के आक्रमणों के कारण बहुत कमजोर हो चुके थे।

इस प्रकार इस क्षेत्र का इतिहास सदियों पुराना है । 17वीं शताब्दी के आखिरी वर्षों में बुन्देला राजा छत्रसाल इस क्षेत्र में प्रसिद्ध हुआ । अपने पिता की मृत्यु के समय उसकी आयु 14 वर्ष थी । उसने अपने पिता की मृत्यु का बदला लेने के लिए तथा अपने परिवार की खोई हुई शक्ति पुनः प्राप्त करने के लिए किसी प्रभुत्वशाली शासक एवं नेता की सेवा

---

1 ई.टी.एटकिन्सन-स्टेटिस्टिकल डिस्क्रिप्टिव एंड हिस्टारिकल एकाउंट आफ दि नार्थ वैस्ट प्रोविन्सस़ आफ इंडिया भाग-I (बुन्देलखण्ड) इलाहाबाद - 1874-पृष्ठ 20

करने का निश्चय किया । उसने औरंगजेब के विरूद्ध मालवा और बुन्देलखण्ड के राजाओं को संगठित करने का प्रयास किया ।[1] उसे अपने प्रयासों में काफी सफलता भी प्राप्त हुई। उसने ओरछा के सरदार को वहां बने मन्दिरों को नष्ट होने से बचाने के लिए प्रेरित किया और इस प्रकार उस लड़ाई का प्रारम्भ हुआ जो तब तक चलती रही जब तक कि बुन्देला पूरी तरह स्वतंत्र नहीं हो गए ।[2] 1671 ई. में बुन्देला जाति का प्रमुख चुने जाने पर छत्रसाल पन्ना की तरफ बढ़ा । उसने हर दिशा में शत्रुओं को नष्ट किया तथा अंग्रेजी सेना को क्षेत्र में आने से रोका । इस प्रकार उसने न केवल मुगलों के विरूद्ध सफलता प्राप्त की बल्कि क्षेत्र के उन हिन्दू सरदारों पर भी विजय प्राप्त की जिन्होंने उसकी अधीनता मानने से इन्कार कर दिया था या जिन्होंने उसकी योजनाओं के कार्यान्वयन में उसका साथ नहीं दिया था। इनमें धरेर का सरदार तथा बंका का आनन्द राय शामिल थे । बंका के आनन्द राय को यद्यपि आस-पास के मुसलमान गवर्नरों द्वारा पूरी सहायता प्राप्त थी तथापि गढ़कोटा में बुरी तरह पराजित होना पड़ा।[3] इस युद्ध के बाद छत्रसाल ने बन्सा और बड़ी पिटारी को लूटा और

---

1 ई.टी.एटकिन्सन-स्टेटिस्टिकल डिस्क्रिप्टिव एंड हिस्टारिकल एकाउंट आफ नार्थ वैस्टर्न प्रोविन्सस आफ इंडिया-भाग-I (बुन्देलखण्ड)-इलाहाबाद 1874-पृष्ठ-20

2 -वही- पृष्ठ-25

3 -वही- पृष्ठ-25

बाकीखान के क्षेत्र में जा घुसा । यहां उसने सैय्यद बहादुर को हराया और सिन्ध, ग्वालियर, कंजिया, दयापुर तथा दमोह शहरों को नष्ट किया । इस प्रकार उसने पश्चिमी बुन्देलखण्ड पर पूरी तरह से अधिकार कर लिया । गढ़कोटा को अपने अगले युद्ध का केन्द्र बनाकर वहां से उसने रामदुल्ला के नेतृत्व में लड़ने वाले आस-पास के मुगल शासकों को पराजित किया । इसके बाद उसने दक्षिण की ओर ध्यान दिया और सम्राट के लिए भेंट ले जाने वाली एक सौ गाड़ियों के काफिले को लूट लिया । इस पर बुन्देला जाति के प्रभुत्व को खत्म करने के लिए बहादुरखान के नेतृत्व में तुर्कों की एक बड़ी सेना इस क्षेत्र में भेजी गई। वह सिरावा में बुरी तरह पराजित हुआ और इतना अपमानित होकर लौटा कि उसे दोबारा सेना का नेतृत्व करने का अवसर बड़ी मुश्किल से प्रदान किया गया । उसने बुन्देलखण्ड पर पुनः आक्रमण किया किन्तु उसे अधिक सफलता नहीं मिली ।[1]

इसी बीच बुन्देला सेनाओं ने वर्तमान बांदा, हमीरपुर, झांसी जिलों को नष्ट करते हुए कालिंजर के किले पर अपना अधिकार कर लिया था । छत्रसाल की बढ़ती हुई शक्ति को देखकर अनवर खान, मिर्जा सदरउद्दीन तथा हामिद खान को एक-एक करके छत्रसाल के विरूद्ध बड़ी सेना के साथ भेजा गया किन्तु उन्हें सफलता नहीं मिली । अब तक बुन्देलों ने जालौन के दक्षिण परगनों पर आक्रमण कर दिया था, एरेच को जला दिया था, कुचुर,

---

1 ई.टी.एटकिन्सन-स्टेटिस्टिकल डिस्क्रिप्टिव एंड हिस्टारिकल एकाउंट आफ नार्थ वैस्टर्न प्रोविन्सस आफ इंडिया-भाग-I(बुन्देलखण्ड)-इलाहाबाद 1874-पृष्ठ-25.

कुमुर तथा कालपी को लूट लिया था और उरई तथा भड़ेक को नष्ट कर डाला था । इसके बाद छत्रसाल ने भरहत पर आक्रमण कर दिया क्योंकि यहां के निवासियों ने उसकी अधीनता मानने की जो शपथ ली थी उसे तोड़ने की कोशिश की । कोटरा, सैय्यद लतीफ के अधीन था जिसने दो महीने तक बुन्देलों की घेरा बन्दी का सामना किया । अन्ततः एक लाख रूपया लेकर घेरा उठा लिया गया।[1] इसके पश्चात छत्रसाल कालपी और मौघा से कर वसूल करने के लिए आगे बढ़ा। उसने महोबा के जमींदारों से भी संघर्ष किया जिन्होंने लगभग बीस गांवों के निवासियों को उसकी सत्ता को चुनौती देने के लिए प्रेरित किया था । यह संघर्ष धरेर के निकट हुआ। परिणामस्वरूप बहुत से गांव वालों की मृत्यु हो गई और मसकारा को लूट लिया गया। इस संघर्ष के बाद वह जलालपुर आ पहुंचा। जब इन लड़ाइयों की खबर मुगल दरबार में पहुंची तो बुन्देलखण्ड पर अधिकार करने के लिए अब्दुल समद को भेजा गया । उसने छत्रसाल से युद्ध किया जिसने औरंगाबाद के बालदेव को दायीं, धौवा के रायमान को बायीं ओर की सेना का नेतृत्व करने के लिए कहा तथा स्वयं मध्य सेना का नेतृत्व किया। इस घमासान युद्ध में छत्रसाल की विजय हुई।[1] इस युद्ध में छत्रसाल घायल हो गया था। अतः उसने पन्ना में कुछ समय तक विश्राम किया किन्तु जैसे ही उसके घाव ठीक हो गए उसने हरी लाल गज सिंह के क्षेत्र पर आक्रमण करके धन

---

1 ई.टी.एटकिन्सन-स्टेटिस्टिकल डिस्क्रिप्टिव एंड हिस्टारिकल एकाउंट आफ दि नार्थ वैस्ट प्रोविन्सस आफ इंडिया भाग-I(बुन्देलखण्ड) इलाहबाद-1874-पृष्ठ-26.

वसूल किया तथा भेलसा के आस-पास के गांव तथा शहरों को जला दिया। क्षेत्र में इस तहस नहस की खबर सुनकर बहलाल खान द्वारा बुन्देला शक्ति को रोकने की कोशिश की गई किन्तु उसे सफलता न मिली और अपनी पराजय से निराश होकर उसने आत्महत्या कर ली ।[1]

बहलोल खान की मृत्यु के पश्चात छत्रसाल ने साहौदा के मुराद खान के विरूद्ध संघर्ष किया जिसने उसकी अधीनता स्वीकार करने से इन्कार कर दिया था । इस संघर्ष में मुराद खान तथा उसके बहुत से सहयोगी मारे गए तथा दलिल खान ने भविष्य में उसे रकम देना स्वीकार कर लिया । इसके पश्चात मातुन्द के किले पर बुन्देलों ने आक्रमण किया और उस पर अपना अधिकार कर लिया ।

बहादुरशाह (1707-1712ई.) के शासनकाल में छत्रसाल को मुगल दरबार में सम्मानित किया गया और उसके द्वारा विजित स्थानों पर उसके प्रभुत्व को मान्यता दे दी गई ।[2] 1713ई. में फर्रूखशियर दिल्ली की गद्दी पर बैठा । उसने इस क्षेत्र के कुछ परगने एरेच, भान्डेर, कालपी, कोंच, सिहोन्दा, मोदाहा, जालौन और सीपरी मुहम्मद खां बंगेश, जो फरूर्खाबाद के नवाब के नाम से प्रसिद्ध था, को सम्राट की सहायता के फलरूवरूप दे

---

1 ई.टी.एटकिन्सन-स्टेटिस्टिकल, डिस्क्रिप्टिव एंड हिस्टारिकल एकाउंट आफ नार्थ वैस्टर्न प्रोविन्सिस आफ इंडिया भाग-I (बुन्देलखण्ड) इलाहाबाद 1874 पृष्ठ27.

2 ड्रेक ब्रोकमैन डी.एल. - बांदा गजेटियर पृष्ठ 142

दिए।[1] 1721 ई. में मोहम्मद खां बंगेश को इलाहाबाद का गवर्नर नियुक्त किया गया, किन्तु सूबेदार या जागीरदार की हैसियत से उस क्षेत्र पर उसका अधिकार नहीं था।[2]

अक्तूबर, 1728 ई. में जैतपुर पर अधिकार करने के साथ ही बुन्देलखण्ड क्षेत्र में नवाब का पूर्ण प्रभुत्व स्थापित हो चला था लेकिन मार्च, 1729 ई. में इस क्षेत्र में मराठों के उदय ने नवाब की विजय को हार में परिवर्तित कर दिया।[3] इस प्रकार छत्रसाल और बाजीराव की सेनाओं ने मिलकर मोहम्मद खां बंगेश को हरा दिया।[4]

छत्रसाल ने मराठों की सहायता से अपने खोये हुए क्षेत्र पर अधिकार कर लिया । उसे यह आभास हो चुका था कि मराठों की सहायता के बिना उसके राज्य की सुरक्षा सम्भव नहीं थी । अतः उसने अपने राज्य का कुछ भाग मराठों को देने का फैसला किया । अपनी मृत्यु के कुछ समय पूर्व उसने एक वसीयत की जिसके अनुसार पेशवा बाजीराव को अपने राज्य का एक तिहाई भाग इस शर्त पर देना स्वीकार कर लिया कि मराठों द्वारा शेष भाग पर उसके उत्तराधिकारियों का अधिकार बना रहने दिया जाएगा । वे क्षेत्र जो पेशवा

---

1 ड्रेक ब्रोकमैन डी.एल.-बांदा गजेटियर पृष्ठ-142.

2 उ.प्र.जिला गजेटियर, हमीरपुर, 1988 पृष्ठ-43

3 -वही-

4 सरदेसाई जी. एस. - न्यू हिस्ट्री आफ मराठा भाग-II (बम्बई-1948) पृष्ठ 105-107

को दिए गए उनमें कालपी, हट्टा, सागर, झांसी, सिरोंज, गुना, गढ़कोटा और हरदीनगर शामिल थे जिससे 31 लाख रूपया वसूल होता था। छत्रसाल के राज्य के शेष भाग को दो हिस्सों में बांटा गया - पन्ना राज्य, जिसमें कालिंजर, मोहान, एरेच तथा कुछ अन्य क्षेत्र थे, जो उसके बड़े पुत्र हरदीशाह को मिले और जैतपुर राज्य जिसमें हमीरपुर, बांदा, अजयगढ़, चरखारी, जैतपुर और कुछ अन्य क्षेत्र थे जो उसके छोटे पुत्र, जगतराज को मिले।[1] पन्ना राज्य से लगभग 38 लाख रूपए कर वसूली होती थी और जैतपुर राज्य से लगभग 31 लाख रूपए कर वसूल होता था । लेकिन यह राज्य आपसी झगड़ों के कारण इतने कमजोर हो चुके थे कि कोई भी आसानी से इन पर अधिकार कर सकता था । 1747 ई. में पेशवा ने बुन्देलखण्ड के राजाओं के साथ एक नई संधि की जिससे उसके क्षेत्र में इतनी वृद्धि हो गई कि कर वसूली लगभग 16.50 लाख रूपए बढ़ गई तथा पन्ना की हीरों की खानों में भी उसका बराबर भाग रखा गया ।[2]

बालाजी बाजीराव पेशवा के बाद माधोराव 1761 ई. में गद्दी पर बैठा लेकिन

---

1 सरदेसाई जी.एस. - न्यू हिस्ट्री आफ मराठा भाग-II ( बम्बई 1948) पृष्ठ 105-107.

3 ई.टी.एटकिन्सन-स्टेटिस्टिकल डिस्क्रिप्टिव एंड हिस्टारिकल एकाउंट आफ नार्थ वैस्ट प्रोविन्सिस आफ इंडिया भाग-I (बुन्देलखण्ड) इलाहाबाद 1874 पृष्ठ-30.

1772 ई. में उसकी मृत्यु हो गई । उसके बाद उसका भाई नारायणराव गद्दी पर बैठा किन्तु रघुनाथ द्वारा उसकी हत्या कर दी गई । राज्य के दरबारियों द्वारा नारायणराव के बालक पुत्र को गद्दो पर बैठाया गया तथा बालाजा पंडित जो नाना फड़नवीस के नाम से प्रसिद्ध थे, को उसका संरक्षक नियुक्त किया गया ।[1] 6 मार्च, 1775 ई. को रघुनाथ तथा बम्बई सरकार के बीच हुए समझौते के अनुसार सरकार ने रघुनाथ की सहायता करने का निश्चय किया तथा कर्नल कीटिंग को इस समझौते को पूरा करने के लिए भेजा गया । इसी बीच कलकत्ता के सुप्रीम कोर्ट द्वारा इस समझौते की वैधता को मानने से इन्कार कर दिया गया तथा बंगाल से सीधे कर्नल अपटॉन को 1 मार्च, 1776 ई. को पुरन्दा की सन्धि की शर्तों को पूरा करने के लिए भेजा गया। इसी बीच एक युद्ध हुआ तथा कर्नल गोदार्ड को ब्रिटिश सरकार के पक्ष में समझौते के लिए भेजा गया । उसे हिम्मत बहादुर से भी युद्ध करना पड़ा। सालबाई की सन्धि के अनुसार अंग्रेजों ने रघुनाथ का पक्ष छोड़ने का फैसला कर लिया ।[2] हिम्मत बहादुर ने अपनी सहायता के लिए अली बहादुर को बुलाया जिसकी सहायता से वह बुन्देलखण्ड पर आक्रमण करना चाहता था । 28 अगस्त, 1802 ई. को जब अली बहादुर ने कालिंजर पर घेरा डाला हुआ था उस समय उसकी मृत्यु हो

---

1 ई.टी. एटकिन्सन-स्टेटिस्टिकल, डिस्क्रिप्टिव एंड हिस्टारिकल एकाउंट आफ नार्थ वैस्ट प्रोवन्सिस आफ इंडिया भाग-I(बुन्देलखण्ड) इलाहाबाद 1874 पृष्ठ-30.

2 -वही- पृष्ठ 30-31.

गई ।[1]

1801 ई. में सिंधिया तथा होल्कर के बीच युद्ध हुआ । सिंधिया तथा पेशवा की संयुक्त सेनाओं को पूना में 25 अक्तूबर, 1802 ई. को पराजित होना पड़ा । 31 दिसम्बर, 1802 ई. को बेसिन की सन्धि पर हस्ताक्षर किए गए जिसके अनुसार पेशवा ने 26 लाख रूपए की जागीर के मूल्य पर एक ब्रिटिश सेना रखना स्वीकार किया । बाद में इस भूमि को बुन्देलखण्ड में स्थित पेशवा के राज्य की भूमि से बदलने का निश्चय किया गया तथा सेना पर होने वाले खर्च की धनराशि बढ़ाकर 36 लाख रूपए से अधिक कर दी गई ।[2] इन शर्तों को 16 दिसम्बर, 1803 ई. को हुई नई सन्धि में शामिल किया गया । पूना के युद्ध में पेशवा की हार के पश्चात अली बहादुर के पुत्र शमशेर बहादुर ने अपने पिता द्वारा विजित क्षेत्रों पर अधिकार घोषित किया । बेसिन की सन्धि से 1803 ई. में बुन्देलखण्ड का वह क्षेत्र जो मराठों के अधीन था, उस पर अंग्रेजों का अधिपत्य हो गया । 1804 ई. के अन्त में बुन्देलखण्ड में अंग्रेजों का शासन प्रभावशाली बनाने के लिए एक कमीशन की नियुक्ति की गई जिसमें मि. ब्रुक को अध्यक्ष नियुक्त किया गया । कैप्टन बेली जो गवर्नर जनरल का एजेन्ट था एवं सेनाओं के आफिसर कमान्डिंग को इस कमीशन में सदस्य नियुक्त किया

---

1 इम्पीरियल गज़ेटियर आफ इंडिया (सैंट्रल इंडिया) पृष्ठ-367.

2 ई.टी.एटकिन्सन-स्टेटिस्टिकल, डिस्क्रिप्टिव एंड हिस्टारिकल एकाउंट आफ नार्थ वैस्ट प्रोविन्सिस आफ इंडिया भाग-I(बुन्देलखण्ड) इलाहाबाद 1874 पृष्ठ-35.

गया । ब्रूडी को जज तथा मजिस्ट्रेट एवं जे.डी.इरस्किन को क्लेक्टर के पद पर नियुक्त किया गया ।

कैप्टन बैली नवम्बर, 1804 ई. में एक सहायक मीर जाफर के साथ ब्रिटिश सेना के मुख्यालय पहुंचा । उसके कार्यों पर राजा हिम्मत बहादुर का प्रभाव पड़ा क्योंकि राजा हिम्मत बहादुर से प्राप्त जानकारी के आधार पर ही कैप्टन बैली ने अपना राजस्व प्रबन्ध शुरू किया था । कैप्टन बैली द्वारा 1805 ई. में प्रस्तुत रिपोर्ट में दी गई जानकारी के अनुसार बांदा 18 सितम्बर, 1803 ई. को, अगासी 13 सितम्बर, 1803 ई. को, कोरी तथा पारसेला क्षेत्र 6 फरवरी, 1804 ई. को ब्रिटिश राज्य में मिला लिए गए । ये क्षेत्र केन नदी के पूर्वी तट पर स्थित थे । केन नदी के पश्चिमी तट पर स्थित क्षेत्रों में से कालपी को 8 दिसम्बर, 1803 ई. को, कोटरा तथा सैय्यद नगर को 16 दिसम्बर, 1803 ई. को, कुन्छ 28 दिसम्बर, 1803 ई. को, राठ क्षेत्र 26 नवम्बर, 1803 ई. को, जलालपुर 29 जनवरी, 1804 ई. को, खरका 16 जनवरी, 1804 ई. को, पनवाड़ी 7 फरवरी, 1804 ई. को तथा सूपा क्षेत्र 18 मार्च, 1804 ई. को ब्रिटिश राज्य में मिला लिए गए।[1]

**बुन्देलखण्ड एजेंसी का गठन :-**

बुन्देलखण्ड में स्थानीय राज्यों एवं रियासतों को मिलाकर बुन्देलखण्ड एजेंसी का

---

1 ई.टी.एटकिन्सन-स्टेटिस्टिकल, डिस्क्रिप्टिव एंड हिस्टारिकल एकाउंट आफ नार्थ वैस्ट प्रोविन्सिस आफ इंडिया भाग-I(बुन्देलखण्ड) इलाहाबाद 1874 पृष्ठ-39.

गठन किया गया । 1802 ई. में हुई बेसिन की संधि से यहां अंग्रेजी प्रभुसत्ता का प्रारम्भ हुआ जब कैप्टन जान बैली को यहां के शासन प्रबन्ध के लिए पोलिटिकल अधिकारी नियुक्त किया गया ।[1] 1811 ई. में शान्ति व्यवस्था स्थापित हो जाने के बाद गवर्नर जनरल के एजेन्ट की नियुक्ति बुन्देलखण्ड में की गई जिसका मुख्यालय बांदा में स्थित था । 1818 ई. में यह मुख्यालय बांदा से हटाकर कालपी कर दिया गया । 1824 ई. में हमीरपुर तथा पुनः 1832 ई. में बांदा को गवर्नर जनरल के एजेन्ट का मुख्यालय बना दिया गया ।[2] 1835 ई. में इस क्षेत्र का शासन उत्तर पश्चिम प्रान्त के लेफ्टिनैंट गवर्नर को सौंपा गया जिसका मुख्य केन्द्र आगरा में था । 1849 ई. में बुन्देलखण्ड का प्रशासन सागर तथा नर्बदा के कमिश्नर को हस्तान्तरित कर दिया गया तथा उसके सहायक के रूप में झांसी में एक अधिकारी की नियुक्ति की गई । तत्पश्चात यह स्थान बदलकर झांसी से नौगांव कर दिया गया । 1854 ई. में मध्य भारत एजेंसी का गठन हुआ और इस क्षेत्र का प्रशासन मध्य भारत के गवर्नर जनरल के एजेन्ट को सौंप दिया गया । 1862 ई. से 1871 ई. तक बघेलखण्ड तथा बुन्देलखण्ड एजेंसियों का कार्य संयुक्त रूप से किया जाता रहा । 1865 ई. में पोलिटिकल सहायक के स्थान पर पोलिटिकल एजेन्ट की नियुक्ति की गई । 1896 ई. में बरोन्दा, जासो तथा पांच चौबे जागीरें क्रमशः पालदेव, बहरा, तराउन इत्यादि

---

1 इन्ट्रोडक्शन नोट टू बुन्देलखण्ड एजेंसी रिकार्डस-भाग-I 1865-1915.

2 -वही-

बुन्देलखण्ड से बघेलखण्ड में हस्तान्तरित कर दी गई । वित्तीय बचत के उद्देश्य से 1 दिसम्बर, 1931 ई. को बुन्देलखण्ड और बघेलखण्ड दोनों एजेंसियों को मिला दिया गया तथा इस संयुक्त एजेन्सी के अधिकारी को बुन्देलखण्ड का पोलिटिकल एजेन्ट का नाम दिया गया तथा नौगांव को इसका मुख्यालय बना दिया गया ।[1]

बुन्देलखण्ड तथा बघेलखण्ड को मिलाने से 1931 ई. में इस क्षेत्र में 33 रियासतें तथा जागीरें शामिल थीं । इनमें अजयगढ़, अलीपुरा, बंका पहाड़ी, बाउनी, बरोन्दा, बेरी , भैसुन्दा, बीहट, बीजावर, बिजना, चरखारी, छत्तरपुर, दतिया, धुरवाई, गरौली, गौरीहार, जासो, जिगनी, कामता रजौला, कोठी, लुगासी, मेहर, नागौड़, नैगांव, रिबाई, ओरछा(टीकमगढ़), पहरा(चोबपुर), पालदेव(नया गांव), पन्ना, समथर, सरीला, सोहावल, तराउन तथा टोरी फतेहपुर शामिल थे ।[2] सन्धि की गई हुई रियासतों के मुखिया को पूर्ण अधिकारी प्राप्त थे । जिन राज्यों से ब्रिटिश सरकार द्वारा सन्धि की गई थी वे थे - रीवा, ओरछा, दतिया तथा समथर । उनके ये सम्बन्ध मित्रता तथा मराठों से इन रियासतों की रक्षा के वायदे पर आधारित थे, जबकि सनद प्राप्त की हुई रियासतों के साथ यह सम्बन्ध मिश्रित प्रकार के थे । इनमें से बहुत से सरदारों को पेशवा द्वारा बेसिन की सन्धि के अनुसार दी गई भूमि में से कुछ भाग प्राप्त था । इन्हें अली बहादुर के समय में प्राप्त

---

1 इन्ट्रोडक्टरी नोट टू बुन्देलखण्ड एजेंसी रिकार्डस भाग-I 1865-1915

2 -वही-

अधिकार कुछ शर्तों पर ब्रिटिश सरकार द्वारा दे दिए गए थे ।[1]

सनद प्राप्त की हुई रियासतें तीन प्रकार की थीं :-

i) वे जिनमें उत्तराधिकार के आधार पर ब्रिटिश सरकार द्वारा सनद जारी की गई थी

ii) वे जिनमें उन सरदारों के नाम सनद जारी की गई थी जिन्होंने मराठा आक्रमणों से पहले तथा बाद में अपनी सत्ता स्थापित कर ली थी तथा

iii) वे जिनकी स्थापना ब्रिटिश सरकार द्वारा क्षेत्र में शान्ति स्थापित करने के उद्देश्य से की गई थी ।

प्रारम्भ में सरकार ने रियासतों की सुरक्षा की जिम्मेदारी इनके मुखिया सरदारों पर ही छोड़ देने की नीति अपनाई और उनसे कर न लेने का निश्चय किया । किन्तु शीघ्र ही यह अनुभव किया गया कि इन रियासतों को स्वतन्त्र न छोड़कर उन्हें ब्रिटिश सरकार पर निर्भर रखा जाए ।[2]

सनद प्राप्त की हुई ये रियासतें ब्रिटिश सरकार की प्रभुसत्ता स्वीकार करने के लिए वचनबद्ध थीं । एटकिन्सन के अनुसार इनकी संख्या 32 थी जिसमें से आठ पर छत्रसाल के

---

1 ई.टी.एटकिन्सन-स्टेटिस्टिकल, डिस्क्रिप्टिव एंड हिस्टारिकल एकाउंट आफ नार्थ वैस्ट प्रोविन्सिस आफ इंडिया भाग-I(बुन्देलखण्ड) इलाहाबाद 1874 पृष्ठ 46

2 -सम-

उत्तराधिकारियों का शासन था ।

1849 ई. में जैतपुर राज्य को ब्रिटिश शासन में मिला लिया गया जिसे 1853 ई. में हमीरपुर जिले में मिला लिया गया । 1858 ई. में पारस राम की खाड़ी की जागीर को बांदा जिले में ब्रिटिश शासन में मिला लिया गया और 1858 ई. में तराउन जागीर को विद्रोह करने के कारण बांदा में मिला लिया गया । इसी प्रकार धीरे-धीरे अन्य क्षेत्र भी ब्रिटिश शासन में मिला लिए गए।

इस प्रकार बुन्देलखण्ड में बेसिन की संधि के बाद अंग्रेजी राज्य की स्थापना हुई जो 1857 ई. तक लगभग पूरे क्षेत्र में अपना नियंत्रण स्थापित कर चुका था । 1857 ई. में हुए विद्रोह में भी बुन्देलखण्ड की सक्रिय भूमिका रही । झांसी की रानी लक्ष्मीबाई द्वारा 1857 ई. के इस विद्रोह में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई गई । इसके अनेक कारण थे । झांसी के राजा गंगाधर राव ने अपने उत्तराधिकारी के रूप में एक पांच वर्ष के बच्चे को गोद लिया था जिसका नाम दामोदर राव था लेकिन सरकार ने इस गोदनामे को मान्यता प्रदान नहीं की। गंगाधर राव ने बच्चे के व्यस्क होने तक अपनी पत्नी रानी लक्ष्मीबाई को रियासत की रीजेन्ट नियुक्त किया था किन्तु सरकार की अपहरण नीति के कारण इसे मान्यता नहीं दी गई । गंगाधर राव ने ब्रिटिश सरकार को पत्र लिखकर अपने परिवार द्वारा अंग्रेजों के प्रति की गई सेवा का उल्लेख किया किन्तु इसका भी कोई प्रभाव नहीं हुआ ।[1] अन्त में झांसी की

---

1 पाठक एस.पी.-झांसी डयूरिंग दि ब्रिटिश रूल-पृष्ठ 16

रियासत को अंग्रेजी शासन का अंग बना लिया गया । इसके अतिरिक्त झांसी में इस विद्रोह के अन्य कारण भी थे,1854 ई. तक झांसी क्षेत्र में जानवरों के वध की स्वीकृति नहीं थी किन्तु क्षेत्र में अंग्रेजी सत्ता के नियंत्रण से सरकार द्वारा यह रोक हटा ली गई जिसका रानी द्वारा विरोध किया गया किन्तु उसे कोई सफलता नहीं मिली । इसी समय से रानी लक्ष्मीबाई ने हर सम्भव उपाय द्वारा लोगों की धार्मिक भावनाओं में सरकार की हस्तक्षेप नीति का विरोध करना शुरू कर दिया था । इसके अतिरिक्त झांसी में रानी के परम्परागत मन्दिर के खर्च के लिए दिए गए कर रहित गांवों को अंग्रेजों ने अपने अधिकार में ले लिया था । सार्वजनिक शौचालयों की स्थापना का भी विरोध किया गया ।[1]

अनेक बुन्देला एवं मराठा जागीरदार सरकार से इसलिए नाराज थे क्योंकि उनमें से अधिकांश की जागीरें जब्त कर ली गई थीं । इनमें उदगांव, नोनर तथा जिगनी के जागीरदार थे जो अपनी जागीरें जब्त हो जाने के कारण असन्तुष्ट थे । तभी यह अफवाह फैली कि कारतूसों में गाय तथा सुअर की चर्बी प्रयोग की जा रही थी तथा बाजार में जो आटा बिक रहा है उसमें हड्डियों का चूरा मिलाया गया है । बहुत लोगों ने इस अफवाह पर विश्वास किया तथा इसे सच समझा।[2] बांदा में भी सरकार की साम्राज्यवादी नीति से वहां के

---

1 एटकिन्सन ई.टी.-स्टेटिस्टिकल डिस्क्रिप्टिव एंड हिस्टारिकल एकाउंट आफ दि नार्थ वैस्ट प्रोविन्सस आफ इंडिया भाग-I (बुन्देलखण्ड)-1874 पृष्ट 298

2 -वही- पृष्ठ 299

जागीरदार तथा वहां का नवाब रूष्ट थे । असन्तोष की यह लहर बुन्देलखण्ड के लगभग सभी जिलों में व्याप्त थो । अतः पूरे बुन्देलखण्ड में क्रान्तिकारियों ने ब्रिटिश सरकार का डटकर मुकाबला किया । अंग्रेजी शासन की नींव हिल उठी । बुन्देलखण्ड के कलेक्टर मेन के शब्दों में "विद्रोह की खबर आग की तरह फल गई, गांव वाले हर दिशा में उठ खड़े हुए और उन्होंने लूटमार तथा एक-दूसरे को कत्ल करना शुरू कर दिया । इससे उन्हें पुरानी दुश्मनी तथा लम्बे समय से दबी बदले की भावना को सन्तुष्ट करने का अवसर मिला । नीलामी कराने वाले तथा कुर्की कराने वालों को खदेड़ दिया गया । यात्रियों तथा व्यापारियों को लूटा गया और सरकारी कर्मचारियों को अपनी जान बचा कर भागने पर मजबूर कर दिया गया । सरकारी इमारतों को नुकसान पहुंचाया गया और हर प्रकार की सम्पत्ति को लूटा गया । स्थानीय लोगों ने इस विद्रोह में उस पागलपन से हिस्सा लिया जिससे कोई पागल ही खुशी प्राप्त कर सकता है । विद्रोह के दिनों में लोग भाले, लोहे की नोक वाली लाठियां तथा कुल्हाड़ियां लेकर स्वयं को योद्धा समझते थे तथा स्वयं अपने राजा का चुनाव करते थे ।"[1] इस प्रकार 1857 के विद्रोह में बुन्देलखण्ड निवासियों की सक्रिय भूमिका रही।

1858 ई. में शान्ति स्थापित हो जाने के बाद अंग्रेजी सैनिकों ने झांसी, बांदा,

---

1 एटकिन्सन ई.टी.-स्टेटिस्टिकल डिस्क्रिप्टिव एंड हिस्टारिकल एकाउंट आफ दि नार्थ वैस्ट प्रोविन्सस आफ इंडिया भाग-I(बुन्देलखण्ड)-1874-पृष्ठ 187

जालौन तथा आसपास के क्षेत्रों को खूब लूटा जिससे आगामी वर्षों में क्षेत्र में गरीबी तथा मंहगाई बढ़ गई । 1858 से 1947 ई. तक सरकार द्वारा क्षेत्र से अधिक से अधिक राजस्व वसूल करने की नीति अपनाई गई । सरकार की इस कठोर राजस्व नीति के कारण यह क्षेत्र आर्थिक दृष्टि से पिछड़ा रहा ।

# अध्याय द्वितीय

## बुन्देलखण्ड की आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति

## बुन्देलखण्ड की आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति

19वीं शताब्दी में बुन्देलखण्ड क्षेत्र के लोगों को बहुत सी प्राकृतिक विपदाओं का सामना करना पड़ा । समय-समय पर यहां भयानक अकाल पड़े । कभी अतिवृष्टि तथा कभी अनावृष्टि के कारण और कुछ क्षेत्रों में कांस घास उग आने के कारण फसल नष्ट हो गई और लोग निर्धन हो गए । कृषि की हानि के अतिरिक्त ब्रिटिश सरकार की नीतियों के कारण क्षेत्र के अनेक कुटीर उद्योग धन्धों का पतन हो गया । इसके परिणामस्वरूप लोगों की आर्थिक स्थिति बहुत प्रभावित हुई ।

क्षेत्र की आर्थिक स्थिति के आकलन के लिए इस अध्याय में विभिन्न जिलों की तत्कालीन स्थिति जानने का प्रयास किया गया है । अकाल एवं अन्य प्राकृतिक आपदाओं के कारण लगभग सभी जिले प्रभावित हुए । सभी जिलों में राजस्व की कठोर दरें लागू की गईं थीं । सिंचाई सुविधाओं का उचित विकास नहीं हुआ था और कुटीर उद्योग-धन्धे धीरे-धीरे समाप्त हो रहे थे । अतः क्षेत्र की अधिकांश जनता के जीवन स्तर का आर्थिक विकास नहीं हुआ । लोगों में निर्धनता के कारण अपराधों में भी वृद्धि हुई एवं सामाजिक विकास की गति बहुत धीमी रही ।

1809-1810 ई. में बांदा जिले में भयानक सूखा पड़ा । लगभग 1828 ई. तक कांस घास के फैलने से तथा तूफानों की विनाशलीला से अथवा असमय वर्षा के

कारण यहां खाद्य पदार्थों की अत्याधिक कमी हो गई ।[1] इसके बाद 1829-30 ई. में क्षेत्र में अकाल पड़ा जिसके कारण बांदा जिले की स्थिति बहुत नाजुक हो गई । 1833 ई. में वर्षा की कमी के कारण फसलें बुरी तरह से नष्ट हो गईं । 1834 ई. में भी सूखे की स्थिति बनी रही । इसके पश्चात 1860-70 के दशक में यह जिला कम वर्षा के कारण प्रभावित हुआ ।[2] 1868 ई. में बांदा और हमीरपुर में खरीफ की फसलें बुरी तरह से नष्ट हो गईं और 1869 ई. में रबी की फसल बहुत कम रही । खाद्य पदार्थों की इस कमी ने लोगों के जीवन पर बहुत असर डाला और उन्हें आर्थिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा । इसके अतिरिक्त समय-समय पर बहुत सी बीमारियां भी फैलीं जिससे हजारों लोग मर गए ।[3]

1869 ई. में लगभग पूरे बुन्देलखण्ड क्षेत्र में भयानक अकाल पड़ा जिसका प्रभाव क्षेत्र की आर्थिक प्रगति एवं सामाजिक स्थिति पर पड़ा । लोग गरीब हो गए एवं कृषि की बहुत हानि हुई । क्षेत्र में भुखमरी फैल गई और उद्योग धन्धों का पतन हो गया। इस अकाल से प्रभावित हमीरपुर जिले की स्थिति की समीक्षा करते हुए डिप्टी कलेक्टर जी. एडमस ने अपनी रिपोर्ट में लिखा कि इस अकाल के कारण निर्धन वर्ग के लोगों के

---

1 उ.प्र.गजेटियर बांदा-पृष्ठ 109

2 उ.प्र.गजेटियर बांदा-पृष्ठ 109

3 एटकिन्सन ई.टी-बुनदेलखण्ड गजेटियर 1874-पृष्ठ 153

भोजन में से अनाज लगभग गायब हो गया था और बिल्कुल निर्धन से ऊपर के वर्ग के लोगों द्वारा भी भोजन में अनाज के स्थान पर दूसरी चीजों को अपना लिया गया था। तेल निकालने के बाद तेल बीजों का बचा हुआ पदार्थ, महुआ का फल जो प्रायः खाने के काम नहीं आता था और कमल के पौधे की जड़ तथा तना और दूसरे पानी के पौधे और कुछ गांवों में बरगद तथा सेमल के तने को भोजन के रूप में प्रयोग किया जाता था।[1] रिपोर्ट के अनुसार अकाल इतना भयानक था कि इससे प्रभावित होने के कारण गरीब मुसलमानों द्वारा भूखे जानवरों का मांस खाने के काम में लाया गया जो सस्ते दामों पर खरीद लिए जाते थे और फिर उन्हें मार दिया जाता था। गाय भैंसों का यह मांस सबसे सस्ता भोजन था जो वह प्राप्त कर सकते थे जिसका मूल्य प्रायः दो सेर या अधिक के लिए एक पैसा होता था। तिल का तेल निकालने के बाद बचा मिश्रण 6 पैसे प्रति सेर था। अलसी का ऐसा मिश्रण 5 पैसे प्रति सेर तथा महुआ का सूखा हुआ फल 5 पैसे प्रति सेर था। वर्ष के शुरू में ही हजारों की संख्या में पशु मर गए। उनके कंकाल सड़कों पर एवं खेतों में पड़े सड़ते रहे। अगर कोई पशु गांव में मर जाता था तो उसे वहां से हटाकर गांव के बाहरी क्षेत्र में छोड़ दिया जाता था। भाटीपुरा में इस प्रकार की स्थिति विशेष रूप से दिखाई दी जिसके अतिरिक्त क्षेत्र में मलेरिया का प्रकोप भी था। पश्चिम से हवा चलने पर मदन सागर झील के सूखे क्षेत्र से उठने वाली दुर्गंध भी

---

1 एटकिन्सन ई.टी.-बुन्देलखण्ड गजेटियर 1874-पृष्ठ 153

थी । जब हवा पूर्व से चलती थी तब बड़ी संख्या में खेतों एवं खुली जगह में मरे हुए जानवरों के कंकालों की दुर्गंध फैल जाती थी । बीजानगर झील को छोड़कर मदनसागर झील सहित पानी का हर तालाब या तो पूरी तरह सूख चुका था या फिर इस हद तक सूख चुका था कि उसमें काली मिट्टी के बड़े से घेरे में सड़ते हुए पानी के पौधों के बीच बहुत थोड़ा सा पानी दिखाई पड़ता था । यद्यपि गर्मी के मौसम के बाद यह दुर्गंध समाप्त हो गई थी किन्तु पहली वर्षा होते ही यह पुनः शुरू हो गई।[1]

1868-69 ई. में अकाल के कारण पूरा जालौन जिला प्रभावित रहा । जिले के लोगों द्वारा 1783 ई. का अकाल बहुत अच्छी तरह याद किया जाता था जब गेहूं एक रूपए (बालासाही रूपया) का छः सेर बेचा गया । 1833 ई. के अकाल के समय गेहूं नौ या दस सेर प्रति रूपया था और 1837 ई. में पांच सेर था । 1848-49 ई. में भी अकाल के कारण भोज्य पदार्थों की बड़ी मात्रा में कमी हो गई थी और विशेष रूप से जिले के दक्षिणी भाग में भूमिकर में बहुत सी रियायतें देनी पड़ीं । 1868 ई. में प्रारम्भ में पूरा जिला सूखे की चपेट में रहा लेकिन सितम्बर मध्य में भारी वर्षा हुई जिससे फसल क्षतिग्रस्त हो गई । 1869 ई. में रबी की फसल औसत से आधी थी । अनाज की इस कमी से विशेष रूप से जालौन तथा उरई के परगने प्रभावित हुए जहां बड़ी

---

1 एटकिन्सन ई.टी.-बुन्देलखण्ड गजेटियर 1874-पृष्ठ 154-155

संख्या में करों की वसूली स्थगित करनी पड़ी । उरई में प्रति व्यक्ति आधा सेर तथा प्रति बालक एक चौथाई सेर के हिसाब से अनाज बांटने की व्यवस्था की गई । इस प्रकार लगभग पांच महीने तक 130 लोगों की सहायता की गई ।[1]

1868 ई. में ललितपुर जिले में भी अकाल की यही स्थिति रही । जिले में गेहूं तथा चना इस समय एक रूपए का सात सेर मिलता था । जिले में पहले वर्षा की कमी और फिर भारी वर्षा के कारण फसलें नष्ट हो गईं और लोग गरीब हो गए । अकाल की इस विभीषिका के साथ-साथ जून 1869 ई. में जिले में हैजे का प्रकोप बढ़ा जो वर्षा ऋतु के प्रारम्भ के महीनों में पूरे जिले में फैल गया । मानसून प्रारम्भ होने पर यातायात ठप्प हो गया जिसके कारण बाहर से आने वाली वस्तुओं में भारी कमी आई । 11 सितम्बर, 1868 को सरकार द्वारा लोगों की सहायता के उद्देश्य से 15173 रूपए की स्वीकृति दी गई,किन्तु यह धनराशि लोगों की सहायता तथा उन्हें रोजगार उपलब्ध कराये जाने के लिए पर्याप्त नहीं थी । प्रारम्भ में लोगों को रोजगार की अधिक तलाश थी । लगभग 1670 लोगों को प्रतिदिन सरकार द्वारा काम में लगाया गया किन्तु 1869 ई. में अकाल के कारण जिले की स्थिति इतनी बिगड़ चुकी थी कि काम तलाश करने वालें का प्रतिदिन औसत बढ़कर लगभग 18620 हो गया । सरकार द्वारा मुख्य रूप से तालाब खोदने एवं सिंचाई के उद्देश्य से बांध बनाने के कार्य इन अकालपीड़ितों से

---

1 उ.प्र.गजेटियर-जालौन पृष्ठ 117

करवाए गए । इसी दौरान निर्धन गृहों में 395 दिनों तक लगभग 2781 लोगों को भोजन भी दिया गया ।[1] इन निर्धन गृहों में जिन लोगों को सहायता प्रदान की गई उसमें लगभग 76 प्रतिशत औरतें एवं बच्चे थे । ऐसा कहा जाता है कि इन निर्धन गृहों में आने वाले यह अधिकांश औरतें एवं बच्चे ऐसे परिवारों से थे जिन्हें खरीफ की फसल नष्ट हो जाने के कारण उनके स्वामियों ने छोड़ दिया था और वे स्वयं मालवा की ओर चले गए थे । ललितपुर जिले में इन निर्धन गृहों की स्थापना ललितपुर, बान्सी, भानपुर, तालबेहट, बांदा, पटना, गुना, महरौनी, जाखलौन तथा डूंगरा में की गई थी । इनमें से मुख्य ललितपुर तथा तालबेहट के निर्धन गृह थे ।[2]

इन निर्धन गृहों पर वही नियम लागू होते थे जो लोगों को रोजगार उपलब्ध कराये जाने के संबंध में थे । प्रत्येक निर्धन गृह का स्थानीय समिति के सदस्य द्वारा प्रतिदिन निरीक्षण किया जाता था । जब इन गृहों में रहने वाले लोगों ने पुनः कुछ शक्ति प्राप्त कर ली और वे काम करने के योग्य हो गए तब उन्हें आसपास के क्षेत्रों में उपलब्ध कराए गए सहायतार्थ कार्यों के लिए भेज दिया गया ।[3] जो लोग शेष रह गए उन्हें टोकरी बनाने तथा रस्सी बटने के काम पर लगाया गया । लगभग 41369 लोगों को तालबेट

---

1 एटकिन्सन ई.टी.-बुन्देलखण्ड गजेटियर 1874-पृष्ठ 319

2 -वही- पृष्ठ 319

3 -वही- पृष्ठ 320

तथा 27134 को बान्सी में भोजन उपलब्ध कराया गया ।

यद्यपि लोगों को भूख से बचाने के लिए उपरोक्त प्रयास किए गए थे किन्तु अकाल के कारण बहुत तबाही हुई । हेन्वी ने इस अकाल के संबंध में अपनी रिपोर्ट में लिखा है: "ललितपुर जिले में लगभग 41 प्रतिशत पशु मर गए और 7000 से अधिक बेच दिए गए । कुछ जानवरों को बालाबेहट के जंगलों में छोड़ दिया गया । अन्य को खुले मैदानों में खदेड़ दिया गया तथा कुछ को ज्वार का सूखा भूसा खिलाकर जीवित रखा गया।" इस रिपोर्ट के अनुसार-"1869 ई. में अधिक वर्षा हुई तथा घास और पानी की अधिकता हो जाने से बड़ी संख्या में पशु मर गए । हजारों की संख्या में मरने वाले पशुओं के कंकालों से निकलने वाली दुर्गन्ध के कारण हवा दूषित हो गई जिससे जिले में हैजा फैल गया । सरकार द्वारा इन प्राकृतिक आपदाओं से प्रभावित लोगों की सहायता के उपाय किए गए और उन्हें कुएं खोदने तथा बीज और पशु खरीदने के लिए धन उपलब्ध कराया गया । 1868 तथा 1869 ई. के दो वर्षों में कुएं खोदने जैसे स्थायी उपयोगिता के कार्यों के लिए लगभग 87785 रूपए तथा बीज और पशु खरीदने के लिए लोगों को दी जाने वाली सहायता के अन्तर्गत 68439 रूपए की धनराशि स्वीकृत की गई । यद्यपि लोग इन उद्देश्यों के लिए यह सहायता लेते थे किन्तु ऐसा कहा जाता है कि यह अग्रिम राशि भोजन तथा जीवन के लिए आवश्यक वस्तुएं खरीदने के लिए

प्रयोग की गई । फलस्वरूप न कुओं का निर्माण हो सका, न ही पशु खरीदे गए तथा भूमि जुताई के अभाव में खाली पड़ी रही।"

झांसी जिले में 1868-69 ई. के अकाल का वर्णन करते हुए हेन्वी ने लिखा है- "इस क्षेत्र में प्रायः 30 से 40 इंच वर्षा होती है । किन्तु 1868 ई. में जून से नवम्बर तक केवल 14 इंच वर्षा हुई तथा वह भी समान नहीं थी । इस सूखे के बाद 1869 ई. में अधिक वर्षा के कारण बाढ़ आ गई । सड़कें टूट गईं, पुल बह गए तथा कई सप्ताह तक क्षेत्र में यातायात ठप्प हो गया । जुलाई के अन्तिम सप्ताह में झांसी में 36 घंटों में 15 इंच पानी बरसा । इन आपदाओं के कारण फसलें बुरी तरह प्रभावित हुईं । 1868 ई. में केवल उन स्थानों को छोड़कर जहां काली मिट्टी थी जो नमी सोख सकती थी या जहां सिंचाई की सुविधा उपलब्ध थी, खरीफ की फसल लगभग नष्ट हो गई और 1869 ई. में रबी की फसल औसत के आधे से भी कम रही।"[1] अकाल के बाद बीमारी का प्रकोप भी इस जिले में बढ़ा । 1869 ई. के पहले छः महीनों में चेचक का प्रकोप बढ़ा । लू लगने से बहुत से लोग मर गए । जिले के डिप्टी कमिश्नर के अनुसार "लोग भूखे प्यासे और कमजोर हालत में थे और पानी पीते ही गिर जाते थे और मर जाते थे । 1869 ई. में वर्षा ऋतु में हैजे का प्रकोप फैला और दूषित तथा निम्न स्तर का भोजन

---

1 एटकिन्सन ई.टी.-बुन्देलखण्ड गजेटियर-पृष्ठ 254

करने के कारण फैले बुखार से लोगों की परेशानी दुगुनी हो गई । उपलब्ध आंकड़ों के अनुसार 1868 ई. में झांसी में 3180 लोग मरे जबकि 1869 ई. में इस जिले में मरने वालों की संख्या 20331 हो गई थी।"[1]

इसी प्रकार 1895-97 ई. में भी बुन्देलखण्ड क्षेत्र में अकाल पड़ा जिससे यहां के लोगों की आर्थिक स्थिति निरन्तर खराब होती गई । यह अकाल पहले के अकालों से अधिक भयानक था । 1896-97 ई. में खाद्यान्नों की कीमतों में भारी वृद्धि हुई । इस समय घटिया चावल का मूल्य $7\frac{1}{4}$ सेर प्रति रूपया था । गेहूं, मूंग और उड़द की दाल $7\frac{3}{4}$ सेर प्रति रूपया थी जो बाद में और भी अधिक बढ़ गई।[2] अत: सरकार द्वारा राजस्व कर वसूली में छूट दी गई । निर्धन गृहों की स्थापना की गई और लोगों को सीधे आर्थिक सहायता भी प्रदान की गई ।

इस प्रकार समय-समय पर पड़ने वाले इन अकालों के परिणामस्वरूप लोग गरीब हो गए । भोज्य पदार्थों की कमी हो गई । बीमारियों तथा भूख के कारण जानवर मर गए । कृषि की अत्याधिक हानि हुई एवं लोगों की आर्थिक स्थिति दयनीय हो गई ।

इसके अतिरिक्त ब्रिटिश शासन में बुन्देलखण्ड में सिंचाई सुविधाओं का समुचित विकास नहीं किया जा सका था । सरकार द्वारा 1862 ई. में बुन्देलखण्ड

---

1 एटकिन्सन ई.टी.-बुन्देलखण्ड गजेटियर-पृष्ठ-254

2 ड्रेक ब्रोकमैन डी.एल.-बांदा गजेटियर 1909-पृष्ठ 65

सिंचाई विभाग को बन्द कर दिया गया था ।[1] 1889-98 ई. के बीच बांदा जिले में सभी साधनों द्वारा सिंचित कुल औसत क्षेत्र 4932 एकड़ था जिसमें वह क्षेत्र भी शामिल था जिसमें कम से कम एक बार सिंचाई की जाती थी ।[2] इस प्रकार बांदा जिले में 1907 ई. तक भी सिंचाई के समुचित साधन उपलब्ध नहीं थे । झांसी और ललितपुर जिलों में भी सिंचाई सुविधाओं पर अधिक ध्यान नहीं दिया गया था । 1868-69 ई. के अकाल के कारण यद्यपि पछवाड़ा और मगरवाड़ा की झीलों का निर्माण कराया गया था किन्तु दूसरे तालाबों आदि पर बहुत कम ध्यान दिया गया । 1879 ई. तक सरकार द्वारा सिंचाई व्यवस्था के लिए बहुत कम प्रयास किए गए । 1885 ई. तक 21 तालाबों की मरम्मत के लिए वार्षिक सहायता प्रदान की गई किन्तु सैनिक कार्यों की आवश्यकता के कारण इस वर्ष यह सहायता कम कर देनी पड़ी तथा 1886 एवं 1891 ई. के बीच जिले में केवल दो नए तालाबों का निर्माण किया जा सका ।[3]

झांसी जिले में बरूआ सागर, पछवाड़ा, कछनेउ एवं मगरवाड़ा नामक झीलों को 1890 ई. में सिंचाई विभाग को सौंप दिया गया । यद्यपि इन वर्षों में सिंचाई की ओर

---

1 जेनकिन्सन झांसी सेटलमेंट रिपोर्ट 1871 पृष्ठ 71-72

2 ड्रेक ब्रोकमैन डी.एल.-बांदा गजेटियर पृष्ठ 53

3 ए.डब्ल्यू. पिम-फाइनल सैटलमेंट रिपोर्ट ऑन दी रिवीजन ऑफ झांसी डिस्ट्रिक्ट इन्क्लूडिंग ललितपुर सब डिवीजन-पृष्ठ 14

कम ध्यान दिया गया था लेकिन 1896-97 ई. में पड़ने वाले अकाल तथा 1899 ई. में होने वाली कमी के कारण सरकार द्वारा सिंचाई से संबंधित कुछ प्रयास किए गए । सिंचाई विभाग के अन्तर्गत अलग से एक तालाब विभाग की स्थापना की गई जिसके परिणामस्वरूप सिंचाई व्यवस्था का विकास हुआ ।[1] इन प्रयासों पर टिप्पणी करते हुए पिम ने 1907 में अपनी रिपोर्ट में लिखा था कि "इन प्रयासों से अधिक सफलता की आशा नहीं की जा सकती । न ही इतने वर्षो तक भूमि के लगातार कटाव के कारण झांसी एवं ललितपुर जिले में लाल मिट्टी के पूर्व स्तर को प्राप्त कर सकना सम्भव है । किन्तु लगातार प्रयासों से अगले स्थायी बन्दोबस्त तक क्षेत्र की बिगड़ी हुई वर्तमान दशा में सुधार होने की संभावना है ।"[2]

जालौन जिले में भी सिंचाई की स्थिति अच्छी नहीं थी । 1889 ई. की एक रिपोर्ट के अनुसार जालौन जिले में लगभग 6534 एकड़ भूमि की सिंचाई कुंओं द्वारा की जाती थी तथा लगभग 6194 एकड़ भूमि की सिंचाई अन्य साधनों द्वारा की जाती

---

1 ए.डब्ल्यू.पिम-फाइनल सैटलमेंट रिपोर्ट आन दी रिवीजन आफ झांसी डिस्ट्रिक्ट इन्क्लूडिंग ललितपुर सब डिवीजन-पृष्ठ 14

2 -वही-

थी।[1] पूरे जालौन क्षेत्र में सिंचित भूमि क्षेत्र कुल कृषि भूमि का केवल 2.8% था । इस प्रकार सिंचाई सुविधाओं के अभाव ने बुन्देलखण्ड में कृषि व्यवस्था को बहुत प्रभावित किया।

सन् 1855 ई. में बेतवा नहर के निर्माण की योजना का सुझाव दिया गया था लेकिन उसकी स्वीकृति 1881 ई. से पहले नहीं हो सकी । इसी तरह बांदा में भी केन नदी से एक नहर निकालने की योजना पर 1870 ई. में विचार किया गया । लेकिन सरकार अधिक लागत वाली योजनाओं को सम्भवतः कार्यान्वित नहीं करना चाहती थी। अतः इस योजना को बहुत समय पश्चात् लागू किया गया और 1896-97 ई. से पहले इसका कार्य प्रारम्भ नहीं हो सका ।[2]

इसके अतिरिक्त कांस घास के कारण बुन्देलखण्ड के कई गांव बुरी तरह प्रभावित हुए । बांदा जिले में 1820 ई. में प्रथम बार कांस का उगना राजस्व अधिकारियों के लिए चिन्ता का विषय था क्योंकि उस वर्ष इस घास के उग आने से जिले को भारी क्षति हुई ।[3] इसके उन्मूलन के लिए बांदा जिले के पछेनी गांव में सरकार

---

1 फिलिप्स व्हाइट-फाइनल रिवीजन आफ सैटलमेंट आफ ईस्टर्न पोरशन आफ जालौन डिस्ट्रिक्ट-पृष्ठ 16

2 ड्रेक ब्रोकमैन डी.एल.-बांदा गजेटियर पृष्ठ-59

3 -वही- पृष्ठ 20

द्वारा 1881 ई. में कुछ प्रयास किए गए किन्तु इनसे मिलने वाली सफलता इन पर किए गए खर्च की अपेक्षा कम थी तथा सामान्य कृषकों के लिए सम्भव न थी इसलिए इन्हें छोड़ दिया गया ।[1]

बुन्देलखण्ड के अन्य जिलों की भांति हमीरपुर में भी कृषि को कांस घास से बहुत हानि हुई । 1872 ई. में केवल झांसी जिले में ही इस घास ने लगभग चालीस हजार एकड़ भूमि को घेर लिया था ।[2] इस घास से खेती को होने वाली क्षति से झांसी जिले में सरकार को लगभग 6 लाख रूपए के राजस्व की हानि हुई ।[3]

राजस्व को होने वाली हानि को ध्यान में रखते हुए ब्रिटिश अधिकारियों को उन प्रयासों की ओर ध्यान देना पड़ा जिनसे कांस का उन्मूलन किया जा सके । इस संबंध में कुछ सुझाव दिए गए जिसके अन्तर्गत इस घास को जलाना, गहरी खुदाई अथवा अच्छी तरह जुताई करना या खेत को वैसे ही खाली छोड़ देना आदि तरीके शामिल थे । यह सभी तरीके बुन्देलखण्ड के जिलों में विशेषतः हमीरपुर में लागू किए गए किन्तु इनका कोई लाभप्रद परिणाम नहीं निकला ।[4] इसे जलाने पर दूसरे ही वर्ष यह और तेजी से

---

1 ड्रेक ब्रोकमैन डी.एल.-बांदा गजेटियर पृष्ठ 20

2 ड्रेक ब्रोकमैन डी.एल.झांसी गजेटियर पृष्ठ 140

3 इम्पे डब्ल्यू.एच.एल. तथा मेस्टन जे.एस.झांसी सेटलमैंट रिपोर्ट-पृष्ठ 56

4 हमीरपुर सेटलमैंट रिपोर्ट 1880-पृष्ठ 118

पैदा हुई । जलाने का यह प्रयोग झांसी जिले की गरौठा तहसील में किया गया था । कुछ वैज्ञानिकों का सुझाव था कि जिन खेतों में बराबर उर्वरक का प्रयोग किया जा रहा हो वहां इस घास के पैदा होने की संभावना कम रहती है । लेकिन लोगों की आर्थिक स्थिति देखते हुए उर्वरकों का अधिक प्रयोग संभव नहीं था ।[1]

इस प्रकार जहां एक ओर बुन्देलखण्ड में अकाल तथा कांस घास की अधिकता के कारण यहां की कृषि प्रभावित हुई वहीं दूसरी ओर धीरे-धीरे यहां के कुटीर उद्योग-धन्धों का पतन हो गया । खरूआ वस्त्र उद्योग बुन्देलखण्ड का महत्वपूर्ण कुटीर उद्योग था जो इस क्षेत्र में ब्रिटिश शासन से लगभग 100 वर्ष पूर्व मऊरानीपुर में विकसित हुआ। क्षेत्र में अल नामक पौधे से लाल भूरे रंग का निर्माण किया जाता था जिसे खरूआ वस्त्र की रंगाई के लिए प्रयोग किया जाता था । विशेष रूप से जालौन तथा झांसी में इसकी खेती की जाती थी लेकिन ब्रिटिश शासन काल में अल पौधे की खेती में किसानों की रूचि कम हो गई । सम्भवतः इसका कारण खरूआ वस्त्र के उत्पादन में कमी हो जाना था। इसके अतिरिक्त शायद कृत्रिम रंगों का उत्पादन भी इस पौधे की उपज में कमी का कारण था।[2]

मऊरानीपुर का खरूआ वस्त्र उद्योग अंग्रेजी शासन के पूर्व ही महत्वपूर्ण हो

---

1 इम्पे डब्लयू एच.एल.:झांसी सेटलमैंट रिपोर्ट पैरा 8

2 पाठक एस.पी.:झांसी डयूरिंग द ब्रिटिश रूल-पृष्ठ 57

चुका था। मऊरानीपुर के इस कपड़ा उद्योग ने देश के अन्य भागों में भी ख्याति प्राप्त कर ली थी । इस उद्योग के विकास से बुन्देलखण्ड क्षेत्र को बहुत अधिक लाभ हुआ था। डेनियल के अनुसार 1863 ई. में खरूआ वस्त्र तथा अल के रंग और कपास के निर्यात से लगभग 6 लाख 80 हजार रूपए की प्राप्ति हुई ।[1]

अमरावती, मिर्जापुर, नागपुर, इन्दौर, फर्रूखाबाद, हाथरस, कालपी, कानपुर तथा दिल्ली से मऊरानीपुर के व्यापारियों के संबंध थे । लेकिन यह आश्चर्य की बात है कि इतना महत्वपूर्ण उद्योग ब्रिटिश शासन के दौरान धीरे-धीरे नष्ट हो गया । स्थानीय बाजार में इसकी खपत बहुत कम रह गई । खरूआ वस्त्र के निर्यात में कमी हो जाने से झांसी जिले की आर्थिक स्थिति को गहरा धक्का लगा । वास्तव में रेल यातायात का विकास हो जाने के कारण इस क्षेत्र में अच्छा कपड़ा सस्ते दाम पर मिलने लगा जिससे खरूआ उद्योग को भारी हानि पहुंची ।[2] सम्भवतः इस उद्योग में लगे कारीगर इस वस्त्र की क्वालिटी को अधिक न सुधार सके जिसके कारण मिल के बने कपड़े की क्वालिटी तथा कीमत की तुलना में खरूआ वस्त्र उद्योग पिछड़ गया । सरकार द्वारा लगाए गए कर भी इस उद्योग के विनाश का कारण बने ।

यद्यपि खरूआ वस्त्र उद्योग के अतिरिक्त क्षेत्र में कुछ अन्य कुटीर उद्योग धन्धे

---

1 ड्रेक ब्रोकमैन डी.एल.झांसी गजेटियर पृष्ठ 73

2 पाठक एस.पी.झांसी डयूरिंग द ब्रिटिश रूल-पृष्ठ 61

भी थे लेकिन ब्रिटिश शासन काल में इन उद्योगों को अधिक प्रोत्साहन न मिलने के कारण उनका अधिक विकास नहीं हो सका । बुन्देलखण्ड 18वीं शताब्दी में हाथ से बनाये कपड़े तथा उस पर कलात्मक छपाई के काम के लिए भी प्रसिद्ध था । बांदा के विभिन्न जिलों में खाना पकाने के बर्तन तथा सोने एवं चांदी के गहनों के निर्माण का कार्य होता था । इसके अतिरिक्त अनेक स्थानों पर मोटे कम्बल तथा टाट बुनने का कार्य तथा रस्सी बटने का काम होता था । बांदा के कुछ गांवों जैसे रावली, कल्यानपुर तथा गोंडा में विभिन्न प्रकार के पत्थरों को काटकर उन पर पालिश करके अलंकृत किया जाता था । किन्तु ब्रिटिश शासन में धीरे-धीरे इन उद्योगों का पतन हो गया । 1883 ई. से 1889 ई. के बीच झांसी क्षेत्र में रेलवे लाइन बिछाई गई जिसके परिणामस्वरूप मशीन की बनी वस्तुओं की बाजार में अधिकता हो गई और कुटीर उद्योग-धन्धों का विनाश हो गया ।

उपरोक्त विभिन्न कारणों के अतिरिक्त क्षेत्र की आर्थिक स्थिति को प्रभावित करने वाले कुछ अन्य कारण भी थे । सरकार द्वारा लागू किए गए कठोर राजस्व प्रबन्धों के कारण करों की दर में अत्याधिक वृद्धि हो गई थी । लोगों को कर चुकाने में अत्यन्त कठिनाइयों का सामना करना पड़ा । इस पर कर वसूल करने के तरीके तथा भ्रष्ट कर्मचारियों के कारण लोगों की परेशानी और बढ़ गई ।

1855 ई. की एक रिपोर्ट के अनुसार"गावों में भूमि की बिक्री तेजी से हो रही थी । ऐसा लगता था कि खेती से लोगों को लाभ नहीं हो रहा था । अतः सरकार को कुछ गांवों को अपने नियंत्रण में लेना पड़ा । अधिकांश जमींदार परेशान एवं ऋण से ग्रस्त थे । यदि उनके ऋणदाता उनकी सहायता न करें तो वे अपनी भूमि के लिए बीज भी नहीं खरीद सकते थे । केवल जानवरों के अतिरिक्त उनके पास अन्य कोई व्यक्तिगत सम्पत्ति नहीं थी । अकाल तथा प्राकृतिक आपदाओं से लोग खेती करना छोड़ रहे थे । राजस्व की दरों का भी लोगों पर बुरा प्रभाव पड़ा था ।"[1]

ऐसा प्रतीत होता है कि 1857 ई. के विद्रोह में क्षेत्र के लोगों द्वारा सक्रिय भूमिका निभाने के कारण ब्रिटिश सरकार ने यहां के विकास पर समुचित ध्यान नहीं दिया । उदाहरण के लिए क्षेत्र में सिंचाई की समुचित व्यवस्था नहीं की गई थी । जो सिंचाई योजनाएं कार्यान्वित भी की गई थीं वे कुछ समय के लिए ही चलीं । इनका मुख्य उद्देश्य भी कृषि का विकास न होकर कर वसूली ही था । सरकार द्वारा कृषि विकास के कार्यों को किसी प्रकार का प्रोत्साहन नहीं दिया गया ।[2]

लोगों की आर्थिक स्थिति अच्छी न होने का प्रभाव उनकी सामाजिक स्थिति पर

---

1 एटकिन्सन ई.टी.-बुन्देलखण्ड गजेटियर-पृष्ठ 219

2 पाठक एस.पी.झांसी डयूरिंग द ब्रिटिश रूल-पृष्ठ 168-169

भी पड़ा । समाज का अधिक विकास न हो सका क्योंकि अधिकांश लोगों के लिए अपनी न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति में ही संतोष कर लेने के अतिरिक्त कोई चारा न था । इम्पे की रिपोर्ट के अनुसार लोगों को सस्ती खरीफ की फसल पर निर्भर रहना पड़ता था। अप्रैल तथा मई के महीनों में महुआ का फल उनके भोजन का मुख्य अंश होता था।[1]

क्षेत्र का आर्थिक विकास न होने के कारण समाज में चोरी डकैती जैसे अपराधों में भी वृद्धि हुई । लोगों में शिक्षा के प्रति रूचि नहीं थी । सम्भवत: दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति ही उनके लिए अधिक महत्व रखती थी और इसी कारण अपने बच्चों की शिक्षा के संबंध में वे अधिक ध्यान नहीं देते थे । स्त्री पुरूष साक्षरता दर में बहुत अन्तर था । यद्यपि पुरूष साक्षरता दर भी सन्तोषजनक नहीं थी किन्तु लड़कियों की शिक्षा की स्थिति अत्यन्त दयनीय थी । इसके अतिरिक्त बाल विवाह, पर्दा प्रथा जैसी सामाजिक कुरीतियां भी थीं । लोगों में अंधविश्वास अधिक था । इसी कारण सरकार द्वारा क्षेत्र के विकास के लिए किए गए कार्यों को जनता द्वारा सहजता से स्वीकार नहीं किया जाता था । यहां तक कि प्लेग जैसी महामारी फैलने पर भी रोकथाम के सरकारी प्रयासों को अन्धविश्वास एवं अज्ञानता के कारण जनता द्वारा आसानी से अपनाया नहीं गया था ।

---

1 इम्पे डब्ल्यू.एच.एल. तथा मेस्टन जी.एस.झांसी सैटलमेंट रिपोर्ट-पृष्ठ 33

विभिन्न राज्यों के राजप्रमुखों को अपने निर्णय पोलिटिकल एजेंट की सहमति से ही लेने पड़ते थे । अधिकतर रियासतों के पास अधिक धन नहीं था। कृषि एवं उद्योग-धन्धों की हानि के कारण वे अपने-अपने क्षेत्र का समुचित विकास नहीं कर सकते थे । विकास संबंधी प्रत्येक कार्य के लिए पोलिटिकल एजेंट की अनुमति प्राप्त करनी आवश्यक थी । यद्यपि समाज के विकास के लिए कुछ राजप्रमुखों द्वारा अपने क्षेत्र में चिकित्सा सुविधाएं उपलब्ध कराने के प्रयास किए गए थे किन्तु ब्रिटिश शासन के प्रभाव के कारण वे स्वतन्त्र रूप से कोई निर्णय नहीं ले सकते थे ।

उपरोक्त विवेचन से ऐसा प्रतीत होता है कि ब्रिटिश सरकार का मुख्य उद्देश्य क्षेत्र का आर्थिक एवं सामाजिक विकास करना नहीं था बल्कि लोगों को कुछ सुविधाएं उपलब्ध करवा कर उन्हें ब्रिटिश शासन के प्रति वफादार बनाना था । ऐसी दशा में वास्तविक सामाजिक विकास की आशा नहीं की जा सकती थी ।

# अध्याय तृतीय

## बुन्देलखण्ड में शिक्षा

- नौगांव में राजकुमार कालेज
- विभिन्न राज्यों में शिक्षा
- राजप्रमुखों एवं जागीरदारों के पुत्रों को शिक्षा के विशेषाधिकार
- शिक्षा संबंधी अन्य प्रयास

## बुन्देलखण्ड में शिक्षा

पिछले अध्यायों में हमने बुन्देलखण्ड क्षेत्र की भौगोलिक स्थिति एवं आर्थिक तथा सामाजिक दशा का अध्ययन किया है । हमने देखा कि बुन्देलखण्ड क्षेत्र आर्थिक दृष्टि से एक पिछड़ा क्षेत्र रहा है । किसी भी क्षेत्र की आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति पर वहां की शिक्षा व्यवस्था का भी अत्याधिक प्रभाव पड़ता है ।

बुन्देलखण्ड क्षेत्र में शिक्षा की क्या स्थिति थी ? सरकार द्वारा इस क्षेत्र में शिक्षा की प्रगति के लिए क्या कदम उठाए गए ? क्या राज्य प्रमुखों एवं जागीरदारों के पुत्रों एवं आम जनता को शिक्षा के समान अवसर प्राप्त थे ? क्या विभिन्न रियासतों के जागीरदार अपने-अपने क्षेत्र में शिक्षा की प्रगति के लिए पर्याप्त रूचि लेते थे ? सरकार द्वारा शिक्षा के विकास हेतु क्या उपाय सुझाए गए ? लड़कियों की शिक्षा के लिए क्या उचित सुविधाएं प्राप्त थीं ? यदि लोगों द्वारा अपने बच्चों को शिक्षा दिए जाने के संबंध में रूचि नहीं ली जाती थी तो इसके मुख्य कारण क्या थे ? इत्यादि प्रश्नों को ध्यान में रखते हुए इस अध्याय में बुन्देलखण्ड क्षेत्र में शिक्षा की स्थिति की समीक्षा का प्रयास किया गया है।

बुन्देलखण्ड एजेंसी में शिक्षा की स्थिति जानने हेतु हमने क्षेत्र की विभिन्न रियासतों में शिक्षा व्यवस्था की समीक्षा करने का प्रयास किया है । यह समीक्षा

रियासतों के विभिन्न स्कूलों में किए गए वार्षिक निरीक्षण की रिपोर्टों पर आधारित है । यद्यपि यह रिपोर्टें शिक्षा की स्थिति का सही-सही मूल्यांकन करने के लिए पर्याप्त नहीं मानी जा सकतीं किन्तु फिर भी इनसे उस समय की स्थिति के बारे में अनुमान लगाया जा सकता है और विभिन्न राज्यों में शिक्षा के विकास की तुलना की जा सकती है ।

बुन्देलखण्ड क्षेत्र में ब्रिटिश शासन स्थापित हो जाने के पश्चात् अंग्रेजों ने प्रारम्भ में शिक्षा के नए केन्द्र नहीं खोले बल्कि जो संस्थाएं पहले से कार्यरत थीं उनका प्रबन्ध सरकार ने अपने हाथ में ले लिया किन्तु 1857 में हुए विद्रोह के कारण शिक्षा कार्य भी प्रभावित हुआ । 1858 ई. में पुनः शान्ति स्थापित हो जाने पर झांसी जिले में आठ तहसीली स्कूल खोले गए । यह स्कूल झांसी, काराहरा, पाछौर, मोठ, भान्डेर, मऊ, पन्डवाहा और गरौठा में थे । इसके साथ ही जिले में 38 ग्राम स्कूलों की स्थापना भी की गई जिनमें 1859-60 में लगभग 2141 विद्यार्थी थे ।[1] इसी वर्ष ललितपुर, महरौनी तथा मन्दौरा में तीन और तहसीली स्कूलों की स्थापना की गई । 1861 ई. में झांसी जिले का कुछ भाग ग्वालियर को दे दिए जाने के कारण झांसी, पाछौर और काराहरा के स्कूलों के स्थान पर तीन नए स्कूल बरूआसागर, चिरगांव तथा रानीपुर में खोले गए । इस प्रकार 1862 ई. में जिले में 76 ग्राम स्कूल थे । सरकारी स्कूलों के साथ-साथ

---

1 यू.पी.डिस्ट्रिक्ट गजेटियर-झांसी डिस्ट्रिक्ट-पृष्ठ 268

अनेक प्राइवेट स्कूल भी थे जिनके निरीक्षण का अधिकार सरकार को प्राप्त था ।[1]

क्षेत्र के अन्य जिलों में भी शिक्षा की लगभग यही स्थिति थी । ब्रिटिश शासन की स्थापना के समय हिन्दू पाठशालाओं में और मुसलमान मकतबों में शिक्षा ग्रहण करते थे । कुछ प्रारम्भिक धार्मिक स्कूल भी थे जिनमें प्रारम्भिक पढ़ना-लिखना सिखाने के अतिरिक्त कुछ गणित भी पढ़ाया जाता था । व्यवसाय में लगे लोग अपने बच्चों को व्यवसाय से संबंधित प्रशिक्षण देते थे । जिनमें बढ़ईगिरी, लुहार, दर्जी इत्यादि के व्यवसाय से संबंधित प्रशिक्षण प्रमुख थे । लड़कियों की शिक्षा का अधिक प्रचलन न था किन्तु वे शिक्षा से अनभिज्ञ भी नहीं थीं । उन्हें घर की महिलाओं द्वारा खाना पकाना, गृह सज्जा, सिलाई-कढ़ाई इत्यादि का प्रशिक्षण देने के साथ-साथ धर्म के मूलभूत तथ्यों का ज्ञान भी दिया जाता था । धीरे-धीरे शिक्षा का यह स्वरूप सरकारी केन्द्रों में परिवर्तित होने लगा जो अंग्रेजों द्वारा प्रारम्भ किए गए थे । इन्हें तहसीली और हलकाबन्दी स्कूल कहा जाता था ।[2]

1855 ई. में हमीरपुर जिले में आठ तहसीली स्कूलों की स्थापना की गई जो क्रमशः हमीरपुर, सुमेरपुर, गहरौली, जैतपुर, मदौहा, पनवाड़ी, महोबा एवं राठ में थे ।

---

1 यू.पी.डिस्ट्रिक्ट गजेटियरझांसी डिस्ट्रिक्ट-पृष्ठ 268

2 -वही- पृष्ठ 223

इसके पश्चात गांव में प्राइमरी स्कूल खोले गए । 1861 ई. में हमीरपुर जिले में ऐसे 28 स्कूल थे । 1862 ई. में हमीरपुर में एक एंग्लो-वर्नाकुलर स्कूल खोला गया । अगले वर्ष एक सरकारी मिडिल स्कूल खोला गया तथा गांव स्कूलों की संख्या 71 कर दी गई। 1864 ई. में लड़कियों की शिक्षा के लिए 5 स्कूल खोले गए जिनमें शिक्षा ग्रहण करने वाली लड़कियों की कुल संख्या 54 थी । मदौहा एवं महोबा में भी एक-एक एंग्लो-वर्नाकुलर स्कूल खोला गया । 1867 ई. में हमीरपुर के एंग्लो-वर्नाकुलर स्कूल को जिला स्कूल में बदल दिया गया और हमीरपुर तथा पनवाड़ी के मिडिल स्कूलों को समाप्त कर दिया गया । इस प्रकार 1870 ई. तक हमीरपुर जिले में 6 तहसीली स्कूल थे जिनमें 280 विद्यार्थी थे । इसके अतिरिक्त 52 ग्राम स्कूल थे जिनमें 1754 विद्यार्थी थे एवं 45 पुराने शिक्षा केन्द्र थे जिनमें लगभग 556 विद्यार्थी थे । जिले में लड़कियों की शिक्षा के लिए दो प्राथमिक स्कूल थे जिनमें 36 लड़कियां थीं ।[1]

झांसी जिले में लड़कियों की शिक्षा प्रारम्भ करने का वर्ष 1866 माना जा सकता है जब ललितपुर में लड़कियों के लिए एक स्कूल की स्थापना की गई । 1868 ई. में जिला स्कूलों तथा ललितपुर में लड़कियों की शिक्षा में वृद्धि हुई और बालिकाओं के लिए चार अन्य स्कूल महरौनी में खोले गए । 1870 ई. में इन पांच स्कूलों में शिक्षा ग्रहण करने वाली लड़कियों की संख्या लगभग 116 थी । 1872 ई. में झांसी में 7 ऐसे

---

1 यू.पी. डिस्ट्रिक्ट गजेटियर-हमीरपुर डिस्ट्रिक्ट पृष्ठ 223

स्कूलों की स्थापना की गई तथा ललितपुर में लड़कियों के स्कूलों की संख्या बढ़ाकर दस कर दी गई । इनमें कुल 384 छात्राएं थीं किन्तु 1875 ई. में यह अनुभव किया गया कि लड़कियों के इन स्कूलों में उपस्थिति बहुत कम थी । अतः 6 स्कूल बन्द कर दिए गए । 1880 ई. में झांसी जिले में लड़कों के लिए स्कूलों की संख्या 98 थी जिनमें कुल 2190 छात्र थे तथा लड़कियों के लिए कुल 3 स्कूल थे जिनमें केवल 60 लड़कियां थीं ।[1]

बांदा जिले में भी शिक्षा की लगभग यही स्थिति थी । 1850 ई. से पूर्व जिले में शिक्षा के बारे में पर्याप्त जानकारी प्राप्त नहीं होती । 1850 ई. में बांदा जिले में लगभग 135 शिक्षा केन्द्र थे जिनमें अरबी, फारसी और संस्कृत की शिक्षा दी जाती थी । इनमें लगभग 1100 विद्यार्थी थे । 1857 ई. की क्रान्ति के पूर्व बांदा जिले में कोई सरकारी स्कूल नहीं था । 1856 ई. अमेरिकन प्रेसबिटेरियन मिशन द्वारा मिस्टर पाल के नेतृत्व में एक किराये के मकान में एक स्कूल खोला गया । 1857 ई. की क्रान्ति के पश्चात् पुनः शान्ति स्थापित हो जाने पर इसे मिशन की इमारत में ले जाया गया और कलेक्टर मैन के प्रभुत्व के कारण इसे तहसीली स्कूल में परिवर्तित किया जा सका । उसी वर्ष तिन्दवारी, सिहोन्दा, कालिंजर, तराउन, सिन्धाकलां तथा कामासिन में तहसीली स्कूलों

---

1 यू.पी. डिस्ट्रिक्ट गजेटियर-झांसी डिस्ट्रिक्ट पृष्ठ 268

की स्थापना की गई । बबेरू तथा मऊ में अगले वर्ष तहसीली स्कूल खोले गए।[1] प्रारम्भ के कुछ वर्षों तक इन स्कूलों में छात्रों की कुल संख्या 500 से अधिक नहीं थी । 1863 ई. में बांदा शहर के स्कूल को ऐंग्लो-वर्नाकुलर स्कूल बना दिया गया एवं 1867 ई. में यह तीसरी कक्षा तक जिला स्कूल बना दिया गया । 1874 ई. में यह एक अच्छी श्रेणी का जिला स्कूल बन गया था । बाद में 1901 ई. में एवं 1906 ई. में इसके शिक्षकों की संख्या भी बढ़ा दी गई ।[2]

किन्तु 1871 ई. से 1880 ई. के दशक में जिले में तहसीली स्कूलों की संख्या घटकर सात रह गई थी एवं छात्रों की औसत उपस्थिति घटकर 271 रह गई थी । इसी समय ग्राम स्कूलों की संख्या 180 से कम करके 156 कर दी गई जिनमें उपस्थिति का औसत भी पिछले दशक के 3972 छात्रों की अपेक्षा कम होकर 3694 रह गया था ।[3]

ड्रेक ब्रोकमेन के अनुसार जिले में कुछ मिशन भी स्कूल थे । सोसाइटी फार दी प्रोपेगेशन आफ दि गास्पल मिशन द्वारा बांदा और कर्वी शहरों में स्कूलों की स्थापना की गई जिनमें से बांदा के स्कूल को जिला तथा नगर निगम बोर्ड द्वारा आर्थिक सहायता प्रदान की जाती थी । इसी मिशन द्वारा छात्राओं के दो स्कूलों एवं एक निजी स्कूल को

---

1 बांदा डिस्ट्रिक्ट गजेटियर 1909-डी.एल.ड्रेक ब्रोकमेन-पृष्ठ-152

2 -सम- पृष्ठ 153

3 -वही-

भी सहायता दी जाती थी । इस निजी मिशन स्कूल तथा एक अन्य सहायता प्राप्त स्कूल में मुसलमान छात्रों द्वारा शिक्षा ग्रहण की जाती थी जबकि दूसरे स्कूल में हिन्दू विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण करते थे ।

इस प्रकार 19वीं शताब्दी के अन्त तक बुन्देलखण्ड क्षेत्र में शिक्षा का समुचित विकास नहीं हुआ था । 1881 ई. में झांसी जिले में पुरूष साक्षरता दर केवल 5.4 प्रतिशत एवं स्त्री साक्षरता दर 0.07 प्रतिशत थी तथा 1891 ई. में यह दर क्रमशः 7.2 प्रतिशत एवं 0.22 प्रतिशत थी ।[1] हमीरपुर जिले में 1881 ई. में 5 प्रतिशत पुरूष एवं 0.03 प्रतिशत स्त्रियां साक्षर थीं । 1891 ई. के आंकड़ों के अनुसार यह दर 5.5 प्रतिशत एवं 0.05 प्रतिशत थी ।[2] क्षेत्र के अन्य जिलों में भी शिक्षा का अधिक विकास नहीं हुआ था ।

लेकिन ब्रिटिश सरकार शिक्षा के क्षेत्र में इस धीमी प्रगति से अनभिज्ञ नहीं थी । सरकार द्वारा बुन्देलखण्ड में शिक्षा के विकास के लिए अनेक प्रयास किए गए । इन प्रयासों के अन्तर्गत नौगांव में राजकुमार कालेज की स्थापना का कार्य सबसे महत्वपूर्ण था। लार्ड मेयो की मृत्यु हो जाने के बाद उसकी याद में बुन्देलखण्ड के नौगांव क्षेत्र में एक कालेज प्रारम्भ करने की योजना बनाई गई । इस कालेज में क्षेत्र के राजप्रमुखों एवं

---

1 यू.पी.डिस्ट्रिक्ट गजेटियरझांसी डिस्ट्रिक्ट-पृष्ठ 270

2 यू.पी.डिस्ट्रिक्ट गजेटियर-हमीरपुर डिस्ट्रिक्ट पृष्ठ 225

जमीदारों के लड़कों को शिक्षित किए जाने का विचार था ।

**नौगांव में राजकुमार कालेज की स्थापना :**

सन् 1872 में बुन्देलखण्ड के पोलिटिकल एजेंट द्वारा लार्ड मेयो की स्मृति में बुन्देलखण्ड क्षेत्र में शिक्षा की प्रगति के उद्देश्य से नौगांव में एक शिक्षा केन्द्र स्थापित किए जाने का प्रस्ताव केन्द्रीय भारत के गवर्नर जनरल को भेजा गया । गवर्नर जनरल के एजेंट द्वारा इस प्रस्ताव की अति सराहना की गई । उसने पोलिटिकल एजेंट की प्रशंसा करते हुए लिखा कि बुन्देलखण्ड राज्यों द्वारा लार्ड मेयो के सम्मान में यह एक अति सराहनीय कार्य होगा ।[1]

इस प्रकार नौगांव में राजकुमार कालेज की स्थापना का निर्णय लिया गया। इसके लिए सैन्ट्रल इंडिया एजेंसी के विभिन्न प्रमुखों एवं अन्य लोगों से चन्दा प्राप्त करने के लिए उन्हें लिखित निवेदन किया गया । गवर्नर जनरल के एजेंट के अनुसार यद्यपि इस कार्य के लिए प्राप्त होने वाले चन्दे के संबंध में सरकार चाहती थी कि चन्दा देने वाले इसके संबंध में अपनी-अपनी शर्तें न रखें लेकिन यदि राजप्रमुखों द्वारा शिक्षा की प्रगति के लिए स्थापित किए जाने वाले इस कालेज के निर्माण के लिए चन्दा दिया जाता है तो सरकार को उनके पुत्रों के लिए बनाए जाने वाले इस कालेज के साथ लार्ड मेयो

---

1 फाइल संख्या 5/1872-पत्र संख्या 481

का नाम जोड़ने पर कोई आपत्ति नहीं होगी ।[1]

राजकुमार कालेज स्थापित करने की इस योजना के अनुसार विभिन्न राज प्रमुखों से लगभग 20,000 रूपए चन्दे के रूप में सहायता प्राप्त होने की आशा थी । बुन्देलखण्ड क्षेत्र के बहुत से प्रमुख अधिक धनी नहीं थे और वह शिक्षा की उपयोगिता के बारे में भी अधिक जागरूक नहीं थे । अतः उनसे प्राप्त होने वाली 20,000 रूपए की धनराशि इस कार्य के लिए अत्याधिक महत्व रखती थी । इसके अतिरिक्त सरकार द्वारा कालेज की बिल्डिंग के निर्माण के लिए लगभग 20,000 रूपए प्रदान किए जाने की आशा थी । इस प्रकार बिल्डिंग के लिए लगभग 40,000 रूपए प्राप्त होने थे ।

योजना के अनुसार इस धनराशि में से लगभग 5,000 रूपए अस्थायी स्कूल के लिए एक बड़ा बंगला खरीदने पर खर्च कर दिए गए। 2,500 रूपए इसकी मरम्मत तथा फर्नीचर आदि पर खर्च किए गए। इसके अतिरिक्त स्कूल सुपरिंटेंडेंट के रहने के लिए एक घर की व्यवस्था की गई जिस पर 3,500 रूपए खर्च हुए । शेष 29,000 रूपए को स्कूल इमारत के निर्माण के लिए 4% ब्याज पर सरकार के पास निवेशित किया गया ताकि इस धन से स्कूल बिल्डिंग तथा एक बोर्डिंग का निर्माण किया जा सके जिसमें प्रमुखों के लड़के रह सकें। यह भी निर्णय किया गया कि ब्याज से प्राप्त 1,160 रूपए प्रतिवर्ष की धनराशि को स्कूल बिल्डिंग पर खर्च किए जाने के उद्देश्य से मूलधन

---

1 फाइल संख्या 5/1872

में जोड़ दिया जाए।

इसके अतिरिक्त यह विचार किया गया कि यदि सरकार द्वारा स्कूल सुपरिंटेंडेंट को लगभग 10,000 रूपए वार्षिक की राशि दी जाए तो यह स्कूल में अच्छे अध्यापक रखने के लिए पर्याप्त होगी । इसी धन से उन ठाकुरों के लड़कों के रहने के लिए दो-तीन छोटे घरों का प्रबन्ध भी किया जा सकता था जो यहां अपने रहने की व्यवस्था नहीं कर सकते थे। लेकिन इन सभी कार्यों के लिए यह अति आवश्यक था कि स्कूल के लिए दिए जाने वाले चन्दे की राशि नियमित रूप से प्राप्त होती रहे ।

भारत के वाइसराय तथा गवर्नर जनरल स्कूल के पैटर्न (Patron) थे । इसी प्रकार मध्य भारत के गवर्नर जनरल के एजेंट स्कूल के वाइस-पैटर्न (Vice Patron) थे। योजना के अनुसार स्कूल की प्रबन्ध समिति में निम्नलिखित व्यक्ति थे : पोलिटिक्ल एजेंट बुन्देलखण्ड स्कूल का पदेन प्रेसीडेंट था । इसके अतिरिक्त प्रबन्ध समिति में जिन सदस्यों को रखने की योजना थी वह थे-ओरछा तथा टिहरी के प्रमुख, दतिया, समथर, बाउनी, पन्ना, चिरखारी, अजयगढ़, बिजावर और छतरपुर के प्रमुख । स्कूल का सुपरिंटेंडेंट कमेटी के सचिव पद पर होगा और कोषाध्यक्ष के पद के लिए पोलिटिकल एजेंट बुन्देलखण्ड को रखने की योजना बनाई गई ।

यह योजना बनाई गई कि कालेज में प्रवेश चन्दा देने वालों के द्वारा नामित लड़कों को दिया जाए । प्रत्येक सौ रूपए वार्षिक चन्दे पर चन्दा देने वाले को एक छात्र

नामित करने का अधिकार होगा किन्तु कोई भी व्यक्ति दस से अधिक छात्रों को कालेज में दाखिले के लिए नामित नहीं कर सकता । चन्दा देने वालों द्वारा नामित छात्रों की सीटें पूरी हो जाने पर शेष सीटों के लिए कालेज कमेटी द्वारा प्रार्थना-पत्र प्राप्त कर उन पर विचार किया जाएगा ।[1]

कालेज कमेटी को किसी भी छात्र अथवा अध्यापक को उसके बुरे व्यवहार के लिए कालेज से निकालने का अधिकार होगा किन्तु इसके लिए कमेटी के कम-से-कम पांच सदस्य इस पर सहमत होने चाहिएं ।

कालेज में मुख्यतः बुन्देलखण्ड के प्रमुखों के बेटों तथा उनके निकट सम्बन्धियों को प्रवेश दिए जाने की योजना थी जो भविष्य में या तो स्वयं प्रमुख बनेंगे या अपने-अपने राज्य के राजप्रमुखों के साथ जुड़े रहेंगे । इस प्रकार की एक विशेष कक्षा बनाने के लिए आवश्यक था कि कालेज में अन्य सामान्य छात्रों को प्रवेश न दिया जाए।

कालेज में प्रारम्भ में सुपरिंटेंडेंट के अतिरिक्त निम्न विषयों के अध्यापकों की नियुक्ति की योजना थी ।

एक अंग्रेजी अध्यापक जिसे 150 रूपए प्रतिमाह दिए जाने का प्रस्ताव था । इसके अतिरिक्त एक परशियन तथा उर्दू तथा एक हिन्दी अध्यापक था जिन्हें 80 रूपए

---

1 फाइल संख्या 5/1872

प्रतिमाह वेतन दिया जाएगा । घुड़सवारी तथा जिमनास्टिक सीखाने के लिए भी एक अध्यापक रखने का प्रस्ताव था जिसे 60 रूपए प्रतिमाह वेतन दिया जाएगा । अन्य कर्मचारियों पर 50 रूपए प्रतिमाह के खर्च का अनुमान था । इस प्रकार प्रारम्भ में कालेज का खर्च 420 रूपए प्रतिमाह का अनुमान लगाया गया । बाद में छात्रों की संख्या बढ़ने पर अध्यापकों की संख्या में भी वृद्धि की जा सकती थी ।[1]

कालेज में किस प्रकार की शिक्षा दी जाए इस पर भी विचार किया गया । कालेज के उद्देश्य के अनुसार शिक्षा ऐसी होगी जो प्रत्येक विद्यार्थी के भविष्य के जीवन में उसकी सहायक हो सके । साधारण शिक्षा के साथ-साथ यह भी सोचा गया कि कालेज में सर्वेक्षण (Surveying) तथा जिमनास्टिक की शिक्षा भी दी जाएगी और घुड़सवारी की कक्षा भी शुरू की जाएगी । लेकिन योजना के अनुसार इस घुड़सवारी कक्षा के लिए छात्रों को अपने घोड़े लाने होंगे ।[2]

यह भी तय किया गया कि उन्हीं छात्रों से फीस ली जाएगी जिनका चयन प्रार्थना-पत्र के आधार पर कमेटी द्वारा किया जाएगा लेकिन जो छात्र नामित किए जाएंगे उनसे कोई फीस नहीं ली जाएगी । फीस कितनी होगी यह तय करने का अधिकार भी

---

1 फाइल संख्या 5/1872

2 -वही-

कालेज कमेटी को दिया गया ।[1]

सन् 1873 में पोलिटिकल एजेंट बुन्देलखण्ड ने केन्द्रीय भारत के गवर्नर जनरल के एजेंट को अवगत कराया कि स्कूल प्रारम्भ करने के लिए बुन्देलखण्ड एजेंसी के प्रमुखों द्वारा 20,000 रूपए दान स्वरूप देना स्वीकार कर लिया गया है । इसके अतिरिक्त वे लगभग 11,000 रूपए वार्षिक स्कूल के रख-रखाव के लिए भी देंगे ।

सर्वप्रथम समथर के राजा बहादुर ने राजकुमार स्कूल प्रारम्भ करने के लिए अपनी सहमति दी । इसके पश्चात दतिया के महाराजा ने इसे लार्ड मेयो के मेमोरियल के रूप में स्वीकार करते हुए इसका समर्थन किया । इसके बाद पन्ना के महाराजा ने तत्काल इस स्कूल की योजना को अपनी स्वीकृति देते हुए इसके लिए एक निश्चित धनराशि देने का निर्णय लिया । नौगांव में स्कूल प्रारम्भ करने की योजना के लिए पोलिटिकल एजेंट बघेलखण्ड को भी सहयोग देने के लिए कहा गया लेकिन मेजर बैनरमेन (Major Bannerman) ने इस बारे में अपनी असमर्थता व्यक्त की क्योंकि अलग एजेंसी का गठन हो जाने के पश्चात् बघेलखण्ड एजेंसी के प्रमुख नौगांव में मेमोरियल कालेज प्रारम्भ करने के उत्सुक नहीं थे ।

एजेंसी के विभिन्न राजप्रमुखों द्वारा नौगांव के इस राजकुमार कालेज को दी जाने

---

1 फाइल संख्या 5/1872

वाली दान राशि तथा वार्षिक सहायता इस प्रकार थी :

| राज्य | Donation (रूपए) | Annual Subscription (रूपए) |
|---|---|---|
| ओरछा या टिहरी | 3,000 | 1,500 |
| दतिया | 3,000 | 1,500 |
| समथर तथा आमरा | 2,500 | 1,500 |
| बाउनी | 800 | 600 |
| पन्ना | 2,000 | 1,200 |
| चरखारी | 2,000 | 1,200 |
| अजयगढ़ | 1,500 | 900 |
| बीजावर | 1,000 | 600 |
| छतरपुर | 1,500 | 900 |
| बरौन्दा | 100 | 60 |
| सरीला | 200 | 120 |
| खनिया धाना | 50 | 60 |
| अलीपुरा | 400 | 120 |

| | | |
|---|---|---|
| घरौली | 100 | 48 |
| लुगासा | 100 | 48 |
| बीहट | 100 | 36 |
| गौरीहार | 500 | 120 |
| बेरी | 100 | 48 |
| जासो | 50 | 36 |
| नयागांव रूबाइ | 100 | 36 |
| पालदेव | 100 | 60 |
| तराउन | 25 | 36 |
| पहारा | 80 | 36 |
| भैसुन्दा | 75 | 36 |
| कामता रजौला | 20 | 24 |
| टोरी फतेहपुर | 200 | 60 |
| बिजना | 50 | 30 |
| धुरवई | 100 | 48 |
| पहारा बन्का | 20 | 24 |

| जिगनी | 150 | 48 |
|---|---|---|
| मोफीदार बिलहरी | 25 | 24 |
| पोलिटकल पेन्शनर | 55 | 144 |
| कुल | 20,000 | 11,202 |

समथर तथा आमरा द्वारा दिए जाने वाले वार्षिक अनुदान में से आमरा की रानी ने 300 रूपए वार्षिक देना स्वीकार किया । बाउनी द्वारा स्कूल के लिए यद्यपि 600 रूपए वार्षिक सहायता देने की बात कही गई थी किन्तु प्रारम्भ में यह राशि केवल 120 रूपए प्रतिवर्ष थी और धीरे-धीरे बढ़ा कर यह पांच वर्षों में 600 रूपए की जा सकी क्योंकि शुरू में इस राज्य की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी । इसी प्रकार अजयगढ़ राज्य द्वारा भी प्रथम तीन वर्षों तक 600 रूपए वार्षिक की सहायता ही दी जा सकी लेकिन राज्य द्वारा अपने ऋण चुकाए जाने के बाद यह सहायता बढ़ाकर 900 रूपए प्रतिवर्ष कर दी गई । घरौली द्वारा भी नौगांव राजकुमार स्कूल के लिए प्रथम वर्ष में केवल 24 रूपए वार्षिक सहायता दी गई जिसे तीन वर्षों के बाद 48 रूपए वार्षिक कर दिया गया ।

एजेंसी की विभिन्न रियासतों द्वारा इस कालेज के लिए प्रदान की गई आर्थिक सहायता से इसकी योजना के कार्यान्वयन में शीघ्र ही सफलता मिली । स्कूल के लिए जल्दी ही नौगांव में 5000 रूपए में एक बड़ा मकान खरीद लिया गया जिसमें स्कूल

प्रारम्भ करने के लिए पुनर्निर्माण का कार्य भी किया गया लेकिन स्कूल के लिए फर्नीचर, किताबें, यन्त्र आदि क्षेत्र की विभिन्न रियासतों द्वारा उपलब्ध कराई गईं ।

सन् 1874 में भारत सरकार ने राजकुमार कालेज आरम्भ करने की योजना को स्वीकृति दे दी । कालेज बिल्डिंग फंड के लिए सरकार द्वारा 20,000 रूपए की सहायता अनुदान राशि के रूप में स्वीकृत की गई । सरकार द्वारा कालेज सुपरिंटेंडेंट का वेतन लगभग 400 रूपए प्रतिमाह तथा रहने के लिए एक निःशुल्क घर पहले तीन वर्षों तक दिया जाना स्वीकार कर लिया गया । कालेज सुपरिंटेंडेंट का वेतन उसका कार्य संतोषजनक होने पर प्रति तीन वर्षों के लिए @ 100 रूपए की दर से बढ़ाए जाने का निर्णय भी लिया गया । चूंकि कालेज में राजप्रमुखों एवं जागीरदारों के लड़कों को प्रवेश देने का विचार था इसलिए यह अति आवश्यक था कि कालेज का सुपरिंटेंडेंट एक अत्यन्त योग्य प्रशासक हो । बुन्देलखण्ड के पोलिटिकल एजेंट को कालेज का मुख्य प्रबन्धक नियुक्त किया गया ।[1]

श्री जान मैथर (John Mather) को 5 जून, 1875 को बुन्देलखण्ड के राजकुमार कालेज का सुपरिंटेंडेंट नियुक्त किगा ।[2]

---

1 फाइल संख्या 5/1872-पत्र दिनांक 21 फरवरी,1874 भारत सरकार के सचिव का पत्र

2 -वही-

स्कूल के नियमानुसार, निम्न वर्गों के छात्र यहां प्रवेश लेने के पात्र थे:

(i) राजकुमार अर्थात् प्रमुख तथा प्रमुखों के पुत्र ।

(ii) राजप्रमुखों के सगे-संबंधी ।

(iii) उच्च राज दरबारियों के पुत्र ।

लेकिन यह निश्चित था कि श्रेणी (ii) तथा (iii) के छात्रों के प्रवेश से प्रथम श्रेणी के छात्रों के लिए कोई रूकावट नहीं होनी चाहिए । पोलिटिकल एजेंट ने स्कूल के बारे में अपनी प्रथम रिपोर्ट में लिखा कि स्कूल सुपरिंटेंडेंट श्री मैथर एक शान्त एवं दृढ़ निश्चय का व्यक्ति था जिसने छात्रों की पढ़ाई के साथ-साथ उनके खेल-कूद को भी प्रोत्साहित किया ।[1]

इस प्रकार लार्ड मेयो की स्मृति में नौगांव में राजकुमार कालेज का प्रारम्भ हुआ। श्री मैथर को जून 1875 में इसका प्रथम सुपरिंटेंडेंट नियुक्त किया गया और 1 जुलाई, 1875 से कालेज औपचारिक रूप से शुरू किया गया । प्रथम माह में कालेज में 17 छात्र थे । छात्रों की संख्या प्रारम्भ में अधिक न होने के मुख्यतः दो कारण थे। एक तो वर्षा ऋतु शुरू हो जाने के कारण अभी छात्रों के रहने का समुच्चित प्रबन्ध नहीं हो सका था । इसके अतिरिक्त आसपास के क्षेत्रों में हैजा फैल गया था जिसका प्रकोप कुछ महीनों तक रहा अतः कालेज में अधिक छात्रों ने प्रवेश नहीं लिया । अधिकांश

---

1 फाइल संख्या 5/1872-प्रथम सत्र की रिपोर्ट

छात्र छोटी रियासतों के राजप्रमुखों के घराने से थे । इनमें सरीला का राजा, जिगनी के जागीरदार, छतरपुर के राजा के संबंधी, लुगासी के जागीरदार का भाई तथा संबंधी, पन्ना, चिरखारी तथा अन्य राज्यों के सरदारों के पुत्र, छतरपुर तथा जिगनी के सुपरिंटेंडेंटस के पुत्रों को स्कूल में प्रवेश दिया गया ।

राजाओं एवं जागीरदारों के पुत्रों के साथ-साथ उनके संबंधियों एवं सरदारों के पुत्रों को स्कूल में प्रवेश देने का एक लाभ यह हुआ कि उनमें प्रतिस्पर्धा की भावना बढ़ी जिस कारण इस स्कूल ने कई सफल शासकों के निर्माण में योगदान दिया । अतः यह निष्कर्ष गलत नहीं होगा कि यदि केवल शासकों के पुत्रों को ही स्कूल में प्रवेश दिया जाता तो उनमें आपस में एक-दूसरे से आगे बढ़ने की भावना न होने के कारण वे अधिक परिश्रम एवं लगन से पढ़ाई न करते ।

## विभिन्न राज्यों में शिक्षा की स्थिति :

### दतियाः

सन् 1866 में दतिया दरबार के सदस्य श्री नन्द किशोर ने इस राज्य में शिक्षा की स्थिति की समीक्षा करते हुए लिखा कि दतिया राज्य में पांच स्कूल थे जिनमें से एक सदर स्टेशन दतिया में स्थित था तथा तीन परगनों इन्द्रगढ़, स्योनदाह तथा नदीगांव में से प्रत्येक में एक तथा एक इन्द्रगढ़ परगना के एक प्रमुख गांव कोछर (Qochar) में था ।

कोछर गांव में यह स्कूल सन् 1866 में ही स्थापित किया गया था । दतिया स्कूल में तीन कक्षाएं थीं - परशियन, हिन्दी एवं अंग्रेजी । जबकि परगना स्कूलों में प्रत्येक में केवल हिन्दी तथा परशियन ही पढ़ाई जाती थी । कोछर स्कूल चूंकि 1866 में ही स्थापित किया गया था इसमें केवल एक ही कक्षा थी जिसमें हिन्दी एवं परशियन दोनों की ही शिक्षा दी जाती थी ।

दतिया राज्य में कुल 11 अध्यापक थे जिनमें से दतिया स्कूल में चार अध्यापक थे-एक हिन्दी, एक अंग्रेजी, एक परशियन तथा एक सुलेख अध्यापक था । इन्द्रगढ़, स्योनदाह तथा नदीगांव के स्कूलों में हिन्दी तथा परशियन प्रत्येक के लिए एक अध्यापक की व्यवस्था थी जबकि कोछर स्कूल में केवल एक ही अध्यापक था । शिक्षकों के अतिरिक्त प्रत्येक स्कूल में एक क्लर्क, एक लाइब्रेरियन तथा एक चपरासी ही था । इस प्रकार इन स्कूलों में कुल मिलाकर अधिक स्टाफ नहीं था ।

दतिया, इन्द्रगढ़, स्योनदाह तथा नदीगांव के स्कूल का खर्च राज्य सरकार द्वारा वहन किया जाता था जबकि कोछर स्कूल को राज्य द्वारा 5 रूपए प्रति माह की अनुदान राशि दी जाती थी । इस स्कूल के अन्य खर्च स्थानीय लोगों द्वारा उठाए जाते थे । छात्रों से कोई फीस नहीं ली जाती थी और गरीब छात्रों को राज्य द्वारा पुस्तकें उपलब्ध कराई जाती थीं ।[1]

---

1 फाइल संख्या 3/1866

1866 में दतिया राज्य के इन 5 स्कूलों में कुल 265 छात्र थे । इनकी प्रतिदिन औसत उपस्थिति 204 थी । धर्म और जाति के आधार पर इन छात्रों का वर्गीकरण इस प्रकार था :

| स्कूल | हिन्दू | | | | | | मुस्लिम | कुल |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| | ठाकुर | ब्राह्मण | वैश्य | क्षत्रिय | अन्य | कुल हिन्दू | | |
| दतिया | 1 | 29 | 5 | 40 | 8 | 83 | 20 | 103 |
| इन्द्रगढ़ | 0 | 12 | 0 | 2 | 2 | 16 | 0 | 16 |
| कोछर | 0 | 12 | 9 | 3 | 0 | 24 | 3 | 27 |
| स्योनदाह | 7 | 18 | 13 | 15 | 2 | 55 | 3 | 58 |
| नदीगांव | 7 | 15 | 6 | 24 | 8 | 60 | 1 | 61 |
| कुल | 15 | 86 | 33 | 84 | 20 | 238 | 27 | 265 |

इन 265 छात्रों में से 179 अपनी जीविका के लिए किसी न किसी प्रकार से राज्य की सहायता पर निर्भर थे तथा 86 अपनी जीविका के लिए अन्य साधनों पर निर्भर थे ।[1]

---

1 फाइल संख्या 3/1866

दतिया राज्य के इन पांच स्कूलों में शिक्षा विभिन्न भाषाओं में दी जाती थी । भाषा के आधार पर इन स्कूलों के छात्रों का वर्गीकरण इस प्रकार था :

| स्कूल | विभिन्न भाषाओं में छात्रों की संख्या | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| | अंग्रेजी | परशियन | उर्दू | संस्कृत | हिन्दी | कुल |
| दतिया | 27 | 24 | 16 | 10 | 26 | 103 |
| इन्द्रगढ़ | 0 | 6 | 3 | 0 | 7 | 16 |
| कोछर | 0 | 3 | 0 | 0 | 24 | 27 |
| स्योनदाह | 0 | 13 | 5 | 6 | 34 | 58 |
| नदीगांव | 0 | 14 | 13 | 0 | 34 | 61 |
| कुल | 27 | 60 | 37 | 16 | 125 | 265 |

इन आंकड़ों से स्पष्ट होता है कि राज्य में हिन्दी सीखने पर अधिक जोर दिया जाता था । यद्यपि दतिया स्कूल में अंग्रेजी के विद्यार्थियों की संख्या हिन्दी के विद्यार्थियों से अधिक थी लेकिन राज्य के अन्य स्कूलों में अंग्रेजी शिक्षा की कोई व्यवस्था नहीं थी। अतः राज्य में छात्रों का एक बड़ा प्रतिशत हिन्दी, परशियन तथा उर्दू की शिक्षा ग्रहण कर रहा था । संस्कृत में छात्रों की रूचि कम थी ।

दतिया राज्य द्वारा शिक्षा पर वर्ष 1866 में कुल 2845-3-6 राजश्री रूपए खर्च किए गए । प्रत्येक स्कूल पर किया गया मासिक खर्च इस प्रकार था-दतिया स्कूल 133-10-0 रूपए, इन्द्रगढ़ स्कूल 30 रूपए, स्योनदाह स्कूल 30 रूपए, नदीगांव स्कूल पर 27 रूपए और कोछर स्कूल पर 6 रूपए प्रतिमाह के अनुसार खर्च होता था । स्कूलों के रखरखाव तथा बिल्डिंग आदि पर होने वाले खर्च उपरोक्त खर्चों के अतिरिक्त थे । राज्य द्वारा शिक्षा कोष में इस वर्ष 2865-11-0 राजश्री रूपए दिए गए । प्रत्येक छात्र की शिक्षा पर लगभग 11 रूपए वार्षिक खर्च आता था ।

राज्य के लोगों में अंग्रेजी भाषा सीखने के प्रति अधिक रूचि नहीं थी । वे राज्य से बाहर जाकर कार्य करने के इच्छुक नहीं थे । अतः उनका मानना था कि अंग्रेजी सीखने का कोई लाभ नहीं था । क्योंकि राज्य में व्यापार हिन्दी या परशियन में ही होता था ।

राज्य में शिक्षा के प्रति लोगों में रूचि न होने का एक प्रमुख कारण यह भी था कि वे शिक्षा से प्राप्त होने वाले लाभ को भली भांति नहीं समझते थे अथवा समझना नहीं चाहते थे । इसीलिए लोग अपने बच्चों की शिक्षा में कोई रूचि नहीं लेते थे । ठाकुर यद्यपि राज्य की एक सम्मानित जाति थी लेकिन उनमें भी शिक्षा के प्रति उदासीनता ही पाई जाती थी । केवल एक ठाकुर लड़का दतिया में, 7 स्योनदाह में तथा 7 नदीगांव स्कूल में थे । अन्य जातियों के लोग भी शिक्षा से लाभ उठाने के इच्छुक नहीं थे । कुछ

ही वैश्य अपने लड़कों को स्कूल भेजते थे लेकिन कुछ सीख जाने पर उन्हें स्कूल से हटा लिया करते थे । खेती करने वाले अपने लड़कों को स्कूल नहीं भेजते थे । इस प्रकार स्कूल जाने वाले लड़कों में अधिकांश राज्य अधिकारियों के लड़के, ब्राह्मण, कायस्थ या लेखक श्रेणी के परिवारों से संबंधित थे तथा अन्य जातियों के कुछ ही लड़के थे ।

लोगों में शिक्षा के प्रति अरूचि का एक कारण यह भी था कि वे राज्य से बाहर जाकर नौकरी नहीं करना चाहते थे और राज्य में अधिकतर पद (सिविल तथा सैनिक) वंशानुगत थे । पिता का पद तथा वेतन पुत्र को प्राप्त होता था चाहे वह उस पद के लिए आवश्यक योग्यता रखता हो अथवा नहीं । इसीलिए न तो माता पिता अपने लड़कों की शिक्षा में कोई रूचि रखते थे और न ही लड़के परिश्रम से कुछ सीखने का कष्ट उठाना चाहते थे ।[1]

यही कारण थे कि राज्य के विभिन्न स्कूलों में छात्रों की संख्या कम थी । वे प्रतिदिन उपस्थित नहीं होते थे और स्कूल आने के बाद भी वे अपनी पढ़ाई में अधिक ध्यान नहीं देते थे । लेकिन यदि इन कारणों को ध्यान में रखते हुए शिक्षा की प्रगति का विश्लेषण किया जाए तो विभिन्न स्कूलों में शिक्षा की स्थिति सन्तोषजनक मानी जा सकती है । दतिया स्कूल में अंग्रेजी, हिन्दी तथा परशियन कक्षाओं ने अंकगणित, भूगोल, इतिहास आदि में संतोषजनक प्रगति की थी जबकि इन्द्रगढ़ तथा नदीगांव

---

1 फाइल संख्या 3/1866

स्कूलों में अधिक विकास नहीं हुआ था ।

राज्य में इन पांच स्कूलों के अतिरिक्त बरौनी के ठाकुरों द्वारा बरौनी में सन् 1866 में एक स्कूल प्रारम्भ किया गया जिसका प्रबन्ध बरौनी ठाकुरों द्वारा ही किया जाता था । इस स्कूल में शुरू में 6 छात्र परशियन में तथा 11 हिन्दी में थे ।

सन् 1867 में दतिया राज्य में स्कूलों की संख्या 5 ही थी लेकिन इस वर्ष तक बरौनी के ठाकुरों द्वारा 1866 में स्थापित स्कूल आपसी मतभेदों के कारण बन्द कर दिया गया था लेकिन उसके स्थान पर गांव में बरौनी ठाकुरों द्वारा एक नया स्कूल खोला गया । इसके अतिरिक्त पडरी गांव तथा दतिया परगना के जमींदारों द्वारा अपने गांव में स्कूल खोलने के लिए राज्य सरकार को प्रार्थना पत्र भी दिया गया था ।

यद्यपि 1867 में प्रत्येक स्कूल में कक्षाओं की संख्या एवं अध्यापकों की संख्या पिछले वर्ष के बराबर ही थी लेकिन इस वर्ष इन्द्रगढ़ स्कूल में हिन्दी तथा परशियन के छात्रों को एक ही अध्यापक के नियंत्रण में दे दिया गया था ।

इस वर्ष विभिन्न स्कूलों में छात्रों की संख्या में कुछ वृद्धि हुई । अब राज्य के विभिन्न स्कूलों में कुल 330 छात्र थे जिनकी औसत उपस्थिति पिछले वर्ष की औसत उपस्थिति (204) की तुलना में बढ़कर 250 हो गई थी । एक रिपोर्ट के अनुसार इस

वर्ष विभिन्न स्कूलों में विभिन्न जातियों के छात्रों की संख्या इस प्रकार थी [1]:

| स्कूल | हिन्दू | | | | | | मुस्लिम | कुल |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| | ठाकुर | ब्राह्मण | वैश्य | क्षत्रिय | अन्य | कुल हिन्दू | | |
| दतिया | 1 | 39 | 3 | 37 | 19 | 99 | 21 | 120 |
| इंद्रगढ़ | 1 | 15 | 3 | 7 | 10 | 36 | 4 | 40 |
| कोछर | 0 | 16 | 9 | 7 | 3 | 35 | 4 | 39 |
| स्योनदाह | 0 | 30 | 7 | 17 | 5 | 59 | 6 | 65 |
| नदीगांव | 2 | 11 | 6 | 22 | 16 | 57 | 9 | 66 |
| कुल | 4 | 111 | 28 | 90 | 53 | 286 | 44 | 330 |

इन आंकड़ों के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि स्कूलों में ठाकुर जाति के छात्रों की संख्या पिछले वर्ष की तुलना में कम हो गई थी जबकि ब्राह्मण तथा अन्य जाति के छात्रों की संख्या में अपेक्षाकृत काफी वृद्धि हुई थी ।

---

1 फाइल संख्या 3/1866

भाषा की दृष्टि से विभिन्न स्कूलों में छात्रों का वर्गीकरण इस प्रकार था :

| स्कूल | छात्रों की संख्या | | | |
|---|---|---|---|---|
| | अंग्रेजी | परशियन तथा उर्दू | संस्कृत एवं हिन्दी | कुल |
| दतिया | 25 | 52 | 43 | 120 |
| इन्द्रगढ़ | 0 | 17 | 23 | 40 |
| कोछर | 0 | 11 | 28 | 39 |
| स्योनदाह | 0 | 25 | 40 | 65 |
| नदीगांव | 0 | 30 | 36 | 66 |
| कुल | 25 | 135 | 170 | 330 |

इस प्रकार अंग्रेजी के विद्यार्थियों की संख्या में कोई वृद्धि नहीं हुई थी । राज्य के परगना स्कूलों में अभी तक अंग्रेजी की शिक्षा की व्यवस्था नहीं हुई थी अतः इन स्कूलों में केवल हिन्दी परशियन आदि ही पढ़ाई जाती थी । स्कूलवार विश्लेषण से हम देखते हैं कि दतिया तथा इन्द्रगढ़ एवं कोछर के स्कूलों में छात्रों की संख्या गत वर्ष की अपेक्षा अधिक थी किन्तु स्योनदाह एवं नदीगांव में सम्भवतः कुछ छात्रों ने पढ़ाई छोड़ दी थी ।

शिक्षा पर होने वाले खर्च की दृष्टि से सन् 1867 के आंकड़ों के अनुसार राज्य द्वारा शिक्षा पर कुल 2761-6-9 राजश्री रूपए खर्च किए गए थे । इनमें से दतिया

स्कूल पर 133-2-0 रूपए, इन्द्रगढ़ पर 20-11-11 रूपए, कोछर स्कूल पर 5-14-0 रूपए, स्योनदाह स्कूल पर 30-11-11 रूपए तथा नदीगांव स्कूल पर 27-0-0 रूपए खर्च हुए। इस वर्ष प्रत्येक छात्र की शिक्षा पर वार्षिक 8-6-0 रूपए खर्च हुए जो पिछले वर्ष की अपेक्षा 2-10-0 रूपए कम था ।

सन् 1867 में छात्रों की संख्या में गत वर्ष की अपेक्षा कुल वृद्धि 65 थी । सम्भवतः इसका कारण आम लोगों में शिक्षा के प्रति बढ़ती जागरूकता हो सकती है । लेकिन ठाकुर जाति में शिक्षा की अरूचि अभी भी थी बल्कि इस वर्ष उनकी संख्या में हुई कमी इस बढ़ती अरूचि की द्योतक कही जा सकती है । उपरोक्त आंकड़ों से यह स्पष्ट होता है कि अंग्रेजी सीखने के प्रति लोगों की इच्छा में कोई सुधार नहीं हुआ था । एक रिपोर्ट के अनुसार इसका मुख्य कारण भी ठाकुरों में शिक्षा के प्रति उदासीनता को ही माना गया है ।[1]

फरवरी 1867 में कर्नल मीड (Colonel Meade) मध्य भारत के गवर्नर जनरल के एजेन्ट ने दतिया स्कूल का निरीक्षण किया और अपनी रिपोर्ट में स्कूल की प्रगति पर संतोष व्यक्त किया ।

सन् 1879 में श्री जे.मैथर जो राजकुमार कालेज, नौगांव में प्रिंसीपल थे, ने दतिया स्कूल का निरीक्षण किया । क्षेत्र के विभिन्न स्कूलों के निरीक्षण का कार्य उन्हें

---

1 फ़ाइल संख्या 3/1866

पोलिटिकल एजेंट बुन्देलखण्ड द्वारा सौंपा गया था । इस समय स्कूल में पांच विभाग थे: अंग्रेजी, परशियन, संस्कृत, हिन्दी तथा महाजनी । स्कूल में छात्रों की कुल संख्या 146 थी एवं जनवरी से सितम्बर माह तक छात्रों की औसत उपस्थिति 117 थी । इस प्रकार छात्रों की उपस्थिति लगभग 78% थी ।[1]

रिपोर्ट के अनुसार अंग्रेजी विभाग में तीन कक्षाएं थीं जिनमें से कोई भी सामान्य से अधिक स्तर की नहीं थी । जे.मैथर ने पाया कि इनमें से दो कक्षाओं के छात्रों को सुलेख में विशेष सुधार की आवश्यकता थी । इन कक्षाओं में अंकगणित भी पढ़ाई जाती थी लेकिन पढ़ाई संतोषजनक नहीं थी । निरीक्षक का मानना था कि छात्रों को अंकगणित में पहाड़े, जोड़ घटाना, गुणा भाग इत्यादि अंग्रेजी में सिखाने का कोई औचित्य नहीं था जब तक वे इन्हें अपनी भाषा में अच्छी तरह न सीख लें । रिपोर्ट के अनुसार अध्यापक का गणित पढ़ाने का ढंग ठीक नहीं था । किन्तु अंग्रेजी की पढ़ाई सन्तोषजनक थी । छात्रों को इतिहास एवं भूगोल की शिक्षा भी दी जाती थी ।[2]

अंग्रेजी की तीसरी कक्षा में नए छात्र थे । निरीक्षण के समय यह देखा गया कि इन छात्रों ने अपनी अंग्रेजी की पुस्तक "दी स्टूडेन्टस फ्रेन्ड" की कुछ पंक्तियां याद कर

---

1 फाइल संख्या 1/1878

2 -वही-

रखी थीं किन्तु बिना ठीक से समझे इस प्रकार रटना उचित नहीं था ।[1]

स्कूल में संस्कृत एवं हिन्दी विभागों में प्रत्येक में तीन कक्षाएं थीं जिनमें कुल 51 छात्र थे । प्रथम कक्षा के छात्रों को साहित्य, व्याकरण, इतिहास, भूगोल एवं गणित का अच्छा ज्ञान था लेकिन दूसरी एवं तीसरी कक्षा की पढ़ाई सन्तोषजनक नहीं थी । यद्यपि छात्र संस्कृत की शिक्षा ग्रहण कर रहे थे किन्तु उन्हें हिन्दी या नागरी भाषा के बारे में बहुत कम ज्ञान था । जबकि उचित यह था कि छात्रों को संस्कृत की शिक्षा देने से पूर्व उन्हें हिन्दी की शिक्षा दी जाए । स्कूल के निरीक्षण में यह भी देखा गया कि छात्रों को पढ़ाई जाने वाली संस्कृत की किताबें इन दोनों कक्षाओं के स्तर के अनुरूप नहीं थीं ।

दतिया स्कूल के निरीक्षण का यह कार्य प्रिंसीपल राजकुमार कालेज, नौगांव तथा उनके साथ आए पंडित मुकुन्द लाल शास्त्री, मौलवी काजिम हुसैन तथा लाला दुर्गा प्रसाद द्वारा किया गया था । इस रिपोर्ट के आधार पर तत्कालीन शिक्षा पद्धति किस प्रकार की थी एवं उसमें किन सुधारों की आवश्यकता थी आदि के बारे में अनुमान लगाया जा सकता है । पंडित मुकुन्द लाल शास्त्री जिन्होंने संस्कृत एवं हिन्दी विभागों का निरीक्षण किया था, के अनुसार स्कूल की हिन्दी की प्रथम कक्षा में दो वर्ग थे । पहले वर्ग में वर्ष 1879 में स्कूल में भर्ती किए गए राजकुमार लड़के थे और उन्हें साहित्य, इतिहास, भूगोल तथा अंकगणित की शिक्षा दी जाती थी । वे अपनी किताबें ठीक से पढ़

---

1 फाइल संख्या 1/1878

नहीं सकते थे यद्यपि उन्होंने अपनी किताबें तोते की तरह रट रखी थीं । इस कक्षा के दूसरे वर्ग में अन्य लड़के थे । उन्हें जो पढ़ाया गया था उसका उन्हें भली भांति ज्ञान था । हिन्दी की दूसरी कक्षा की पढ़ाई सन्तोषजनक थी । तीसरी कक्षा में हिन्दी प्रीमियर पुस्तक पढ़ाई जाती थी और अंकगणित की शिक्षा भी दी जा रही थी जिसमें निरीक्षण तक जोड़ के प्रश्न सिखाए गए थे ।

इस प्रकार हिन्दी विभाग की रिपोर्ट के आधार पर शिक्षा पद्धति के बारे में एक प्रमुख बात यह स्पष्ट होती है कि राजकुमारों को स्कूल में अन्य छात्रों से अलग कक्षा में रखा गया था । उनकी शिक्षा व्यवस्था सम्भवतः आम लड़कों से अलग इसलिए रखी गई थी ताकि उन पर स्कूल में विशेष ध्यान दिया जा सके । यह अलग बात थी कि वे विशेष व्यवहार प्राप्त होने के कारण अपनी पढ़ाई में लापरवाह हो रहे थे । इसी कारण उनकी कक्षा का परिणाम अन्य छात्रों की कक्षा की तुलना में सन्तोषप्रद नहीं था ।

स्कूल के महाजनी विभाग का निरीक्षण लाला दुर्गा प्रसाद द्वारा किया गया । उसकी रिपोर्ट के अनुसार इस विभाग में निरीक्षण के समय 31 छात्र उपस्थित थे किन्तु उन्हें जो पढ़ाया गया था उसका भली-भांति ज्ञान था यद्यपि इनमें से अधिकांश अभी प्रारम्भिक स्थिति में ही थे ।

स्कूल में विभिन्न विभागों के निरीक्षण के पश्चात् यह पाया गया कि इन विभागों

में आपस में कोई तालमेल नहीं था । इसलिए इस बात की आवश्यकता थी कि संस्कृत हिन्दी तथा परश्यिन विभाग के छात्रों को एक निश्चित स्तर तक शिक्षा देकर उन्हें अंग्रेजी विभाग में शामिल किया जाए ।

मौलवी काज़िम हुसैन की रिपोर्ट के अनुसार स्कूल के परशियन विभाग में कुल 36 छात्र थे तथा पांच कक्षाएं थीं । पहली कक्षा का परिणाम यद्यपि साहित्य में सन्तोषजनक था किन्तु इन छात्रों का व्याकरण का ज्ञान बहुत कम था । उन्हें परश्यिन से उर्दू में भली-भांति अनुवाद करना नहीं आता था । उनका पढ़ने का तरीका भी बिल्कुल अच्छा नहीं था । अन्य कक्षाओं की भी यही स्थिति थी । रिपोर्ट के अनुसार परश्यिन पढ़ाने वाले मौलवी द्वारा छात्रों की व्याकरण एवं अनुवाद की शिक्षा पर भविष्य में अधिक ध्यान देने की आवश्यकता थी । मौलवी काज़िम हुसैन का मानना था कि उर्दू विभाग के छात्रों को इस प्रकार पढ़ाये जाने की आवश्यकता थी कि वे अपनी किताबों को तोते की तरह रटने के बजाय उन्हें समझ सकें ।

निरीक्षण रिपोर्ट के अनुसार दतिया स्कूल में कार्यरत अध्यापकों को कम वेतन मिलता था और इसलिए उनका वेतन बढ़ाने जाने की संस्तुति भी की गई ।

सन् 1879 में दतिया राज्य स्कूल में निम्नलिखित अध्यापक तथा अन्य

कर्मचारी थे तथा उन्हें दिया जाने वाला वेतन इस प्रकार था :

| पद | स्थानीय करेंसी<br>रू. आना पैसा | | | सरकारी मुद्रा<br>रू. आना पैसा | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्रधानाध्यापक | - | - | - | 45 | - | - |
| मुख्य पंडित | 30 | - | - | 22 | 8 | - |
| प्रथम सहायक पंडित | 10 | - | - | 7 | 8 | - |
| द्वितीय सहायक पंडित | 5 | - | - | 3 | 12 | - |
| परशियन मौलवी | 20 | - | - | 15 | - | - |
| क्लर्क | 10 | - | - | 7 | 8 | - |
| | 75 | - | - | 101 | 4 | - |

इसके स्थान पर निम्नलिखित वेतन दिए जाने की संस्तुति की गई :

| | सरकारी मुद्रा<br>रू. आना पैसे | | |
|---|---|---|---|
| प्रधानाध्यापक | 60 | - | - |
| सहायक अध्यापक | 25 | - | - |
| परशियन अध्यापक | 25 | - | - |
| सहायक अध्यापक | 15 | - | - |
| हिन्दी अध्यापक | 25 | - | - |

| | | | |
|---|---|---|---|
| सहायक अध्यापक | 15 | - | - |
| महाजनी अध्यापक | 5 | - | - |
| | 170 | - | - |

निरीक्षण दल द्वारा यह सुझाव दिया गया कि स्कूल के लिए एक नये अंग्रेजी सहायक अध्यापक की आवश्यकता थी । परश्यिन में भी एक नए सहायक मौलवी की आवश्यकता थी एवं एक प्रधान मौलवी का पद रखा जाना चाहिए था।

अगले वर्ष 1880 में अक्तूबर में इसी निरीक्षण टीम द्वारा पुनः स्कूल का वार्षिक निरीक्षण किया गया । मैथर ने अपनी रिपोर्ट में संस्तुति की कि यदि महाराजा तथा दरबार के सदस्य स्कूल में कुछ रूचि लें तो स्कूल में सभी विभागों में छात्रों की संख्या बढ़ सकती है । दतिया जैसे बड़े शहर के लिए स्कूल में छात्रों की संख्या अपेक्षाकृत अधिक होनी चाहिए । स्कूल के हिन्दी विभाग में राजकुमारों के लिए एक अलग कक्षा थी जिसमें 15 छात्र थे लेकिन उनकी पढ़ाई की स्थिति अन्य कक्षाओं के छात्रों की तुलना में अच्छी नहीं थी । सम्भवतः इसका मुख्य कारण उनकी लगातार अनुपस्थिति थी । पंडित मुकन्द लाल शास्त्री ने अपने रिपोर्ट में राजकुमारों की इस विशेष कक्षा के बारे में लिखा कि इस कक्षा के छात्र गत वर्ष की तुलना में सभी विषयों में कमजोर थे ।

बुन्देलखण्ड में केवल दतिया स्कूल ही एक मात्र ऐसा स्कूल था जिसमें सभी भाषा विषयों में एक निश्चित कोर्स के अनुसार पढ़ाई कराई जाती थी । कुल मिलाकर स्कूल में शिक्षा की स्थिति गत वर्ष की अपेक्षा अच्छी थी ।

सन् 1882 में दतिया स्कूल की शिक्षा की स्थिति में कुछ सुधार हुआ । इस समय श्री राम रतन स्कूल में हैडमास्टर थे । सन् 1881 की अपेक्षा इस वर्ष स्कूल में छात्रों की संख्या कुछ अधिक थी । इस समय तक स्कूल में सभी विभागों में नियमित कोर्स के अनुसार शिक्षा दी जाने लगी थी । रिपोर्ट के अनुसार स्कूल के पांच छात्रों ने इस वर्ष सेन्ट्रल इंडिया स्कूलस की तृतीय कक्षा की परीक्षा दी थी और इसमें उनकी सफलता की भी आशा थी अर्थात् स्कूल के शिक्षा स्तर में लगातार सुधार हो रहा था । आने वाले वर्षों में और अधिक छात्रों के तीसरी कक्षा पास करने की आशा थी लेकिन रिपोर्ट के अनुसार हैडमास्टर को अभी विद्यार्थियों को द्वितीय कक्षा की परीक्षा के लिए नहीं भेजना चाहिए क्योंकि इससे स्कूल में छोटी कक्षाओं की पढ़ाई पर आवश्यक ध्यान नहीं दिया जा सकेगा ।[1]

इस वर्ष तक स्कूल में छात्रों को स्वयं को स्वच्छ रखने के बारे में भी अच्छी शिक्षा दी जाने लगी थी । वे अब साफ सुथरे कपड़ों में दिखाई देते थे । सम्भवतः इसके

---

1 फाइल संख्या 1/1878

लिए दरबार की तरफ से भी प्रयास किए गए थे ।[1]

स्कूल में ठाकुर छात्रों की संख्या छः थी जिनमें से तीन अपनी पढ़ाई में बहुत कमजोर थे जिसका एक मुख्य कारण उनके द्वारा नियमित रूप से स्कूल न आना था । इस वर्ष निरीक्षण टीम द्वारा स्कूल की कमियों की ओर भी संकेत किया गया । श्री माइकल, जिसने इस वर्ष की निरीक्षण रिपोर्ट दी थी, के अनुसार श्री मैथर द्वारा गत वर्ष स्कूल में छात्रों की लगातार अनुपस्थिति तथा अनुशासनहीनता का जो संकेत दिया गया था वह अब भी था और इसका मुख्य कारण स्कूल के अध्यापकों में अनुशासनहीनता तथा उनकी अनुपस्थिति थी । यह एक गम्भीर चिन्ता की बात थी । श्री माइकल के अनुसार उन्होंने जब भी हैडमास्टर से किसी भी कक्षा के अध्यापक के बारे में पूछा तो वह कोई सन्तोषजनक उत्तर नहीं दे सके थे । इसी कारण स्कूल के छात्र अपनी आयु की तुलना में शिक्षा में पिछड़े कहे जा सकते थे ।

स्कूल के परशियन विभाग में पढ़ाई अच्छी थी । लेकिन विभाग के छात्रों में से एक भी परशियन से उर्दू में मुहावरावार अनुवाद नहीं कर सकता था । वे सभी पुराने तरीके से अनुवाद करते थे । उर्दू विभाग में सभी छात्र अभी नए थे और उन्हें अपने विषय का अधिक ज्ञान नहीं था । हिन्दी विभाग में यह देखा गया कि छात्रों को उनकी योग्यता से अधिक कठिन पुस्तकें पढ़ाई जा रही थीं । महाजनी कक्षा में भी पढ़ाई का

---

1 फाइल संख्या 1/1878-ए.पी.माइकल की रिपोर्ट दिनांक 23.12.1882

स्तर सन्तोषजनक नहीं पाया गया । अतः निरीक्षण टीम ने अपनी रिपोर्ट में लिखा कि स्कूल में यद्यपि प्रथम श्रेणी का स्कूल होने के साधन उपलब्ध थे किन्तु अनुशासनहीनता और स्कूल के प्रबन्ध संबंधी कोई नियम न होने के कारण स्कूल में अधिक सुधार की आशा नहीं की जा सकती थी । पोलिटिकल एजेंट ने इसी वर्ष स्कूल के बारे में अपनी रिपोर्ट में यह भी कहा था "ऐसा प्रतीत होता है कि हैडमास्टर अपने पद के योग्य नहीं है और दरबार को एक नए योग्य मास्टर की नियुक्ति करनी चाहिए ।" अंग्रेजी विभाग के लिए भी एक अतिरिक्त अध्यापक की आवश्यकता थी । रिपोर्ट के अनुसार "यदि वर्तमान हैडमास्टर को एक निम्न पद पर नियुक्त कर दिया जाए और स्कूल का प्रबन्ध किसी अनुशासन प्रिय और नियमित आदतों वाले योग्य अध्यापक को सौंप दिया जाए तो स्कूल में अति शीघ्र सुधार देखा जा सकता है ।"[1]

इस प्रकार विभिन्न रिपोर्टों के आधार पर यह स्पष्ट है कि दतिया राज्य स्कूल में शिक्षा की स्थिति सन्तोषजनक नहीं थी जिसका मुख्य कारण स्कूल के प्रति दरबार की उदासीनता एवं अध्यापकों में अनुशासन की कमी थी । स्वयं में अनुशासन न होने के कारण वे छात्रों में अनुशासन लागू नहीं कर सकते थे । इसके अतिरिक्त राज्य के लोगों में भी शिक्षा के प्रति अधिक रूचि नहीं थी । जनता में शिक्षा के प्रति जागरूकता पैदा

---

1 फाइल संख्या 1/1876-श्री माइकल की रिपोर्ट 23.12.1882

करने के विशेष प्रयास भी सम्भवतः नहीं किए गए थे अन्यथा शिक्षा का स्तर बेहतर हो सकता था । अध्यापकों की रूचि इसलिए नहीं थी कि उन्हें वेतन कम मिलता था अतः उन्हें अपने कार्य से अधिक लगाव नहीं था । वे न तो स्कूल के प्रशासन को सुधारने में रूचि लेते थे और न ही उन्हें छात्रों के भविष्य की चिन्ता थी । राजप्रमुखों के लड़के अपनी शिक्षा के प्रति गम्भीर नहीं थे क्योंकि उन्हें इस आयु में अपने भविष्य के कार्यों के संबंध में शिक्षा के महत्व का सम्भवतः ज्ञान ही नहीं था । फिर भी दतिया राज्य में शिक्षा के प्रति किए गए प्रयास तत्कालीन परिस्थितियों को देखते हुए सराहनीय थे ।

**छतरपुर :**

छतरपुर राज्य में शिक्षा की स्थिति दतिया राज्य से अधिक भिन्न नहीं थी । राजकुमार कालेज के प्रिंसीपल जै.मैथर द्वारा बुन्देलखण्ड क्षेत्र के सभी स्कूलों का प्रतिवर्ष निरीक्षण किया जाता था । इसमें छतरपुर राज्य स्कूल भी था । इन निरीक्षण रिपोर्टों के आधार पर राज्य की शिक्षा की स्थिति का आकलन आसानी से किया जा सकता है । यह रिपोर्ट प्रतिवर्ष पोलिटिकल एजेंट बुन्देलखण्ड को भेजी जाती थी और इसके आधार पर पोलिटिकल एजेंट बुन्देलखण्ड द्वारा समय-समय पर दरबारों को शिक्षा संबंधी निर्देश भी दिए जाते थे । इन रिपोर्टों के अनुसार छतरपुर राज्य स्कूल की स्थिति का आकलन कुछ इस प्रकार किया गया था ।

सन् 1878 में श्री जे.मैथर, पंडित मुकुन्द लाल शास्त्री, मौलवी काज़िम हुसैन तथा लाला दुर्गा प्रसाद द्वारा छतरपुर राज्य स्कूल का निरीक्षण किया गया । स्कूल में 57 छात्र थे जिनमें से वर्ष भर लगभग 32 छात्र उपस्थित रहे थे अर्थात् छात्रों की उपस्थिति मात्र 56% थी जिसे संतोषजनक नहीं कहा जा सकता था। अत: पोलिटिकल एजेंट ने स्कूल में छात्रों की उपस्थिति सुनिश्चित करने के लिए दरबार को आवश्यक कदम उठाने संबंधी निर्देश दिए । निरीक्षण टीम ने पाया कि स्कूल में पढ़ाई जा रही पुस्तकें कक्षाओं के स्तर के अनुसार नहीं थी । उदाहरण के लिए Kempsons' History of India Part I प्रथम अंग्रेजी कक्षा के लिए बहुत कठिन पुस्तक थी क्योंकि इसमें प्रयोग किए गए मुहावरों का ज्ञान केवल अंग्रेजी भाषा का अच्छा ज्ञान रखने वाले को ही हो सकता था । इसके अतिरिक्त अंग्रेजी में पाठ्य-पुस्तक के रूप में पढ़ी जाने के लिए यह पुस्तक रूचिकर भी नहीं थी । इसी प्रकार द्वितीय कक्षा को मथुरा प्रसाद की First Reading Book पढ़ाई जाती थी । स्कूल में पढ़ाई की निश्चित योजना नहीं थी इसलिए जे.मैथर के अनुसार सबसे अधिक आवश्यकता इस बात की थी कि पाठ्यक्रम की एक सुनिश्चित योजना हो ताकि जब कोई छात्र अपनी कक्षा में पढ़ाई जाने वाली पुस्तक समाप्त कर ले वह बिना किसी कठिनाई के अगली कक्षा की पुस्तक पढ़ सके ।

इस प्रकार छतरपुर राज्य स्कूल मे शिक्षा की स्थिति अच्छी नहीं थी । प्रत्येक कक्षा के लिए कोई निश्चित पाठ्यक्रम का न होना शिक्षा के प्रति राज्य सरकार की

उदासीनता का ही संकेत देता है । इसलिए पोलिटिकल एजेंट ने स्कूल को निर्देश दिया कि चरखारी स्कूल से पाठ्यक्रम की योजना की प्रतिलिपि मंगाई जाए और उसे शीघ्र ही छतरपुर में भी लागू किया जाए ।

निरीक्षण टीम का मानना था कि स्कूल के अध्यापक अपने छात्रों में उतनी रूचि नहीं लेते थे जितनी उन्हें लेनी चाहिए । इसलिए टीम का सुझाव था कि अध्यापकों का वेतन स्कूल में छात्रों की संख्या पर आधारित होना चाहिए ताकि वे स्कूल में अधिक-से-अधिक छात्रों को आने के लिए प्रेरित करें जिससे स्कूल में छात्रों का उपस्थिति प्रतिशत भी बढ़ेगा और अध्यापकों को भी स्कूल में छात्रों को बनाये रखने की आवश्यकता अनुभव होती रहेगी । इस प्रकार स्कूल की शिक्षा में कुछ सुधार किया जा सकता है ।

पोलिटिकल एजेंट को निरीक्षण टीम का यह सुझाव पसन्द आया और उसने इस योजना को कार्यान्वित करने की स्वीकृति दे दी ।

स्कूल के हिन्दी विभाग की स्थिति भी सन्तोषप्रद नहीं थी । पंडित मुकुन्द लाल शास्त्री के अनुसार हिन्दी सीखने वाले छात्र अंकगणित में बहुत कमजोर थे । उन्हें इतिहास एवं भूगोल का बिल्कुल ज्ञान नहीं था । वे जो पढ़ते थे उसे भी भली-भांति समझते नहीं थे । हिन्दी की पुस्तकें भी कक्षाओं के स्तर के अनुरूप नहीं थीं । सबसे महत्वपूर्ण बात यह थी कि अधिकांश छात्रों के माता-पिता निर्धन थे और उनकी यह निर्धनता इन छात्रों की उन्नति में बाधक थी ।

परशियन विभाग में द्वितीय कक्षा में 'गुलिस्तां' एवं तृतीय कक्षा में 'इन्शा अजीब' पुस्तक पढ़ाई जाती थी लेकिन इन कक्षाओं के स्तर की तुलना में यह पुस्तकें बहुत अधिक कठिन थीं और इनके स्थान पर आसान पुस्तकें पढ़ाने की आवश्यकता थी ताकि छात्र इन्हें भली-भांति सीख सकें । तृतीय कक्षा में पढ़ने वाले उर्दू के छात्र बहुत कमजोर थे । उन्हें जो पढ़ाया गया था वे उसे ठीक से पढ़ एवं समझ नहीं सकते थे ।

स्कूल में शिक्षा के इस निम्न स्तर का एक प्रमुख कारण यह भी था कि बहुत समय से स्कूल में हैडमास्टर का पद रिक्त था और शीघ्र से शीघ्र इस पद पर किसी उपयुक्त व्यक्ति की नियुक्ति किए जाने की आवश्यकता थी ।

अगले वर्ष 1879 में इसी टीम द्वारा 29 नवम्बर, 1879 को स्कूल का वार्षिक निरीक्षण किया गया । रिपोर्ट के अनुसार इस वर्ष स्कूल की स्थिति में गत वर्ष की तुलना में काफी सुधार हुआ था । स्कूल में छात्रों की संख्या बढ़कर 105 हो गई थी जिनमें से 16 अंग्रेजी में, 43 परशियन तथा उर्दू में एवं 46 संस्कृत तथा हिन्दी में थे । स्कूल में छात्रों की प्रतिदिन औसत उपस्थिति 43 थी और वार्षिक उपस्थिति औसत 57% थी । इस उपस्थिति प्रतिशत में और अधिक सुधार किया जा सकता था यदि राज्य द्वारा इस संबंध में कुछ रूचि ली जाए ।[1]

---

1 फाइल संख्या 1/1878

जे.मैथर के अनुसार यद्यपि इस वर्ष छात्रों द्वारा अंग्रेजी पढ़ने में सुधार हुआ था लेकिन निरीक्षण टीम द्वारा गत वर्ष दिए गए सुझाव अभी तक लागू नहीं किए गए थे । अभी तक पाठ्यक्रमों की पुस्तकें जो विभिन्न कक्षाओं के स्तर के अनुरूप नहीं थी उन्हें बदला नहीं गया था और पाठ्यक्रम की एक निश्चित योजना भी नहीं बनाई गई थी ।

इस वर्ष स्कूल में संस्कृत की तीन कक्षाएं और हिन्दी की पांच कक्षाएं थीं । पंडित मुकुन्द लाल शास्त्री के अनुसार संस्कृत की प्रथम कक्षा ने यद्यपि संस्कृत में उन्नति की थी लेकिन इन छात्रों को अंकगणित में और सुधार की आवश्यकता थी । द्वितीय तथा तृतीय कक्षा के छात्रों को हिन्दी का भी उचित ज्ञान नहीं था लेकिन उन्हें संस्कृत पढ़ाई जाती थी, इसलिए इस बात की आवश्यकता थी कि उन्हें संस्कृत के स्थान पर पहले हिन्दी सिखाई जाए । स्कूल में भूगोल की पाठ्य-पुस्तक उपयुक्त नहीं थी । स्कूल के हिन्दी विभाग में एक अच्छे अध्यापक की आवश्यकता थी।[1]

परशियन तथा उर्दू कक्षाओं में गत वर्ष की अपेक्षा बहुत सुधार हुआ था । इन विभागों में छात्रों की संख्या बढ़कर गत वर्ष की तुलना में लगभग पांच गुना हो गई थी । इस वर्ष इस विभाग में पाठ्यक्रम निश्चित कर दिया गया था । रिपोर्ट के अनुसार छात्रों को अभी परशियन से उर्दू में ठीक से अनुवाद करना नहीं आता था । वे अनुवाद में

---

1 फाइल संख्या 1/1878

मुहावरों का उचित प्रयोग करना नहीं जानते थे । उर्दू के छात्रों की पढ़ाई ठीक थी । उनकी पढ़ाई का स्तर संतोषजनक था ।

छतरपुर राज्य के अतिरिक्त 1879 में इस क्षेत्र में राजनगर परगना में एक नया स्कूल स्थापित किया गया था । इस स्कूल में इस वर्ष 40 छात्र थे । रिपोर्ट के अनुसार इस नए स्कूल का अध्यापक सर्वथा उपयुक्त था और छात्रों ने छतरपुर राज्य स्कूल के छात्रों की अपेक्षा अधिक अच्छी पढ़ाई के स्तर का परिचय दिया था ।

छतरपुर राज्य स्कूल में सन् 1879 में विभिन्न विषयों में अध्यापक एवं उनका वेतन इस प्रकार था एवं निरीक्षण टीम द्वारा स्कूल के विकास के लिए निम्नलिखित संस्तुति की गई थी :-

| अध्यापक/ वेतन | | | | | | | प्रस्तावित अध्यापक/ वेतन | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| | स्थानीय मुद्रा | | | सरकारी मुद्रा | | | | सरकारी मुद्रा | | |
| | रू. | आना | पैसा | रू. | आना | पैसा | | रू. | आना | पैसा |
| अंग्रेजी अध्यापक | 25 | - | - | 21 | 14 | - | प्रधानाध्यापक | 60 | - | - |
| अंग्रेजी अध्यापक | 20 | - | - | 17 | 8 | - | सहायक अध्यापक | 25 | - | - |
| मुख्य मौलवी | 20 | - | - | 17 | 8 | - | मुख्य मौलवी | 25 | - | - |
| सहायक मौलवी | 4 | - | - | 3 | 8 | - | सहायक मौलवी | 15 | - | - |
| मुख्य पंडित | 8 | - | - | 7 | - | - | मुख्य पंडित | 25 | - | - |
| सहायक पंडित | 6 | - | - | 5 | - | - | सहायक पंडित | 15 | - | - |
| कुल | 83 | - | - | 72 | 10 | - | कुल | 165 | - | - |

निरीक्षण टीम ने संस्तुति की कि छतरपुर स्कूल के लिए एक नए हैडमास्टर की अति आवश्यकता थी । स्कूल का अंग्रेजी अध्यापक सहायक अध्यापक का कार्य करेगा। मुख्य मौलवी का वेतन बढ़ाये जाने की भी संस्तुति की गई । मुख्य पंडित के स्थान पर नए मुख्य पंडित की आवश्यकता थी । इसके अतिरिक्त सहायक पंडित के पद पर भी नई नियुक्ति करने का सुझाव दिया गया ।

स्कूल का अगला निरीक्षण 24 सितम्बर, 1880 को किया गया लेकिन रिपोर्ट के अनुसार स्कूल में शिक्षा के स्तर में कोई सुधार नहीं हुआ था । छात्रों की संख्या इस वर्ष 110 हो गई थी जिसमें से औसत वार्षिक उपस्थिति 85 थी तथा औसत प्रतिदिन उपस्थिति 43 अर्थात् मात्र 53% थी । स्कूल में शिक्षा के गिरते स्तर पर असन्तोष प्रकट किया गया । निरीक्षण टीम द्वारा छात्रों की अधिक अनुपस्थिति का कारण पूछे जाने पर उसे कोई सन्तोषप्रद उत्तर प्राप्त नहीं हुआ । इसका मुख्य कारण यह बताया गया कि अधिकतर छात्र बहुत निर्धन थे और उन्हें बार-बार खेतों में या घर पर काम करने के लिए रोक लिया जाता था इसीलिए स्कूल में छात्रों की उपस्थिति प्रभावित होती थी ।[1] लेकिन शिक्षा की प्रगति में वास्तव में यह एक चिन्ता का विषय था ।

जे.मैथर के अनुसार गत वर्ष उसके द्वारा स्कूल में निश्चित पाठ्यक्रम लागू किए जाने के उद्देश्य से मि.मैके की कोर्स आफ स्टडीज़ की दो प्रतियां दी गई थीं लेकिन यह

---

1 फाइल सख्या 1/1878

बहुत दुख की बात थी कि इस दिशा में स्कूल के अध्यापकों द्वारा कोई प्रयास नहीं किया गया था । अभी तक स्कूल में वही अरूचिकर एवं अनुपयुक्त पाठ्यपुस्तकें ही पढ़ाई जाती थीं जिसके परिणामस्वरूप अंग्रेजी विभाग के छात्र गत वर्षों की भांति ही बहुत पिछड़े थे ।

इस वर्ष एक विशेष बात यह थी कि लाला गुरबक्श राय बी.ए. को स्कूल का नया हैडमास्टर नियुक्त किया गया था और इस नियुक्ति से भविष्य में शिक्षा में सुधार होने की आशा थी ।[1]

इस वर्ष पुनः अंग्रेजी हिन्दी उर्दू कक्षाओं के लिए एक सुनिश्चित पाठ्यक्रम की प्रतियां स्कूल के हैडमास्टर को दे दी गईं और अध्यापकों को इसके बारे में समझाया गया । यह पाठ्यक्रम लागू हो जाने पर शिक्षा के स्तर में कुछ सुधार किया जा सकता था।

लेकिन इस वर्ष अंग्रेजी विभाग में छात्रों की संख्या गत वर्ष से कम हो गई थी । यद्यपि उनका उच्चारण सन्तोषजनक था लेकिन लिखते समय यह छात्र spelling की गलती करते थे । इसका मुख्य कारण स्कूल में निश्चित पाठ्यक्रम की कमी ही थी ।[2]

संस्कृत पढ़ने वाले छात्रों की कुल संख्या 6 थी । यह गत वर्ष की संख्या से कम

---

1 फाइल संख्या 1/1878

2 -वही-

थी । छात्र जो पढ़ते थे उसे स्वयं ही समझ पाने में असमर्थ थे । वे अपना पाठ रट लेते थे लेकिन उसका सही अर्थ नहीं समझते थे । हिन्दी विभाग में छात्रों की संख्या में कमी आई थी । विभाग में कुल 28 छात्र थे एवं हिन्दी में चार कक्षाएं थीं । यद्यपि प्रथम, द्वितीय, तृतीय एवं चतुर्थ सभी कक्षाओं के प्रदर्शन पर निरीक्षण टीम द्वारा सन्तोष प्रकट किया गया लेकिन तृतीय कक्षा पर और अधिक ध्यान दिए जाने की आवश्यकता थी ।

इस निरीक्षण के समय राजनगर परगना स्कूल के चौदह छात्र भी उपस्थित थे । उनकी शिक्षा का स्तर छतरपुर राज्य स्कूल के छात्रों से अधिक अच्छा था । इस स्कूल की सन्तोषजनक प्रगति को देखते हुए निरीक्षण टीम ने संस्तुति की कि इस प्रकार के और स्कूल स्थापित किए जा सकते थे एवं उन्हें शिक्षा के विकास के लिए पर्याप्त बढ़ावा दिया जाना चाहिए था ।[1]

छतरपुर स्कूल के परशियन एवं उर्दू विभाग के छात्रों का प्रदर्शन उत्तम था । इसका श्रेय इस विभाग के अध्यापकों मौलवी उजनुल्लाह तथा मौलवी पीर मुहम्मद को दिया जा सकता था । लेकिन इस विभाग में भी पढ़ाई की एक निश्चित योजना होने पर बल दिया गया ताकि एक कक्षा के छात्रों को समान पढ़ाई करनी पड़े ।

सन् 1882 में छतरपुर स्कूल का निरीक्षण जे.मैथर के स्थान पर राजकुमार कालेज नौगांव के कार्यकारी प्रिंसीपल एन्डूस पी. माइकल द्वारा 7 एवं 9 अक्तूबर,

---

1 फाइल संख्या 1/1878

1882 को किया गया । इस समय स्कूल में निम्नलिखित अध्यापक थे :-

| अध्यापक | नाम |
|---|---|
| हैडमास्टर | बंसीधर, बी.ए. |
| द्वितीय इंग्लिश मास्टर | हैरी पी.औथ |
| मुख्य मौलवी | जैनुल्लाह |
| द्वितीय मौलवी | पीर मुहम्मद |
| मुख्य पंडित | जय कृष्ण |
| द्वितीय पंडित | हरिपन्त |

सन् 1881 में स्कूल का निरीक्षण नहीं किया गया था क्योंकि 1880 में शिक्षा की स्थिति पर बहुत असन्तोष व्यक्त किया गया । 1880 की तुलना में 1882 में शिक्षा की स्थिति में अवश्य ही कुछ सुधार हुआ था । सन् 1880 में स्कूल में पंजीकृत विद्यार्थियों की औसत संख्या 85 थी जो 1882 में बढ़कर 111 हो गई थी । इसी प्रकार औसत उपस्थिति भी 45 छात्र से बढ़कर 82.83 अर्थात् लगभग दुगुनी हो गई थी। इसका श्रेय स्कूल के नए हैडमास्टर लाल गुरबक्श राय को दिया जा सकता था।

**अजयगढ़**

सन् 1879 में पोलिटिकल एजेंट ने अजयगढ़ स्कूल का निरीक्षण किया लेकिन उसे यहां शिक्षा की स्थिति देखकर बहुत अप्रसन्नता हुई । उसने पाया कि अजयगढ़ राज्य

स्कूल में न तो कक्षाओं का काई उचित प्रबन्ध था और न ही पुस्तकों की व्यवस्था थी । निरीक्षण के समय उसने पाया कि स्कूल में कुछ अजीब से लड़के अजीब सी पुस्तकें पढ़ रहे थे । अतः उसने राजकुमार कालेज के प्रिंसीपल को इस स्कूल में शिक्षा के स्तर के अनुरूप हिन्दी, उर्दू तथा अंग्रेजी विषयों पर आसान पुस्तकों की एक सूची उपलब्ध कराने को कहा। इसके अतिरिक्त उसे कक्षाओं की रूपरेखा बनाने तथा प्रत्येक कक्षा में कौन सी पुस्तक पढ़ाई जाए इसके बारे में सुझाव देने के लिए भी कहा गया ।[1]

इस प्रकार 1879 में अजयगढ़ स्कूल में शिक्षा की स्थिति अच्छी नहीं थी । स्कूल में न ते उचित कक्षाएं थीं और न ही उचित पुस्तकें । पोलिटिकल एजेंट का निर्देश प्राप्त होने पर राजकुमार कालेज के प्रिंसीपल ने अजयगढ़ स्कूल के लिए कक्षाओं एवं पुस्तकों की रूपरेखा तैयार की । इस रूपरेखा के अनुसार सबसे छोटी कक्षा में उर्दू एवं हिन्दी की प्रारम्भिक पढ़ाई की व्यवस्था थी । अंग्रेजी की पढ़ाई चौथी कक्षा से शुरू किए जाने का सुझाव दिया गया । इस रूपरेखा से एक विशेष बात यह स्पष्ट होती है कि प्रारम्भिक कक्षा को कक्षा सात कहा गया था । उससे अगली कक्षा छः थी और इस प्रकार स्कूल में सबसे आखिरी कक्षा प्रथम कक्षा कही जाती थी । ऐसा बुन्देलखण्ड के सभी स्कूलों में था । राजकुमार कालेज के प्रिंसीपल का विचार था कि इस स्कूल में शिक्षा की स्थिति को देखते हुए बहुत कम छात्रों के प्रथम कक्षा के स्तर तक पहुंचने की

---

1 फाइल संख्या 1/1878

आशा थी ।

इस पाठ्यक्रम को अजयगढ़ स्कूल द्वारा 1879 में ही लागू कर दिया गया और शीघ्र ही पढ़ाई के स्तर में सुधार होने लगा । स्कूल में एक नए अध्यापक की नियुक्ति भी की गई । वह भान्डेर का निवासी था । उसकी योग्यता की प्रशंसा करते हुए श्री मैथर ने पोलिटिकल एजेंट को बताया कि यह अध्यापक न केवल अध्यापन की कला में निपुण था बल्कि स्कूल का उचित प्रबन्ध करना भी जानता था । इसीलिए यह आशा की जा सकती थी कि अगले वर्ष तक शिक्षा के स्तर में सराहनीय प्रगति हो जाएगी । नवम्बर, 1879 के निरीक्षण के दौरान श्री मैथर ने पाया कि स्कूल में पंडित बिहारी लाल बुधेलिया की नियुक्ति हो जाने से छात्रों की संख्या एवं उपस्थिति लगभग दुगुनी हो गई थी । अंग्रेजी की पढ़ाई संतोषजनक थी लेकिन अंकगणित में छात्र कमजोर थे । उर्दू एवं हिन्दी की पढ़ाई अच्छी थी । सम्भवत: शिक्षा के स्तर में तेजी से हो रहे इस सुधार का श्रेय स्कूल के नए अध्यापक एवं निश्चित पाठ्यक्रम को दिया जा सकता था । इस

समय स्कूल में निम्नलिखित अध्यापक थे एवं उनका वेतन इस प्रकार था:

| पद | अध्यापक का नाम | वेतन रू. | आना | पैसा |
|---|---|---|---|---|
| प्रधानाध्यापक | श्री बिहारी लाल बुधोलिया | 20 | - | - |
| सहायक अध्यापक | बासदेव | 8 | - | - |
| मौलवी | करीम बक्श | 6 | - | - |
| पंडित | कामता प्रसाद | 5 | - | - |
| सहायक पंडित | जीवन लाल | 5 | - | - |
| चपरासी | - | 4 | - | - |
| कहार | - | 3 | - | - |
| | रू. | 51 | - | - |

अजयगढ़ राज्य स्कूल में सामान्य छात्रों के अतिरिक्त इस समय उच्च अधिकारियों एवं राजघराने के संबंधी पांच लड़के भी शिक्षा ग्रहण कर रहे थे । इनके नाम थे : भूपत सिंह, जगन नाथसिंह, शिवराज सिंह, हिन्दन पत एवं गुलाब सिंह । शिवराज सिंह जागीरदार शोभा सिंह का पुत्र था। इसकी आयु लगभग 14 वर्ष थी । भूपत सिंह जिसकी आयु लगभग 12 वर्ष थी, राज्य के कोषाध्यक्ष बुधई सिंह का सम्बन्धी था । जबकि जगननाथ सिंह बुधई सिंह का पुत्र था । गुलाब सिंह महाराजा का

अवैध पुत्र था इसकी आयु 14 वर्ष थी। हिन्दनपत भी एक सरकारी अधिकारी दिलीपत का पुत्र था ।

अजयगढ़ राज्य में शिक्षा की प्रगति के लिए राज्य दरबार द्वारा भी बहुत से प्रयास किए गए । महाराजा रणछोर सिंह ने स्वयं शिक्षा के विकास में विशेष रूचि ली जिससे राज्य में शिक्षा की सराहनीय प्रगति हुई । अपने राज्य में शिक्षा की स्थिति के संबधं में पोलिटिकल एजेंट बुन्देलखण्ड का ध्यान आकर्षित करते हुए महाराजा ने स्वयं उसे राज्य में शिक्षा के विकास में आने वाली कठिनाइयों से अवगत कराया । सन् 1980 से पोलिटिकल एजेंट को लिखे अपने पत्र में महाराजा ने कहा कि पिछले वर्ष अजयगढ़ राज्य स्कूल में शिक्षा की स्थिति बहुत खराब थी । उस समय विभिन्न छात्र अलग-अलग पुस्तकें पढ़ते थे । किसी कक्षा में कोई निश्चित पाठ्यक्रम नहीं था । एक ही कक्षा के छात्र अलग-अलग पुस्तकें पढ़ते थे । इसीलिए पोलिटिकल एजेंट द्वारा राज्य स्कूल में निश्चित पाठ्यक्रम की आवश्यकता पर बल दिया गया था । महाराजा के अनुसार उसने पोलिटिकल एजेंट के सुझाव को ध्यान में रखते हुए इस स्कूल के विकास में स्वयं रूचि ली और स्कूल में शीघ्र ही एक नए अध्यापक की नियुक्ति की व्यवस्था की । स्कूल में निश्चित पाठ्यक्रम भी लागू कर दिया गया था किन्तु अभी भी बहुत ही कमियों को दूर किए जाने की आवश्यकता थी ।[1]

---

1 फाइल संख्या 1/1878-पत्र दिनांक 13 दिसम्बर,1879-महाराजा का पत्र

अजयगढ़ के महाराजा ने पोलिटिकल एजेंट को विश्वास दिलाया कि वह स्वयं एवं उसका दरबार राज्य में शिक्षा के विकास के लिए हर सम्भव प्रयत्न करेगा । उसका विचार था कि शिक्षा की प्रगति के लिए किसी भी राज्य में स्थानीय दरबार द्वारा ध्यान दिया जाना अति आवश्यक था लेकिन शिक्षा के विकास में एक बड़ी कठिनाई यह थी कि उच्च वर्ग के लोग भी अपने बच्चों की शिक्षा के संबंध में कोई रूचि नहीं लेते थे । अतः राज्य में शिक्षा का स्तर सुधारने के लिए अति आवश्यक था कि इन उच्च वर्ग के लोगों को अपने बच्चों की शिक्षा के लिए प्रेरित किया जाए ।

अजयगढ़ के महाराजा ने पोलिटिकल एजेंट को सुझाव दिया कि यदि शिक्षा के महत्व के बारे में कोई यूरोपीय अधिकारी इन उच्च वर्ग के लोगों को भाषण दे तो सम्भवतः इसका प्रभाव इस वर्ग पर अधिक होगा क्योंकि स्थानीय अधिकारियों द्वारा इन्हें समझाने का विशेष असर नहीं हुआ था । बुन्देलखण्ड के उच्च वर्ग के लोग शिक्षा के महत्व को नहीं समझते थे और इससे भी अधिक चिन्ता की बात यह थी कि वे स्थानीय शिक्षित वर्ग की राय मानने के इच्छुक नहीं थे क्योंकि इस शिक्षित वर्ग को वे विदेशी ही समझते थे । लेकिन विडम्बना यह थी कि यही लोग पढ़े लिखे यूरोपीय अधिकारियों के सामने आदर से झुकना नहीं भूलते थे । यद्यपि दरबार द्वारा राज्य में शिक्षा की उन्नति के लिए हर सम्भव प्रयास किए जाने का विश्वास दिलाया गया लेकिन महाराजा के अनुसार राज्य का शिक्षा विभाग इस कार्य के लिए पूर्णतः विकसित नहीं था ।

अतः बुन्देलखण्ड के उच्च वर्ग के लोगों को शिक्षा का महत्व समझाने के लिए तथा शिक्षा में सुधार के लिए महाराजा के अनुसार यह अति आवश्यक था कि राज्य के शिक्षा विभाग की देखरेख के कार्य के लिए किसी यूरोपीय अधिकारी की नियुक्ति की जाए । स्कूलों के प्रबन्ध सम्बन्धी नियम बनाए जाएं और यह सुनिश्चित किया जाए कि उसके सभी निर्देशों का पालन हो । यदि सरकार द्वारा शिक्षा विभाग में ऐसे अधिकारी की नियुक्ति कर दी जाए तो अवश्य ही बुन्देलखण्ड के लोगों में शिक्षा की अरूचि में सुधार किया जा सकता था । इस प्रकार ऐसे अधिकारी की नियुक्ति से अवश्य ही शिक्षा के क्षेत्र में बहुत लाभ होने की आशा थी ।

विभिन्न रियासतों में शिक्षा की प्रगति के आकलन के उद्देश्य से ही ब्रिटिश सरकार द्वारा राजकुमार कालेज के प्रिंसीपल श्री मैथर को सभी राज्य स्कूलों का वार्षिक निरीक्षण का कार्य सौंपा गया था । महाराजा ने इस वार्षिक निरीक्षण के महत्व को स्वीकार करते हुए पोलिटिकल एजेंट को लिखा कि अजयगढ़ राज्य स्कूल के इस निरीक्षण में दिए गए सुझावों के परिणामस्वरूप स्कूल के अध्यापक एवं दरबार दोनों ने ही शिक्षा के विकास के प्रति अपने-अपने कर्तव्य को समझा लेकिन बुन्देलखण्ड के लगभग सभी राज्य स्कूलों की स्थिति ऐसी है कि केवल एक वार्षिक निरीक्षण से अथवा यदाकदा उन्हें निर्देश दिए जाने से उनकी प्रबन्ध संबंधी एवं अन्य कमियां दूर नहीं की जा सकती हैं । सरकार को चाहिए कि इन सभी स्कूलों पर और अधिक ध्यान दे । महाराजा

को विश्वास था कि यदि ब्रिटिश सरकार अधिक प्रयास करे तो क्षेत्र में शिक्षा की स्थिति में अवश्य ही सुधार हो सकता है । शिक्षा ही सभ्यता का एकमात्र साधन है और इसीलिए ब्रिटिश सरकार को अपने नागरिकों में जागरूकता पैदा करने और ब्रिटिश शासन में सभ्यता के विकास के लिए प्रयास करने चाहिएं । प्रत्येक स्थानीय शासक को सभ्यता के विकास के लिए एवं अपनी जनता की भलाई के लिए सरकार के निर्देशों का पालन करना चाहिए ।

यद्यपि सभी स्थानीय प्रमुखों द्वारा अपने-अपने क्षेत्र में अब शिक्षा के विकास पर ध्यान दिया जाने लगा था और वे अपने यहां लड़कों की उचित शिक्षा के प्रयास करने लगे थे । किन्तु उनके लिए शिक्षा का क्षेत्र अपेक्षाकृत नया था इसलिए उन्हें उचित मार्गदर्शन एवं नियंत्रण की अति आवश्यकता थी ताकि वे शिक्षा के महत्व को भली-भांति समझ सकें और इसकी सफलता के लिए कार्य कर सकें । इसलिए अजयगढ़ के महाराजा का विचार था कि ब्रिटिश सरकार के शिक्षा विभाग के कार्य की भली-भांति देखरेख के लिए एक योग्य अधिकारी की आवश्यकता थी और सरकार ने यह कार्य श्री मैथर को सौंप कर उचित ही किया था ।

लेकिन महाराजा का विचार था कि स्कूलों के वार्षिक निरीक्षण ही पर्याप्त नहीं थे बल्कि विभिन्न दरबारों को इस योग्य अधिकारी की सेवाओं एवं मार्गदर्शन की अधिक आवश्यकता थी । इसके लिए महाराजा का सुझाव था कि श्री मैथर को बुन्देलखण्ड में

पब्लिक इन्स्ट्रक्शन विभाग का निदेशक बना दिए जाए । इसके अतिरिक्त उसे सरकार द्वारा यह अधिकार दिए जाएं कि वह किसी भी स्कूल मास्टर की प्रोन्नति अथव निम्न पद पर उसकी नियुक्ति करने अथवा उसे हटाने की संस्तुति कर सके । इसके अतिरिक्त उसे किसी स्कूल में अध्यापकों की संख्या में वृद्धि करने अथवा कमी करने की संस्तुति का अधिकार भी होना चाहिए ।

महाराजा के अनुसार निदेशक को यह अधिकार भी दिया जाना चाहिए कि वह दरबारों से उनके क्षेत्र के स्कूलों की मासिक प्रगति की रिपोर्ट मंगा सके और जहां आवश्यक हो उनसे कार्य में शिथिलता के लिए स्पष्टीकरण मांग सके और वह क्षेत्र के सभी स्कूलों की रिपोर्ट पोलिटिकल एजेंट को भेजे ।

महाराजा ने सुझाव दिया कि ब्रिटिश सरकार को चाहिए कि निदेशक के विभाग को सुचारू रूप से चलाने के लिए उसके अधीन एक मुंशी की नियुक्ति की जाए जो अंग्रेजी, परश्यिन तथा हिन्दी का उचित ज्ञान रखता हो । इस मुंशी को 'सृष्टादार' कहा जा सकता है ।[1]

यह भी आवश्यक था कि राजकुमार कालेज के प्रिंसीपल को निदेशक के इस अतिरिक्त कार्य के लिए अतिरिक्त वेतन दिया जाए । बुन्देलखण्ड के सभी राजा-महाराजा एवं प्रमुखों को चाहिए कि वे इस कार्य के लिए अपने-अपने राज्य द्वारा वार्षिक

---

1 फाइल संख्या 1/1878

अनुदान देने के लिए सहमत हों अन्यथा शिक्षा के विकास का कार्य भली-भांति करना सम्भव नहीं था क्योंकि महाराजा का विचार था कि श्री मैथर जो राजकुमार कालेज के प्रिंसीपल थे, उसे स्थानीय राज्यों के शिक्षा विभागों के संबंध में अतिरिक्त रूचि लेने की कोई आवश्यकता नहीं थी यदि उसे उसके अतिरिक्त परिश्रम के लिए उचित पारिश्रमिक न दिया जाए,इसलिए स्थानीय शासकों द्वारा अनुदान दिया जाना अति आवश्यक था ताकि पब्लिक इन्स्ट्रक्शन के निदेशक का कार्यालय स्थापित किया जा सके । महाराजा ने पोलिटिकल एजेंट को विश्वास दिलाया कि यदि ऐसा कार्यालय स्थापित किया जाता है तो उसे आशा है कि बहुत से स्थानीय शासक इस उत्तम कार्य के लिए स्वेच्छा से अनुदान देने के लिए सहमत हो जाएंगे और वह स्वयं भी इस भलाई के कार्य में पूरा-पूरा सहयोग देगा ।[1]

महाराजा के इन सुझावों की पोलिटिकल एजेंट बुन्देलखण्ड एवं राजकुमार कालेज के प्रिंसीपल द्वारा बहुत प्रंशसा की गई । इन सुझावों को ध्यान में रखते हुए श्री मैथर ने पोलिटिकल एजेंट को लिखा कि सबसे अधिक आवश्यकता इस बात की है कि बुन्देलखण्ड के सभी स्कूलों में एक निश्चित पाठ्यक्रम अपनाया जाए ।[2] जिन स्कूलों में अंग्रेजी की शिक्षा दी जाती थी उनमें से कुछ स्कूलों ने मि.मैके का पाठ्यक्रम लागू कर

---

1 फाइल संख्या 1/1878

2 फाइल संख्या 1/1878-पत्र दिनांक 14 मई, 1880

लिया था । श्री मैथर के अनुसार इस निश्चित पाठ्यक्रम के कारण इन सभी स्कूलों में शिक्षा स्तर में शीघ्र ही सुधार होने की आशा थी । उसका विचार था कि अंग्रेजी की भांति ही हिन्दी, उर्दू, परशियन विभागों के लिए इसी प्रकार का एक निश्चित पाठ्यक्रम राजकुमार कालेज में बनाया जा सकता था जिसे सभी स्कूलों द्वारा लागू किया जाए ।[1]

स्कूलों में एक निश्चित पाठ्यक्रम लागू किए जाने के सुझाव के अतिरिक्त श्री मैथर ने एक अन्य महत्वपूर्ण सुझाव दिया । उसके अनुसार निश्चित पाठ्यक्रम लागू किए जाने के पश्चात् प्रत्येक स्कूल में वार्षिक परीक्षा की व्यवस्था की जानी चाहिए । यह परीक्षा न केवल छात्रों के लिए हो बल्कि स्कूल के अध्यापकों की भी वार्षिक परीक्षा अवश्य ली जानी चाहिए और इस परीक्षा में उनकी सफलता के आधार पर तथा उनके छात्रों की सफलता के आधार पर ही भविष्य में उन्हें पदोन्नति दी जानी चाहिए ।

एक अन्य सुझाव यह था कि छात्रों को शिक्षा के प्रति अधिक जागरूक बनाने के उद्देश्य से उन्हें प्रतिमाह 2 रूपए से 10 रूपए तक की छात्रवृत्ति प्रदान की जाए । यह छात्रवृत्ति वार्षिक परीक्षा के परिणाम के आधार पर दी जानी चाहिए । इसके अतिरिक्त इस छात्रवृत्ति के सम्बन्ध में एक शर्त यह भी होनी चाहिए कि छात्रवृत्ति प्राप्त करने वाले छात्र को एक निश्चित कक्षा उत्तीर्ण कर लेने के पश्चात् कालेज में प्रवेश दिया जाएगा। इस प्रकार श्री मैथर का विचार था कि इन स्कूलों को कालेज के लिए आधार बनाया

---

1 फाइल संख्या 1/1878-पत्र दिनांक 14 मई, 1880

जाए और कालेज द्वारा सभी स्कूलों को अध्यापक उपलब्ध कराए जाएं ।

इन सुझावों को उचित ढंग से लागू करने के लिए एक इंस्पेक्टर या सहायक इंस्पेक्टर की नियुक्ति की जानी चाहिए । इस पद के लिए किसी योग्य स्थानीय व्यक्ति की नियुक्ति की जा सकती है । मैथर का सुझाव था कि इस पद के लिए नियुक्त किए जाने वाले व्यक्ति को कम से कम बी.ए. होना चाहिए एवं उसे हिन्दी तथा उर्दू का अच्छा ज्ञान होना चाहिए। उसे प्रतिमाह 80 रूपए वेतन दिया जा सकता है । वेतन के अतिरिक्त उसे एक निश्चित यात्रा भत्ता भी दिया जएगा । उसका मुख्य कार्य होगा कि बुन्देलखण्ड के विभिन्न स्कूलों का वर्ष भर निरीक्षण करके उसकी रिपोर्ट राजकुमार कालेज अथवा पोलिटिकल एजेंट को दे । लेकिन उसके द्वारा किए जाने वाले इन निरीक्षणों के संबंध में स्कूलों को पहले से जानकारी नहीं होनी चाहिए ताकि वह किसी भी समय किसी भी स्कूल में जाकर यह देख सके कि वास्तव में कार्य कैसा चल रहा है। मैथर का सुझाव था कि इस प्रकार के निरीक्षण में जो स्कूल अधिक पिछड़े पाए जाएंगे उनमें वह स्वयं दशहरा अवकाश के दिनों में जाकर निरीक्षण कर सकता है ।

प्रिंसीपल का सुझाव था कि वह सभी स्कूलों से मासिक प्रगति की समीक्षा के उद्देश्य से निम्नलिखित सूचनाएं मंगवाना चाहता था:-

i) स्कूल में छात्रों की संख्या एवं उनकी औसत दैनिक उपस्थिति का विवरण।

ii) माह में प्रत्येक कक्षा में प्रत्येक विषय में की गई पढ़ाई की प्रगति का विवरण एवं प्रत्येक विषय की साप्ताहिक परीक्षाओं का परिणाम ।

इसके अतिरिक्त प्रत्येक स्कूल से इसी प्रकार के वार्षिक प्रगति से संबंधित विवरण भी राजकुमार कालेज द्वारा मंगवाये जाने की योजना थी ।[1] यह सुझाव भी दिया गया कि अध्यापकों को पदोन्नति अथवा सजा उनके कार्य के आधार दी जाएगी । राजकुमार कालेज के प्रिंसीपल द्वारा उन्हें एक स्कूल से दूसरे स्कूल में स्थानान्तरित भी किया जा सकता था । उनकी पदोन्नति वार्षिक परीक्षा में उनकी सफलता पर निर्भर करेगी ।

इस प्रकार अजयगढ़ के महाराजा द्वारा बुन्देलखण्ड में शिक्षा के विकास के संबंध में विशेष रूचि लेने के कारण राजकुमार कालेज के प्रिंसीपल द्वारा भी क्षेत्र की शिक्षा के विकास कार्यक्रमों को अधिक गम्भीरतापूर्वक लिया गया । पोलिटिकल एजेंट ने इन सभी सुझावों की प्रशंसा की एवं इनके अनुसार शीघ्र ही राजकुमार कालेज द्वारा अंग्रेजी के अतिरिक्त अन्य विषयों के लिए पाठ्यक्रम निश्चित किए गए । इन सुझावों को लागू किए जाने के परिणाम भी आने वाले वर्षों में स्पष्ट रूप से सामने आए ।

अजयगढ़ स्कूल का अगला वार्षिक निरीक्षण अक्तूबर, 1880 में किया गया । यद्यपि स्कूल में छात्रों की संख्या 72 थी और उनकी औसत उपस्थिति मात्र 50 थी

---

1 फाइल संख्या 1/1878

लेकिन इस वार्षिक निरीक्षण में यह पाया गया कि स्कूल के अंग्रेजी विभाग में गत वर्षों की तुलना में विशेष प्रगति हुई थी । इसका श्रेय पंडित बिहारी लाल बुधोलिया को दिया जा सकता था । दरबार द्वारा भी इस अध्यापक की सेवाओं की प्रशंसा की गई । अंग्रेजी विभाग ने इतनी प्रगति कर ली थी कि मैके के पाठ्यक्रम के अनुसार चौथी कक्षा के लिए प्रस्तावित पुस्तकें प्रथम कक्षा के छात्र पढ़ रहे थे । उनका अंग्रेजी का ज्ञान भी बहुत अच्छा था । उनका शब्द ज्ञान भी सन्तोषजनक था । इतना ही नहीं इस विभाग के छात्रों ने अंकगणित एवं भूगोल में भी अच्छा प्रदर्शन किया । इस विभाग के बारे में मैथर ने अपनी रिपोर्ट में आशा व्यक्त की कि अगले एक या दो वर्षों में स्कूल के छात्रों द्वारा इन्दौर परीक्षा में अवश्य ही सफलता प्राप्त की जा सकेगी और इससे स्कूल तथा राज्य दोनों ही गौरान्वित होंगे ।[1]

स्कूल में परश्यिन अभी नहीं पढ़ाई जाती थी । लेकिन उर्दू विभाग में चार कक्षाएं थीं । इस विभाग की प्रगति भी सन्तोषजनक थी लेकिन अध्यापकों द्वारा छात्रों पर और अधिक ध्यान देने की आवश्यकता थी । लेकिन अभी तक उर्दू एवं हिन्दी विभाग में सुनिश्चित पाठ्यक्रम लागू नहीं किया गया था । यह आशा व्यक्त की गई कि शीघ्र ही स्कूल द्वारां इन विभागों में भी निश्चित पाठ्यक्रम लागू किए जाने से स्कूल का

---

1 फाइल संख्या 1/1878

और अधिक विकास हो सकेगा ।[1]

लेकिन यह बहुत आश्चर्य की बात थी कि अजयगढ़ स्कूल की इस प्रगति में अचानक कमी आ गई । स्कूल का अंग्रेजी विभाग जिसकी सफलता की वर्ष 1880 में अति प्रशंसा की गई थी, वर्ष 1883 तक छिन्न-भिन्न हो गया था । इसमें अब कोई अध्यापक नहीं था और न ही छात्रों की उपस्थिति का विवरण रखा गया था । स्कूल का प्रधानाध्यापक नवम्बर, 1882 में स्कूल छोड़कर चला गया था और उसका उत्तराधिकारी बिहारी लाल भी छुट्टी पर चला गया था एवं उसके विरूद्ध उसे पद से हटाए जाने की अनुशासनिक कार्यवाही की जा रही थी । कई महीनों से विभाग में पढ़ाई नहीं हो रही थी । यह स्थिति देखकर निरीक्षण टीम के अध्यक्ष, श्री माइकल को बहुत निराशा हुई क्योंकि उसने स्कूल के इस गिरते स्तर की कल्पना भी नहीं की थी । लेकिन अंग्रेजी विभाग के छात्रों में अभी भी कुछ सीखने का उत्साह था और यह एक अच्छी बात थी ।

उर्दू विभाग में परशियन अध्यापक मौलवी काजिम बक्श द्वारा शिक्षा दी जाती थी। इसके अतिरिक्त एक परशियन सहायक अध्यापक मौलवी मदरउद्दीन भी था । मौलवी काजिम बक्श को 7 रूपए प्रतिमाह एवं सहायक अध्यापक को 4 रूपए प्रति माह वेतन मिलता था । यद्यपि उर्दू पढ़ने में छात्रों ने अच्छा प्रदर्शन किया किन्तु उन्हें

---

1 फाइल संख्या 1/1878

अपनी पाठ्यपुस्कों में पढ़ाए गए शब्दों के अर्थ मालूम नहीं थे । भूगोल का भी उन्हें ज्ञान नहीं था क्योंकि उन्हें भूगोल पढ़ाया ही नहीं गया था । स्कूल में बुन्देलखण्ड का मानचित्र तक नहीं था । सम्भवतः भूगोल पढ़ाने की आवश्यकता ही अनुभव नहीं की गई थी । लेकिन अब स्कूल में मैके के पाठ्यक्रम के अनुसार शिक्षा दी जाने लगी थी । हिन्दी विभाग में भी यद्यपि निश्चित पाठ्यक्रम को लागू किया गया था किन्तु छात्रों पर और अधिक ध्यान दिए जाने की आवश्यकता थी । पंडित जीवन लाल हिन्दी पढ़ाते थे जिनकी सहायता के लिए एक सहायक हिन्दी अध्यापक दुर्गाप्रसाद भी थे । हिन्दी अध्यापक एवं सहायक अध्यापक को 5 रूपए प्रतिमाह वेतन मिलता था ।[1]

इस प्रकार वर्ष 1883 के इस निरीक्षण के अनुसार यद्यपि स्कूल के उर्दू एवं हिन्दी विभाग में शिक्षा का स्तर ठीक कहा जा सकता था किन्तु अंग्रेजी विभाग का गिरता हुआ स्तर अवश्य ही गम्भीर चिन्ता का विषय था । स्कूल के नए प्रधानाध्यापक के लिए इस विभाग में सुधार करके इसे पूर्ववत स्थिति में लाना एक कठिन कार्य था ।

अजयगढ़ स्कूल में शिक्षा की स्थिति की उपरोक्त समीक्षा से यह स्पष्ट होता है कि राज्य में शिक्षा के विकास के प्रति दरबार का सहयोग प्राप्त होना अवश्य ही एक महत्वपूर्ण बात थी । महाराजा अजयगढ़ द्वारा अपनी जनता के विकास के लिए उन्हें शिक्षित करने के महत्व को समझा गया और उनके इस विषय में दिए गए सुझावों से

---

1 फाइल संख्या 1/1878

प्रेरित होकर ही ब्रिटिश सरकार द्वारा बुन्देलखण्ड क्षेत्र में शिक्षा के विकास के लिए प्रयास किए गए । अतः क्षेत्र में शिक्षा के विकास में अजयगढ़ दरबार की भूमिका की निश्चित रूप से सराहना की जा सकती है ।

## टिहरी

बुन्देलखण्ड क्षेत्र में शिक्षा के विकास को दृष्टि से टिहरी राज्य की भूमिका महत्वपूर्ण थी क्योंकि टिहरी बुन्देलखण्ड का एक महत्वपूर्ण राज्य था । इस राज्य में शिक्षा संबंधी एक विशेष बात यह थी कि यहां लड़कों के स्कूल के साथ-साथ लड़कियों के लिए भी एक स्कूल की व्यवस्था थी । दोनों ही स्कूल एक ही बिल्डिंग में थे । वर्ष 1879 ई. में लड़कों के स्कूल में कुल 105 छात्र थे । स्कूल में अंग्रेजी, हिन्दी, उर्दू तथा परशियन पढ़ाने की व्यवस्था थी । अंग्रेजी में छात्रों को अधिक ज्ञान नहीं था । उन्हें अंग्रेजी से हिन्दी अथवा उर्दू में अनुवाद किए जाने का जो तरीका सिखाया गया था वह उचित नहीं था । केवल शब्दवार अनुवाद कर दिया जाता था । हिन्दी विभाग में यद्यपि जो पंडित हिन्दी पढ़ाता था उसने स्वयं भी इसी स्कूल से शिक्षा ग्रहण की थी किन्तु उसे संस्कृत का ज्ञान नहीं था । विभाग के लिए एक नए योग्य पंडित की नियुक्ति की आवश्यकता थी और पूर्व नियुक्त पंडित को निम्न पद पर अर्थात् सहायक पंडित के पद पर नियुक्त किया जा सकता था ।[1] परशियन विभाग की पढ़ाई अन्य विभागों की तुलना

---

1 फाइल संख्या 1/1878-पत्र दिनांक 6 नवम्बर, 1879

में बेहतर थी । लड़कों के स्कूल की अपेक्षा लड़कियों के स्कूल में शिक्षा अच्छी थी । उन्हें केवल हिन्दी एवं उर्दू पढ़ाई जाती थी लेकिन इन दोनों विषयों में इस स्कूल का परिणाम लड़कों के स्कूल की अपेक्षा कहीं अच्छा था ।[1]

टिहरी राज्य स्कूल में दो राजकुमार गम्भीर सिंह एवं माधो सिंह भी शिक्षा प्राप्त कर रहे थे । गम्भीर सिंह टिहरी के महाराजा का भतीजा था और इसकी आयु लगभग 11 वर्ष थी । माधो सिंह महाराजा की पत्नी का भाई था और इसकी आयु लगभग 15 वर्ष थी । यह दोनों राजकुमार अंग्रेजी की शिक्षा प्राप्त कर रहे थे ।

टिहरी स्कूल के अतिरिक्त यहां के महाराजा द्वारा पिरथीपुर में भी एक स्कूल की स्थापना की गई थी । इसमें केवल 40 छात्र थे और सभी केवल हिन्दी की शिक्षा ग्रहण कर रहे थे । लेकिन इस स्कूल की पढ़ाई टिहरी राज्य स्कूल से अच्छी थी । वास्तव में ऐसे और स्कूल भी स्थापित किए जाने चाहिए थे ।[2]

पिरथीपुर के अतिरिक्त टिहरी राज्य में जटारा, लिधारा, डिगोरा, ओरछा एवं मोहनगढ़ में भी स्कूल थे जिनमें केवल हिन्दी की शिक्षा दी जाती थी । इन सभी स्कूलों में हिन्दी अध्यापक को 8 राजासाही रूपए वेतन मिलता था जबकि टिहरी राज्य स्कूल में अध्यापकों का वेतन अपेक्षाकृत अधिक था । वर्ष 1879 ई. में टिहरी राज्य स्कूल में

---

1 फाइल संख्या 1/1878-पत्र दिनांक 6 नवम्बर, 1879

2 फाइल संख्या 1/1878

निम्नलिखित अध्यापक थे:[1]

| पद | नाम | वेतन | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| | | रू. (राजासाही रू.) | आना | पैसा | रू. (सरकारी मुद्रा) | आना | पैसा |
| प्रधानाध्यापक | श्री राम प्रसाद | 30 | - | - | 26 | - | - |
| मौलवी | इनायत अली | 15 | - | - | 13 | 2 | - |
| पंडित | तुलसी दास | 12 | - | - | 10 | 8 | - |
| सहायक अंग्रेजी अध्यापक | कुंवर लाल | 10 | - | - | 8 | 12 | - |
| सहायक मौलवी | इब्राहिम | 6 | - | - | 5 | 4 | - |

उपरोक्त पदों के स्थान पर निरीक्षण टीम द्वारा स्कूल में अध्यापकों की संख्या एवं उनके वेतन में निम्नलिखित वृद्धि करने की संस्तुति की गई :

| प्रस्तावित पद | प्रस्तावित वेतन (सरकारी मुद्रा) | | |
|---|---|---|---|
| | रू. | आना | पैसा |
| प्रधानाध्यापक | 60 | - | - |
| परशियन मौलवी | 25 | - | - |
| सहायक अंग्रेजी अध्यापक | 25 | - | - |

| | | | |
|---|---|---|---|
| सहायक परशियन मौलवी | 15 | - | - |
| हिन्दी अध्यापक | 25 | - | - |
| सहायक हिन्दी अध्यापक | 15 | - | - |
| कुल | 165 | - | - |

यह सुझाव दिया गया कि स्कूल के प्रधानाध्यापक को सहायक अंग्रेजी अध्यापक के पद पर नियुक्त कर दिया जाए एवं प्रधानाध्यापक का पद एक नए योग्य व्यक्ति को दिया जाए । इसी प्रकार परश्यिन अध्यापक को सहायक मौलवी के पद पर नियुक्त कर दिया जाना चाहिए एवं परश्यिन विभाग के लिए नए मौलवी की नियुक्ति की जानी चाहिए । इसी प्रकार हिन्दी विभाग में नए अध्यापक की नियुक्ति की जाए एवं कार्यरत अध्यापक को सहायक अध्यापक का पद दे दिया जाए ।

इन सुझावों से यह स्पष्ट था कि स्कूल में कार्यरत अध्यापकों का कार्य सन्तोषजनक नहीं था । इसीलिए उनसे अधिक योग्य अध्यापकों की आवश्यकता अनुभव की गई थी ।

टिहरी राज्य स्कूल का अगला निरीक्षण नवम्बर, 1880 में किया गया । इस वर्ष तक स्कूल के लिए नई बिल्डिंग का निर्माण कर लिया गया था । लड़कियों के स्कूल की बिल्डिंग लड़कों के स्कूल से अपेक्षाकृत छोटी थी । स्कूल के अंग्रेजी विभाग

में अब निश्चित पाठ्यक्रम लागू कर दिया गया था इसीलिए अंग्रेजी विभाग में गत वर्ष की अपेक्षा बहुत सुधार हुआ था । छात्रों का प्रदर्शन निरीक्षण के दौरान बहुत सन्तोषजनक पाया गया लेकिन हिन्दी एवं उर्दू विभागों में अभी निश्चित पाठ्यक्रम शुरू नहीं किया गया था । इसीलिए स्कूल के प्रधानाध्यापक एवं राज्य दरबार को सुझाव दिया गया कि इन विभागों में भी शीघ्र ही एक निश्चित पाठ्यक्रम लागू किया जाए ।

लड़कियों की शिक्षा गत वर्ष की भांति ही अच्छी थी । उन्हें जो पढ़ाया गया था वे उसे भली-भांति समझती थीं । उनका उच्चारण साफ एवं शुद्ध था । उनके परिश्रम को देखते हुए यह सुझाव दिया गया कि लड़कियों को इतिहास, भूगोल तथा अंकगणित की शिक्षा भी दी जानी चाहिए ।

जटारा ग्रामीण स्कूल में भी शिक्षा की स्थिति अच्छी थी । निरीक्षण के दौरान छात्रों ने अच्छा प्रदर्शन किया था । स्कूल में एक नए अध्यापक की नियुक्ति भी की गई थी किन्तु इस स्कूल में तथा राज्य के अन्य ग्रामीण स्कूलों में एक निश्चित पाठ्क्रम अभी तक लागू नहीं किया गया था ।

इसके पश्चात् जनवरी 1883 में स्कूल का अगला निरीक्षण किया गया । श्री राम प्रसाद अंग्रेजी के अध्यापक थे । इसके अतिरिक्त एक सहायक अंग्रेजी अध्यापक-कुमार लाल भी थे । परश्यिन में दो अध्यापक मौलवी खुदादाद खान तथा मोहम्मद इब्राहिम थे एवं संस्कृत तथा हिन्दी विभाग में पंडित तुलसी दास तथा गिरधर शास्त्री थे ।

इस प्रकार 1879 ई. में निरीक्षण टीम द्वारा की गई संस्तुति के अनुसार स्कूल में नए अध्यापकों की नियुक्ति कर ली गई थी । स्कूल की एक विशेषता यह थी कि यहां पढ़ने वाले छात्रों में से अधिकांश उच्च घरानों के लड़के थे । सरकारी अधिकारियों के लड़के भी इस स्कूल में पढ़ते थे और कुछ लड़के ठाकुर परिवारों के भी थे । सम्भवतः इसका मुख्य कारण था कि टिहरी के महाराजा द्वारा स्वयं स्कूल की देखरेख में विशेष रूचि ली जाती थी । राज्य के विकास के लिए यह निश्चित रूप से एक अच्छी बात थी कि राज्य का उच्च वर्ग शिक्षा में रूचि ले रहा था और इससे अवश्य ही राज्य का भविष्य उज्जवल होने की आशा की जा सकती थी । अंग्रेजी में लगभग 36, हिन्दी में 32 तथा परश्यिन में 32 छात्र थे । छात्रों को भूगोल का बहुत कम ज्ञान था क्योंकि स्कूल में बुन्देलखण्ड का मानचित्र भी नहीं था । हिन्दी एवं उर्दू के छात्रों ने गत वर्ष की तुलना में विशेष प्रगति नहीं की थी । लेकिन प्रधानाध्यापक के कठिन परिश्रम के फलस्वरूप अंग्रेजी में प्रगति स्पष्ट रूप से देखी जा सकती थी । टिहरी राज्य के लिए यह बहुत गर्व की बात थी कि इस स्कूल द्वारा इस वर्ष 5 छात्रों को नौगांव कालेज में परीक्षा के लिए भेजा गया था । निरीक्षण टीम द्वारा स्कूल को एक घंटा तथा एक घड़ी उपलब्ध कराने की संस्तुति की गई और यह सलाह दी गई कि प्रधानाध्यापक को स्कूल के लिए नियमित टाइम टेबल बनाकर विभिन्न कक्षाओं की पढ़ाई में और सुधार करने का प्रयास

करना चाहिए ।[1]

लड़कियों के स्कूल में शिक्षा का स्तर दिन प्रतिदिन सुधर रहा था एवं निरीक्षण टीम द्वारा इस स्कूल के विकास के प्रति सन्तोष व्यक्त किया गया ।

राज्य में इन दोनों स्कूलों के अतिरिक्त चार ग्रामीण स्कूल थे । यह स्कूल जटारा, पिरथीपुर, बालदेवगढ़ एवं टहरोली में थे । जटारा में 30, पिरथीपुर में 30, बालदेवगढ़ में 54 तथा टहरोली में 31 छात्र पंजीकृत थे । इन स्कूलों में केवल हिन्दी विभाग था । हिन्दी में छात्रों का ज्ञान अच्छा था लेकिन अंकगणित इत्यादि विषयों में छात्रों पर अधिक ध्यान दिए जाने की आवश्यकता थी ।[2]

धीरे-धीरे टिहरी राज्य में शिक्षा की स्थिति में सुधार हो रहा था । राज्य स्कूल का अगला निरीक्षण जनवरी, 1884 ई. में किया गया । इस वर्ष स्कूल के अंग्रेजी विभाग के परिणाम गत वर्ष की अपेक्षा अच्छे थे। यद्यपि अंगेजी पढ़ने वाले छात्रों की संख्या में कुछ कमी आई थी लेकिन विभाग की प्रगति को देखते हुए भविष्य में इनकी संख्या में वृद्धि की आशा की जा सकती थी । हिन्दी के छात्रों की उपस्थिति नियमित न होने के कारण इस विभाग के परिणाम गत वर्ष की तुलना में संतोषजनक नहीं थे । सम्भवतः एक अन्य मुख्य कारण यह भी था कि अध्यापकों द्वारा पढ़ाते समय निश्चित टाइम टेबल

---

1 फाइल संख्या 1/1878-पत्र दिनांक 1 जनवरी 1883

2 फाइल ंख्या 1/1878-पत्र दिनांक 2 जनवरी, 1883

का अनुपालन नहीं किया जाता था । परशियन में तीन कक्षाएं थीं । कक्षा सात में 19 छात्र, छठी कक्षा में 3 छात्र एवं पांचवी कक्षा में 3 छात्र थे । कक्षा सात प्रारम्भिक कक्षा थी । कक्षा छः के छात्र यद्यपि अपनी पुस्तक ठीक से पढ़ सकते थे किन्तु उन्हें जो पढ़ाया गया था उसे बिल्कुल नहीं समझते थे । वे सभी विषयों में कमजोर थे । कक्षा पांच के छात्र अपनी पुस्तकें ठीक से पढ़ सकते थे और उसे समझ भी सकते थे लेकिन उनका उच्चारण बिल्कुल अच्छा नहीं था । स्कूल में मानचित्र इत्यादि न होने के कारण भूगोल का उनका ज्ञान बहुत सीमित था ।[1]

राज्य में लड़कियों का स्कूल एवं सभी गांव स्कूलों का प्रदर्शन गत वर्षों की भांति ही अच्छा था । वास्तव में टिहरी राज्य द्वारा लड़कियों की शिक्षा में रूचि लेकर एक सराहनीय कार्य किया गया था । ग्रामीण स्कूलों की दिन प्रतिदिन हो रही प्रगति का श्रेय भी इन स्कूलों के अध्यापक एवं राज्य दरबार को दिया जा सकता था । ग्रामीण स्कूलों की देखरेख का कार्य अंग्रेजी अध्यापक बाबू कुंवर लाल को सौंपा गया था इसीलिए इनकी सफलता का श्रेय भी उसको दिया जा सकता था ।

1886 ई. में राजकुमार कालेज के प्रिंसीपल द्वारा स्कूल का निरीक्षण करते समय टिहरी के महाराजा स्वयं भी उपस्थित थे । लड़कों के स्कूल ने अभी भी अधिक प्रगति नहीं की थी । छात्र पहले की भांति ही अपने विषयों में कमजोर थे और इस प्रकार

---

1 फाइल संख्या 1/1878-पत्र दिनांक 1 मई, 1884

राजा द्वारा स्कूल के विकास के लिए दी गई सहायता का उचित प्रयोग नहीं हो रहा था लेकिन लड़कियों के स्कूल ने सराहनीय प्रगति की थी । महाराजा का विचार था कि लड़कियों को हिन्दी की शिक्षा के साथ-साथ सिलाई-कढ़ाई की शिक्षा भी दी जानी चाहिए। इस संबंध में दरबार द्वारा उचित सहायता प्रदान करने का आश्वासन भी दिया गया ।[1]

**समथर**

समथर राज्य स्कूल में अपेक्षाकृत शिक्षा का अधिक विकास नहीं हुआ था । 1879 ई. में स्कूल की स्थिति अच्छी नहीं थी । इसे निरन्तर देखरेख की आवश्यकता थी । इसे बुन्देलखण्ड के अन्य स्कूलों के स्तर तक लाने के लिए इसमें बहुत सुधार किए जाने की आवश्यकता थी । स्कूल में परशियन हिन्दी एवं संस्कृत तीन विभाग थे लेकिन संस्कृत विभाग नाम मात्र के लिए ही था ।

स्कूल में कोई निश्चित नियम नहीं थे । छात्रों की उपस्थिति का विवरण भी उचित प्रकार से नहीं रखा जाता था । अक्तूबर, 1879 में किए गए निरीक्षण की रिपोर्ट में यह कहा गया कि जब तक राज्य सरकार द्वारा स्कूल की देखरेख के लिए किसी अधिकारी की नियुक्ति नहीं की जाती इस स्कूल की स्थिति में सुधार की अपेक्षा नहीं की

---

1 फाइल संख्या 1/1878-पत्र दिनांक 11 जनवरी, 1886

जा सकती थी।[1]

हिन्दी विभाग के निरीक्षण के समय यह देखा गया कि जो लड़के इस समय विभाग में उपस्थित थे उन्हें सम्भवतः इसी अवसर के लिए इधर-उधर से एकत्र किया गया था । जिन छात्रों ने निरीक्षण दल द्वारा ली गई परीक्षा में अच्छा प्रदर्शन किया था उन्होंने माना कि वे स्कूल के छात्र नहीं थे । यह बहुत दुःख की बात थी ।

इसके अतिरिक्त अध्यापकों को अधिकतर राज्य के अन्य कार्यों में लगा दिया जाता था और अध्यापन का कार्य उनके लिए महत्वपूर्ण नहीं था ।

स्कूल की इस निराशाजनक स्थिति को देखते हुए निरीक्षण टीम ने कुछ सुझाव दिए ।[2] प्रथम सुझाव यह था कि स्कूल में एक योग्य एवं जिम्मेदार अध्यापक की नियुक्ति की जाए । अभी तक अध्यापकों को वेतन नगद नहीं दिया जाता था बल्कि उनके पारिश्रमिक के रूप में उन्हें कुछ भूमि दे दी जाती थी । परशियन अध्यापक हुसैन अली को 12 नानासाही रूपए वेतन मिलता था । एक नानासाही रूपया लगभग 13 आना मूल्य के बराबर था । हिन्दी अध्यापक पृथी सिंह को 60 रूपए वार्षिक मूल्य की लगभग 40 बीघा भूमि दी गई थी अर्थात् उसे 5 रूपए मासिक वेतन के लगभग भूमि प्राप्त थी । इसी प्रकार संस्कृत अध्यापक मुक्ता प्रसाद को 75 रूपए वार्षिक मूल्य की

---

1 फाइल संख्या 1/1878-पत्र दिनांक 28 अक्तबर, 1879

2 -वही-

लगभग 50 बीघा भूमि दे दी गई थी अर्थात् उसे लगभग 6 रूपए 4 आना मासिक वेतन के बराबर की भूमि दी गई थी । निरीक्षग टीम ने सुझाव दिया कि स्कूल के अध्यापकों को भूमि के स्थान पर नगद वेतन दिए जाने की व्यवस्था की जाए ।[1]

दूसरा महत्वपूर्ण सुझाव यह दिया गया कि स्कूल के समय में अध्यापकों को किसी भी दशा में किसी भी अन्य् कार्य के लिए न बुलाया जाए । इसके अतिरिक्त दरबार के किसी सदस्य द्वारा स्कूल की देखरेख स्वयं की जानी चाहिए एवं उसे सप्ताह में कम-से-कम एक बार स्कूल में आकर स्कूल के प्रबन्ध एवं शिक्षा की प्रगति की समीक्षा करनी चाहिए तभी इस स्कूल में कुछ सुधार की आशा की जा सकती थी ।[2]

अध्यापकों की संख्या एवं उनके वेतन में वृद्धि की संस्तुति भी की गई । निरीक्षण टीम के अनुसार स्कूल में एक प्रधानाध्यापक की अति आवश्यकता थी । इसके अतिरिक्त अंग्रेजी में स्कूल द्वारा कुछ प्रगति कर लेने पर एक सहायक अंग्रेजी अध्यापक की नियुक्ति की जा सकती थी । हिन्दी एवं संस्कृत विभाग के लिए एक नए पंडित की नियुक्ति की संस्तुति की गई । स्कूल के वर्तमान पंडित का कार्य संतोषजनक नहीं था । इसलिए यह भी सुझाव दिया गया कि उसे निम्न पद पर सहायक पंडित नियुक्त कर दिया जाना चाहिए । उर्दू विभाग के लिए एक सहायक मौलवी की नियुक्ति

---

1 फाइल संख्या 1/1878-पत्र दिनांक 28 अक्तूबर, 1878

2 -वही-

का सुझाव भी दिया गया । इस प्रकार स्कूल में निम्नलिखित अध्यापक नियुक्त करने की संस्तुति की गई थी । उनके वेतन में संशोधन का प्रस्ताव भी किया गया:

| प्रस्तावित पद | वेतन | | |
|---|---|---|---|
| | रूपया | आना | पैसा |
| प्रधानाध्यापक | 25 | - | - |
| सहायक अध्यापक | 10 | - | - |
| पंडित | 10 | - | - |
| सहायक पंडित | 5 | - | - |
| मौलवी | 10 | - | - |
| सहायक मौलवी | 5 | - | - |
| कुल | 65 | - | - |

अगले वर्ष 1880 ई. में समथर स्कूल ने कुछ प्रगति की । छात्रों की उपस्थिति गत वर्ष की अपेक्षा अधिक थी किन्तु न तो उर्दू और न ही हिन्दी विभाग में नियमित कक्षाओं की कोई व्यवस्था थी । निरीक्षण टीम ने संस्तुति की कि हिन्दी एवं उर्दू विभाग पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए और परशियन एवं संस्कृत की शिक्षा तभी दी जानी चाहिए जब छात्र उर्दू एवं हिन्दी का उचित ज्ञान प्राप्त कर लें ।

वर्ष 1882 तक स्कूल में अंग्रेजी भी पढ़ाई जाने लगी थी । अंग्रेजी में दो कक्षाएं थीं जिनमें प्रत्येक में पांच छात्र थे लेकिन अभी अंग्रेजी की पढ़ाई प्रारम्भिक स्थिति में ही थी । उर्दू विभाग में 21 एवं हिन्दी में 75 छात्र थे । उर्दू की पढ़ाई संतोषजनक नहीं थी । हिन्दी विभाग के छात्रों का उच्चारण एवं शब्द ज्ञान अच्छा नहीं था लेकिन उर्दू एवं अंग्रेजी विभाग की तुलना में हिन्दी विभाग का कार्य सराहनीय कहा जा सकता था । निरीक्षण टीम का विचार था कि यदि दरबार द्वारा स्कूल को कुछ प्रोत्साहन दिया जाए तो आगामी वर्षों में स्कूल का स्तर अवश्य ही बेहतर हो सकता था।[1]

स्कूल का अगला निरीक्षण 11 जनवरी, 1884 को किया गया लेकिन यहां पढ़ाई में कोई प्रगति नहीं हुई थी । अंग्रेजी विभाग को बन्द कर दिया गया था और हिन्दी एवं उर्दू विभागों के छात्र सम्भवतः गत वर्षों की भांति ही निरीक्षण के अवसर पर ही एकत्र किए गए थे । यह देखकर राजकुमार कालेज के प्रिंसीपल को अति निराशा हुई । पोलिटिकल एजेंट को भेजी गई अपनी रिपोर्ट में उसने खेद व्यक्त किया कि समथर राज्य दरबार द्वारा राज्य में शिक्षा के विकास के लिए कुछ भी नहीं किया जा रहा था। इसलिए वह आगामी वर्षों में इस स्कूल का निरीक्षण तब तक नहीं करना चाहता था जब तक कि राज्य दरबार द्वारा इस कार्य में रूचि न ली जाए । इससे स्पष्ट था कि राज्य में शिक्षा का स्तर इतना पिछड़ा था कि इसे देखकर निरीक्षण टीम के सदस्यों को बहुत

---

1 फाइल संख्या 1/1878-पत्र दिनांक 16 जनवरी, 1883

अफसोस हुआ । हिन्दी एवं उर्दू विभागों के छात्रों को कक्षाओं के अनुसार वर्गीकृत नहीं किया गया था और वे सभी अलग-अलग पुस्तकें पढ़ते थे । बहुत से छात्र केवल इसी अवसर के लिए स्कूल में एकत्र किए गए थे ।

राजकुमार कालेज के प्रिंसीपल द्वारा स्कूल के गिरते स्तर पर रोष व्यक्त किए जाने के पश्चात् सम्भवतः समथर दरबार द्वारा स्कूल पर ध्यान दिया जाने लगा । परिणामस्वरूप सितम्बर, 1884 के निरीक्षण में स्कूल की प्रगति स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगी । निरीक्षण टीम ने पाया कि अब छात्र पहले से अधिक साफ-सुथरे दिखाई देते थे । वे अपनी पढ़ाई में भी अधिक ध्यान देने लगे थे और कुल मिलाकर शिक्षा का स्तर गत वर्षों की अपेक्षा बेहतर था । श्री माइकल, जो राजकुमार कालेज के कार्यकारी प्रिंसीपल थे, उन्होंने निरीक्षण के पश्चात् दरबार को बधाई दी और आशा व्यक्त की कि यदि भविष्य में भी राज्य दरबार द्वारा इस स्कूल पर इसी प्रकार ध्यान दिया जाता रहेगा तो निश्चित रूप से यह स्कूल बहुत प्रगति करेगा ।[1]

**<u>पन्ना</u>**

1879 ई. की एक रिपोर्ट के अनुसार पन्ना राज्य स्कूल के विकास के लिए राज्य

---

1 फाइल संख्या 1/1878-पत्र दिनाक 19 नवम्बर, 1884

दरबार द्वारा कोई रूचि नहीं ली जाती थी । स्कूल के अध्यापक अपनी मनमानी करते थे। स्कूल में अध्यापकों की संख्या एवं इनका वेतन इस प्रकार था :[1]

| पद | नाम | वेतन (रूपए) |
|---|---|---|
| प्रधानाध्यापक | श्री आर.एम.पसाना | 100 |
| प्रथम परश्यिन अध्यापक | मौलवी मोहम्मद रजा | 25 |
| द्वितीय परश्यिन अध्यपक | मौलवी अमानतुल्लाह | 11 |
| मुख्य पंडित | श्री दुर्गा प्रसाद जोकली | 11 |
| द्वितीय पंडित | हर प्रसाद | 10 |
| महाजनी अध्यापक | राम प्रसाद | 10 |
| | कुल (रूपए) | 167 |

इस प्रकार यद्यपि महाराजा द्वारा पन्ना स्कूल के लिए पर्याप्त खर्च दिया जाता था किन्तु स्कूल के अध्यापक अपना कार्य ठीक से नहीं करते थे । अतः श्री मैथर का सुझाव था कि पन्ना स्कूल में अध्यापकों की संख्या में कमी कर दी जाए लेकिन उनका वेतन बढ़ा दिया जाए । इस संबंध में स्कूल के लिए निम्नलिखित अध्यापक रखने का

---

1 फाइल संख्या 1/1878

सुझाव दिया गया। :

| प्रस्तावित पद | प्रस्तावित वेतन (रूपए) |
|---|---|
| प्रधानाध्यापक | 100 |
| परशियन अध्यापक | 25 |
| हिन्दी एवं संस्कृत अध्यापक | 25 |
| महाजनी अध्यापक | 10 |
| कुल | 160 रूपए |

इस प्रस्ताव के अनुसार स्कूल पर पहले से किए जा रहे खर्च से कम खर्च आने की संभावना थी ।

पन्ना राज्य स्कूल में शिक्षा की स्थिति निराशाजनक थी । सम्भवतः इसका मुख्य कारण था कि राज्य दरबार द्वारा स्कूल के विकास की ओर बिल्कुल ध्यान नहीं दिया गया था । शिक्षा के पिछड़े स्तर पर दुःख प्रकट करते हुए निरीक्षण टीम ने वर्ष 1879 की अपनी रिपोर्ट में लिखा था "स्कूल में जीवन एवं स्फूर्ति की कमी थी । न तो महाराजा और न ही दरबार का कोई अन्य सदस्य स्कूल में कोई रूचि लेता था । गत वर्ष निरीक्षण टीम द्वारा जिन कमियों की ओर ध्यान आकर्षित किया गया था उन्हें

1 फाइल संख्या 1/1878

सुधारने के लिए कोई प्रयास नहीं किए गए थे । यहां तक कि स्कूल में छात्रों की उपस्थिति पंजिका भी उचित प्रकार से नहीं बनाई गई थी । यद्यपि अंग्रेजी अध्यापक ने जुलाई माह से छात्रों की उपस्थिति पंजिका बना ली थी किन्तु हिन्दी एवं संस्कृत विभाग के अध्यापकों ने उपस्थिति पंजिका के रूप में अलग-अलग अनेक कागज प्रस्तुत किए जिन पर कुछ महीनों की उपस्थिति दर्ज की गई थी और उसके पश्चात् यह कार्य छोड़ दिया गया था । छात्रों की उपस्थिति दर्ज न करने का कारण अध्यापक द्वारा यह बताया गया कि मई माह के पश्चात् सभी छात्र प्रतिदिन उपस्थित थे इसलिए उनकी उपस्थिति लिखे जाने की कोई आवश्यकता नहीं थी । ऐसा प्रतीत होता था कि अलग-अलग कागज जिन पर छात्रों की उपस्थिति दर्शाई गई थी वे भी नियमानुसार न बनाकर निरीक्षण के एक दो दिन पूर्व तैयार किए गए थे ।"[1]

स्कूल में संस्कृत एवं महाजनी विभाग में पढ़ाई का स्तर बहुत पिछड़ा था । निरीक्षण दल के विचार में इन दोनों विभागों के अध्यापकों को नौकरी से निकाल दिया जाना चाहिए था । अंग्रेजी के छात्रों ने गत वर्ष की तुलना में कुछ भी नया नहीं सीखा था । अंग्रेजी अध्यापक के अनुसार इसका कारण था कि वह प्रथम छः माह तक छुट्टी पर रहा था और इस अवधि में उसके स्थान पर स्कूल अथवा दरबार द्वारा कोई

---

1 फाइल संख्या 1/1878-पत्र दिनांक 26 नवम्बर, 1879

अध्यापक नहीं रखा गया था । कुल मिलाकर स्कूल में शिक्षा की स्थिति दयनीय थी ।[1]

सम्भवतः इस निरीक्षण के पश्चात् राज्य दरबार द्वारा स्कूल के विकास की ओर ध्यान दिया जाने लगा । स्कूल में नए हैडमास्टर श्री लक्ष्मण जयदेव गौर की नियुक्ति की गई । उसने अपनी योग्यता एवं कुशल प्रशासन से स्कूल की स्थिति में बहुत सुधार किया । परिणामस्वरूप अगले वर्ष 1880 ई. में स्कूल के विकास को देखकर निरीक्षण दल के सदस्य आश्चर्यचकित रह गए । अब छात्रों एवं अध्यापकों में अधिक अनुशासन था । छात्रों की उपस्थिति प्रतिदिन ली जाती थी । अंग्रेजी पढ़ने वाले छात्रों की संख्या में भी वृद्धि हो गई थी एवं उन्हें एक निश्चित पाठ्यक्रम के अनुसार शिक्षा दी जा रही थी। छात्रों का अंग्रेजी का उच्चारण अच्छा था । इसका मुख्य कारण था कि महाराजा ने स्वयं अंग्रेजी विभाग की प्रगति में रूचि ली थी लेकिन स्कूल के अन्य विभाग जैसे हिन्दी, संस्कृत, परशियन एवं उर्दू की ओर अधिक ध्यान दिए जाने की आवश्यकता थी । परशियन एवं उर्दू का अध्यापक पढ़ाने के नए तरीके से लगभग अनभिज्ञ था एवं वह पुराने ढंग से ही पढ़ाता था । विभाग में छात्रों को उनके स्तर के अनुसार अलग-अलग कक्षाओं में विभक्त नहीं किया गया था । इसी प्रकार संस्कृत एवं हिन्दी के अध्यापक भी पुराने ढंग से ही पढ़ाते थे । इन विभागों में निश्चित पाठ्यक्रम लागू नहीं किया गया था।

---

1 फाइल संख्या 1/1878-पत्र दिनांक 26 नवम्बर, 1879

अतः रिपोर्ट के अनुसार इस ओर अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए था ।[1]

अंग्रेजी विभाग के विकास का मुख्य कारण था कि महाराजा ने स्वयं इस विभाग की प्रगति में रूचि ली थी । महाराजा के भाई संझले राजा ने स्वयं कई बार स्कूल का निरीक्षण किया और इसकी प्रगति की समीक्षा की थी । महाराजा का विंचार था कि राज्य की सभी तहसीलों में स्कूल खोले जाएं । यह योजना कार्यान्वित होने पर निश्चित रूप से राज्य में शिक्षा का समुचित विकास होने की आशा थी ।

इस प्रकार महाराजा पन्ना द्वारा स्वयं स्कूल की देख-रेख में रूचि लिए जाने के कारण शिक्षा के स्तर में बहुत सुधार हुआ । स्कूल के अध्यापकों के वेतन में संशोधन किया गया । वर्ष 1883 में स्कूल के अध्यापकों को निम्नलिखित वेतन मिलता था:-

| विभाग/पद | नाम | रू. | आना | पैसा |
|---|---|---|---|---|
| अंग्रेजी विभाग | | | | |
| प्रधानाध्यापक | श्री लक्ष्मण जयदेव | 60 | 0 | 0 |
| सहायक अध्यापक | श्री रामचन्द्र | 25 | 0 | 0 |
| उर्दू विभाग | | | | |
| मुंशी | मथुरा प्रसाद | 8 | 0 | 0 |
| हिन्दी विभाग | | | | |
| पंडित | छाबू लाल | 14 | 6 | 0 |
| सहायक अध्यापक | हर प्रसाद | 6 | 15 | 0 |
| महाजनी विभाग | | | | |
| अध्यापक | रामचन्द्र | 4 | 5 | 0 |

1 फाइल संख्या 1/1878-पत्र दिनांक 29 सितम्बर, 1880

स्कूल में छात्रों की संख्या में भी वृद्धि हुई थी । मार्च, 1883 में स्कूल में 117 छात्र थे जबकि सितम्बर, 1880 की निरीक्षण रिपोर्ट के अनुसार उस समय छात्रों की संख्या 80 थी । अंग्रेजी के छात्रों का परीक्षाफल संतोषजनक था । निरीक्षण रिपोर्ट के अनुसार "अंग्रेजी विभाग में चार कक्षाएं थीं । विद्यार्थियों को अपनी पाठ्यपुस्तकें की कविताएं भली भांति कंठस्थ थीं । उनकी लिखावट साफ सुथरी थी । वे अपना पाठ अच्छी तरह समझते थे । कुछ छात्र अपनी पाठ्यपुस्तक में से सात पेज की लम्बी कविता बिना गलती के सुना सकते थे । निःसन्देह यह एक आश्चर्यजनक बात थी । लेकिन हिन्दी, उर्दू एवं महाजनी विषयों में छात्रों पर अधिक ध्यान दिए जाने की आवश्यकता थी ।"

इस प्रकार अंग्रेजी विभाग ने बहुत प्रगति की थी जबकि अन्य विषयों विशेष रूप से उर्दू में परिणाम सन्तोषप्रद नहीं थे । अंग्रेजी के छात्रों से श्री माइकल, जो निरीक्षण दल के प्रमुख थे, अत्यन्त प्रभावित हुए । उसके अनुसार "अंग्रेजी के प्रत्येक छात्र का उच्चारण आश्चर्यजनक रूप से अच्छा था । वे साफ एवं अच्छा पढ़ सकते थे । यदि मैं अपनी आंखें मूंद लेता तो निश्चित ही मैं सोचता कि वे अंग्रेज लड़के बोल रहे थे क्योंकि उनका उच्चारण बिल्कुल शुद्ध था । यदि यह छात्र अंग्रेजी बोलने का इसी प्रकार अभ्यास करते रहे तो वह अवश्य ही अंग्रेजी शब्दों को बहुत अच्छा ज्ञान प्राप्त कर

लेंगे।"[1] लेकिन श्री माइकल का सुझाव था कि छात्रों को कम से कम एक वर्ष तक अन्य विषयों की शिक्षा देने के पश्चात् ही अंग्रेजी विभाग में प्रवेश दिया जाना चाहिए ताकि इस विभाग में आने पर उन्हें दूसरे विषयों की आवश्यक जानकारी हो ।

स्कूल के रिकार्ड अब साफ सुथरे एवं उचित प्रकार से रखे जाते थे । स्कूल के विकास में महाराजा के द्वारा रूचि लेने के कारण ही ऐसा सम्भव हो सका था । महाराजा का भतीजा नन्हें राजा भी स्कूल का छात्र था । उसने अपनी परीक्षा बहुत अच्छे अंकों से उत्तीर्ण की थी लेकिन अभी तक राज्य की अन्य तहसीलों में स्कूल खोलने की योजना को लागू नहीं किया गया था । श्री माइकल का विचार था कि यदि महाराजा पन्ना अन्य तहसीलों में शीघ्र ही स्कूल खोलने का प्रयास करें तो पन्ना राज्य में शिक्षा का बहुत अधिक विकास हो सकता था जिससे राज्य के लोग लाभ प्राप्त कर सकते थे।

इसी प्रकार वर्ष 1884 में भी स्कूल की प्रगति निरन्तर होती रही और राज्य में शिक्षा के विकास का श्रेय महाराजा के वैयक्तिक प्रयासों को दिया गया ।[2]

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि जब तक राज्य दरबार द्वारा शिक्षा के विकास की ओर समुचित ध्यान नहीं दिया गया राज्य स्कूल में शिक्षा की निराशाजनक स्थिति रही । लेकिन शीघ्र ही महाराजा द्वारा पन्ना राज्य में शिक्षा के विकास में विशेष

---

1 फाइल संख्या 1/1878-पत्र दिनांक 6 मार्च, 1883

2 फाइल संख्या 1/1878-पत्र दिनां 1 मई, 1884

रूचि ली गई जिसका परिणाम स्कूल में शिक्षा में हुए सुधार के रूप में स्पष्ट होने लगा । राज्य में शिक्षा का तेजी से विकास हुआ और शिक्षा के क्षेत्र में इस राज्य ने बुन्देलखण्ड के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

चरखारी

चरखारी स्कूल में शिक्षा का स्तर अन्य राज्यों की शिक्षा की तुलना में सन्तोषजनक था । गवर्नर जनरल के एजेंट ने स्वयं 1 फरवरी, 1867 को इस स्कूल का निरीक्षण किया एवं इस स्कूल की पढ़ाई पर सन्तोष व्यक्त किया । स्कूल का प्रधानाध्यापक अमीर खान एक कुशल प्रशासक एवं योग्य शिक्षक था । एजेंट गवर्नर जनरल ने विश्वास व्यक्त किया कि यदि स्कूल को राज्य से सहायता प्राप्त होती रहेगी तो इसके छात्र निश्चय ही सरकारी नौकरियों में सफलता प्राप्त कर सकेंगे ।

स्कूल में छात्रों की उपस्थिति सुनिश्चित करने के लिए कुछ ऐसे छात्रों को भी प्रवेश दिया गया था जो अपनी कक्षा के स्तर से अधिक आयु के थे और इस आयु में उन्हें अपने जीवनयापन के लिए कुछ कार्य करना चाहिए था लेकिन सम्भवतः उन्हें कोई काम नहीं मिला था और उन्होंने स्कूल में प्रवेश ले लिया था । इसलिए यह सुझाव दिया गया कि ऐसे कुछ छात्रों को छात्रवृत्तियां देने की व्यवस्था की जा सकती थी । लेकिन छात्रवृत्ति की राशि छात्र के व्यक्तिगत खर्च से अधिक नहीं होनी चाहिए ।[1] गवर्नर

---

1 फाइल संख्य 3/1866

जनरल के एजेंट ने यह भी सुझाव दिया कि स्कूल की प्रत्येक कक्षा में मानीटर नियुक्त किए जाएं जिन्हें कुछ जेब खर्च दिया जा सकता था । इस जेब खर्च के प्रलोभन में छात्रों में मानीटर के पद के लिए स्पर्धा बढ़ेगी जिससे छात्रों के व्यवहार तथा चरित्र सुधार को बढ़ावा मिलने की आशा की जा सकती थी ।[1] इस प्रकार चरखारी स्कूल द्वारा शिक्षा के क्षेत्र में सराहनीय कार्य किया जा रहा था ।

वर्ष 1880 की अपनी निरीक्षण रिपोर्ट में श्री मैथर ने भी चरखारी राज्य स्कूल में शिक्षा की प्रगति पर संतोष प्रकट किया । स्कूल के अध्यापकों एवं छात्रों में अनुशासन की भावना स्पष्ट दिखाई पड़ती थी । स्कूल के प्रिंसीपल श्री जागेश्वर प्रसाद ने अनेक कठिनाइयों के बावजूद स्कूल की उन्नति के लिए बहुत परिश्रम किया था । स्कूल में अंग्रेजी, संस्कृत, हिन्दी, परश्यिन एवं उर्दू की शिक्षा दी जाती थी । अंग्रेजी विभाग में प्रधानाध्यापक की सहायता के लिए एक द्वितीय अंग्रेजी अध्यापक की नियुक्ति भी गई थी । लेकिन यह सुझाव दिया गया कि अंग्रेजी विभाग में केवल उन्हें छात्रों को प्रवेश दिया जाना चाहिए जिन्हें हिन्दी अथवा उर्दू का उचित ज्ञान हो । स्कूल के अंग्रेजी विभाग द्वारा यद्यपि वर्ष 1880 में निश्चित पाठ्यक्रम लागू किया गया था लेकिन अन्य विभागों द्वारा भी ऐसा किए जाने की आवश्यकता थी ।[2] फिर भी

---

1 फाइल संख्या 3/1866

2 फाइल संख्या 1/1878

बुन्देलखण्ड के कई अन्य स्कूलों की अपेक्षा चरखारी राज्य स्कूल में शिक्षा का स्तर उत्तम कहा जा सकता था ।

स्कूल का अगला निरीक्षण अक्तूबर, 1882 में श्री माइकल द्वारा किया गया, अब अंग्रेजी विभाग में अध्यापकों की संख्या में वृद्धि हो चुकी थी । विभिन्न विभागों में अध्यापकों का वेतन इस प्रकार था :

| पद | नाम | वेतन (रूपए) |
|---|---|---|
| प्रधानाध्यापक | परमानन्द | 125 |
| अंग्रेजी | जुगल किशोर | 50 |
| | रघुनाथ | 15 |
| | गंगाधर | 7 |
| | बिन्द्रावन | 8 |
| संस्कृत | वासुदेव | 20 |
| हिन्दी | गोविन्द राम | 12 |
| | भवानी प्रसाद | 10 |
| | शिवचरण | 8 |
| परशियन | मेंहदी हुसैन | 15 |
| | शेरखान | 7 |
| उर्दू | रामनारायन | 12 |
| | रमजान | 7 |

स्कूल में छात्रों की कुल संख्या 202 थी जिसमें से अंग्रेजी विभाग में 51, हिन्दी में 67 एवं उर्दू में 60 छात्र थे । अंग्रेजी का स्तर अच्छा था और तीन कक्षाओं के छात्र कुछ समय पश्चात् नौगांव कालेज में परीक्षा देने की तैयारी कर रहे थे । हिन्दी एवं उर्दू विभागों में भी निरीक्षण के समय छात्रों ने संतोषजनक प्रदर्शन किया लेकिन अंकगणित में छात्र बहुत कमजोर थे । लेकिन स्कूल के प्रधानाध्यापक द्वारा इसका कारण यह बताया गया कि कुछ छात्रों में अंकगणित सीखने की योग्यता ही कम थी और इसीलिए वह इस विषय में कमजोर थे । लेकिन निरीक्षण दल इस तर्क से सहमत नहीं था। श्री माइकल का सुझाव था कि यदि अंकगणित अध्यापक को स्कूल के बाद प्रतिदिन एक घंटा पढ़ाने का निर्देश दिया जाए तो शीघ्र ही छात्र इस विषय में भी उन्नति कर सकते थे । स्कूल के अनुशासन की भी निरीक्षण दल द्वारा सराहना की गई । यह भी विश्वास व्यक्त किया गया कि इस स्कूल के जो छात्र नौगांव कालेज में परीक्षा देने की तैयारी कर रहे थे वे अवश्य ही उस परीक्षा में सफल होंगे ।[1]

वर्ष 1884 के निरीक्षण के अवसर पर बुन्देलखण्ड के पोलिटिकल एजेंट द्वारा परीक्षा में सफल होने वाले छात्रों को पुरस्कार वितरित किए गए । यह देखा गया कि प्रत्येक अध्यापक द्वारा अपना कार्य परिश्रम से किया जाता था । वे सभी स्कूल के विकास में रूचि लेते थे । श्री परमानन्द का देहान्त हो चुका था लेकिन इससे पूर्व उन्हें

---

1 फाइल संख्या 1/1878-पत्र दिनांक 4 नवम्बर, 1882

पोलिटिकल एजेंट का मुख्य लिपिक नियुक्त किया गया था और स्कूल में प्रधानाध्यापक के पद पर श्री जुगल किशोर की नियुक्ति कर दी गई थी । स्कूल में अब विभिन्न खेलों की शिक्षा भी दी जाती थी और इस कारण इस स्कूल की लोकप्रियता बढ़ने लगी थी । स्कूल में एक जिमनेजियम का निर्माण भी किया गया था । इससे पढ़ाई के साथ-साथ खेलों के प्रति भी छात्रों की रूचि बढ़ी ।

इस प्रकार चरखारी राज्य स्कूल ने निश्चय ही शिक्षा की प्रगति में बहुत योगदान दिया । इसका श्रेय स्कूल के योग्य प्रधानाध्यापक को दिया जा सकता था । अन्य अध्यापकों द्वारा भी अपने विषय में रूचि लेने के कारण स्कूल का चहुमुखी विकास सम्भव हो सका था । ब्रिटिश अधिकारी इस स्कूल की प्रगति से सन्तुष्ट थे ।

## बिजावर

बिजावर राज्य स्कूल अपेक्षाकृत एक छोटा स्कूल था । वर्ष 1879 में इस स्कूल में लगभग 42 छात्र थे और एक अध्यापक था जो अंग्रेजी, हिन्दी एवं उर्दू सभी विषय पढ़ाता था । अंग्रेजी में 3, उर्दू में 2 तथा संस्कृत एवं हिन्दी में 37 छात्र थे। लेकिन हिन्दी के छात्रों में से अधिकांश अनुपस्थित रहते थे । स्कूल में छात्रों की उपस्थिति दर्ज करने का कोई नियम नहीं था । एक मात्र अध्यापक के लगभग तीन महीने तक स्कूल से अनुपस्थित रहने पर किसी अन्य अध्यापक को स्कूल में नहीं रखा गया था । श्री मैथर ने स्कूल की इस वर्ष की अपनी निरीक्षण रिपोर्ट में सुझाव दिया कि

स्कूल में एक अध्यापक जिसे 20 रूपए प्रतिमाह वेतन मिलता था, के स्थान पर हिन्दी एवं उर्दू पढ़ाने के लिए दो अध्यापक नियुक्त किए जाने चाहिए । इन दोनों में से प्रत्येक अध्यापक को 15 रूपए प्रतिमाह वेतन दिया जा सकता था । छात्रों द्वारा अंग्रेजी में कुछ प्रगति कर लेने पर एक अंग्रेजी अध्यापक की नियुक्ति की जा सकती थी ।[1]

वर्ष 1880 में भी स्कूल में शिक्षा के स्तर में अधिक सुधार नहीं हुआ था । इस वर्ष यह संस्तुति की गई कि स्कूल में अंग्रेजी की पढ़ाई बन्द कर दी जानी चाहिए एवं केवल हिन्दी तथा उर्दू की शिक्षा पर ध्यान दिया जाना चाहिए क्योंकि जिस प्रकार अंग्रेजी की शिक्षा दी जा रही थी उसका कोई लाभ नहीं था । स्कूल में हिन्दी तथा उर्दू विषयों के लिए एक निश्चित पाठ्यक्रम लागू किए जाने की भी अति आवश्यकता थी ।[2]

वर्ष 1883 तक स्कूल में छात्रों की संख्या में काफी वृद्धि हो गई थी । अब स्कूल में अंग्रेजी नहीं पढ़ाई जाती थी । उर्दू में 60 छात्र थे एवं हिन्दी के 31 छात्र थे लेकिन उर्दू अध्यापक द्वारा पढ़ाने में बिल्कुल रूचि नहीं ली जाती थी । उसे छात्रों के नाम भी ठीक से मालूम नहीं थे । वह यह भी नहीं जानता था कि कौन सा छात्र किस कक्षा का है ? छात्र पढ़ाई में कमजोर थे । हिन्दी की पढ़ाई अपेक्षाकृत सन्तोषजनक थी ।

---

1 फाइल संख्या 1/1878-पत्र दिनांक 3 दिसम्बर, 1879

2 -वही- पत्र दिनांक 9 अक्तूबर, 1880

वर्ष 1884 में भी बिजावर राज्य स्कूल में शिक्षा का स्तर इसी प्रकार पिछड़ा था। अब स्कूल की इमारत किसी अन्य कार्य के लिए प्रयोग की जानी लगी थी इसलिए स्कूल तम्बू में चलाया जाता था । उर्दू अध्यापक द्वारा पहले की भांति ही पढ़ाने में कोई रूचि नहीं ली जाती थी जिस कारण स्कूल के उर्दू विभाग की स्थिति बहुत खराब थी।[1]

बिजावर राज्य स्कूल की इस स्थिति से यह स्पष्ट था कि राज्य दरबार द्वारा सम्भवत: शिक्षा के विकास के लिए प्रयास नहीं किया गया था । निरीक्षण रिपोर्टों में कई बार स्कूल के उर्दू विभाग की बिगड़ती स्थिति की ओर ध्यान आकर्षित करने पर भी राज्य दरबार द्वारा इसे सुधारने के लिए प्रयत्न नहीं किए गए थे । इसीलिए बिजावर राज्य शिक्षा के क्षेत्र में लगातार पिछड़ा रहा था ।

**अलीपुरा**

अलीपुरा में शिक्षा की स्थिति अपेक्षाकृत अच्छी थी । वर्ष 1879 में स्कूल का प्रधानाध्यापक श्री मिट्ठूलाल एक परिश्रमी एवं योग्य व्यक्ति था और स्कूल के विकास में रूचि लेता था । लेकिन इस स्कूल में भी अभी एक निश्चित पाठ्यक्रम लागू किए जाने की आवश्यकता थी ।

अलीपुरा के महाराजा द्वारा स्कूल की ओर विशेष ध्यान दिए जाने के कारण यह स्कूल प्रतिवर्ष प्रगति की ओर अग्रसर होता रहा । वर्ष 1880 की निरीक्षण रिपोर्ट में

---

1 फाइल संख्या 1/1878-पत्र दिांक 1 मई, 1884

भी स्कूल के विकास में महाराजा की रूचि की प्रशंसा की गई ।[1] वर्ष 1883 तक स्कूल में निश्चित पाठ्यक्रम अपना लिया गया था जिसके परिणाम स्पष्ट थे । छात्रों की पढ़ाई का स्तर अब अपेक्षाकृत अधिक अच्छा हो गया था लेकिन 1884 तक स्कूल में छात्रों की संख्या एवं उनकी पढ़ाई के स्तर में कुछ कमी आ गई थी । फिर भी अलीपुरा राज्य स्कूल क्षेत्र के अन्य अनेक स्कूलों की तुलना में सराहनीय कार्य कर रहा था और इसका श्रेय अलीपुरा दरबार को दिया जा सकता था ।

अमेरिकन फ्रेन्डस मिशन द्वारा हरपालपुर में कुछ वर्षों से लड़कों के लिए एक स्कूल चलाया जा रहा था किन्तु यह स्कूल राज्य सरकार द्वारा उपलब्ध कराई गई एक इमारत में था । वर्ष 1916 में अलीपुरा के राजा ने इस मिशन को हरपालपुर डिस्पेंसरी के दक्षिण में कुछ भूमि स्कूल के लिए दे दी थी ।[2] चूंकि हरपालपुर डिस्पेंसरी क्षेत्र में बहुत लोकप्रिय थी इसीलिए ब्रिटिश सरकार को अमेरिकन फ्रेन्डस मिशन द्वारा इस भूमि पर स्कूल बनाने में कोई आपत्ति नहीं थी ।[3] अलीपुरा के राजा द्वारा क्षेत्र की प्रगति के लिए किया गया यह प्रयास भी प्रशंसनीय था ।

इस प्रकार बुन्देलखण्ड की विभिन्न रियासतों में शिक्षा की स्थिति के उपरोक्त

---

1 फाइल संख्या 1/1878-पत्र दिनांक 1.5.1884

2 फाइल संख्या 104-डी-पत्र दिनांक 28.4.1916

3 -वही- पत्र दिनांक 2.5.1916

विवेचन से स्वतः स्पष्ट हो जाता है कि लगभग पूरे बुन्देलखण्ड में शिक्षा के प्रति आम लोगों में अधिक रूचि नहीं थी । विभिन्न रियासतों के दरबारों के लिए शिक्षा का विकास उनकी प्राथमिकता नहीं थी क्योंकि वे सम्भवतः इसके महत्व से परिचित नहीं थे । अजयगढ़ के महाराजा द्वारा क्षेत्र में शिक्षा के विकास के महत्व को भली भांति समझा गया था इसलिए उसने इस दिशा में व्यक्तिगत रूचि लेकर अपने राज्य में शिक्षा का स्तर सुधारने के प्रयास किए थे । महाराजा द्वारा बुन्देलखण्ड के पोलिटिकल एजेंट को क्षेत्र की सभी रियासतों द्वारा शिक्षा की उन्नति से संबंधित कुछ सुझाव भी दिए गए थे । उसके इन सुझावों को ब्रिटिश सरकार द्वारा कार्यान्वित भी किया गया था । इसके अतिरिक्त चरखारी राज्य में भी शिक्षा की स्थिति सन्तोषजनक थी लेकिन एक दो रियासतों द्वारा शिक्षा के लिए किए गए प्रयत्न क्षेत्र में शिक्षा का स्तर ऊंचा उठाने के लिए पर्याप्त नहीं थे ।

ब्रिटिश सरकार द्वारा इस दिशा में प्रयास किए गए थे किन्तु बुन्देलखण्ड की आवश्यकताओं एवं पिछड़ेपन को देखते हुए यह प्रयास पर्याप्त नहीं थे । ब्रिटिश सरकार द्वारा नौगांव कालेज की स्थापना करके एक प्रशंसनीय कार्य किया गया था किन्तु कालेज में राजप्रमुखों के पुत्रों एवं अन्य छात्रों के लिए अलग-अलग नियम बनाकर सम्भवतः सरकार सामाजिक भिन्नता को और बढ़ाना चाहती थी । इस कालेज में राजकुमारों के अतिरिक्त उच्च राज-दरबारियों के पुत्रों को भी प्रवेश मिल सकता था

लेकिन उनके प्रवेश से राजकुमारों के प्रवेश में कोई रूकावट नहीं होनी चाहिए थी किन्तु इस कालेज के प्रशासन एवं शिक्षा की देखरेख के लिए एक सुयोग्य व्यक्ति की नियुक्ति करके ब्रिटिश सरकार ने बुन्देलखण्ड में शिक्षा की प्रगति में सहायता की थी ।

सरकार द्वारा विभिन्न राज्यों के स्कूलों के वार्षिक निरीक्षण के निर्णय से भी बुन्देलखण्ड में शिक्षा के प्रति जागरूकता बढ़ाने में सहायता मिली थी अन्यथा न तो दरबार और न ही नागरिक शिक्षा में रूचि लेते थे । स्कूलों के वार्षिक निरीक्षण के कारण इन स्कूलों के अध्यापकों में जिम्मेदारी की भावना बढ़ी और वे अपना कार्य उचित प्रकार से करने के लिए प्रेरित हुए । कुछ स्कूलों के अध्यापक इस निरीक्षण के कारण अपनी कार्य शैली सुधारने को मजबूर थे क्योंकि उनका कार्य संतोषजनक न होने के कारण निरीक्षण टीम ने कुछ अयोग्य अध्यापकों को उनके पद से हटाने अथवा उनका वेतन कम करने की संस्तुति भी की थी । इस प्रकार दरबारों द्वारा विशेष ध्यान दिए जाने के कारण और इन निरीक्षणों में इंगित की गई कमियों को सुधारने के फलस्वरूप कई स्कूलों में शिक्षा की प्रगति हुई ।

शिक्षा के विकास में अध्यापकों की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है लेकिन ब्रिटिश शासन में अध्यापकों को विभिन्न दरबारों द्वारा बहुत कम वेतन दिया जाता था । इस कारण भी सम्भवत: वे अध्यापन कार्य में रूचि नहीं लेते थे । क्षेत्र की लगभग सभी रियासतों में अध्यापकों को कम वेतन मिलता था इसलिए ब्रिटिश सरकार ने विभिन्न

निरीक्षण रिपोर्टों में वेतन बढ़ाए जाने की संस्तुति को स्वीकार करते हुए राज दरबारों को इस संबंध में निर्देश दिए थे ।

**राजप्रमुखों एवं जागीरदारों के पुत्रों को शिक्षा के विशेषाधिकार :-**

ब्रिटिश सरकार द्वारा बुन्देलखण्ड के विभिन्न जागीरदारों एवं राजदरबारों को प्रभावित करने के उद्देश्य से समय-समय पर प्रयास किए गए । शिक्षा के संबंध में यद्यपि सरकार द्वारा आम जनता की शिक्षा के लिए प्रयत्न किए गए थे लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि सरकार का उद्देश्य वास्तव में क्षेत्र के राजदरबारों को प्रभावित करना था । नौगांव कालेज की स्थापना करते समय भी यह योजना बनाई गई थी कि इसमें राजप्रमुखों एवं जागीरदारों के पुत्रों एवं संबंधियों को वरीयता के आधार पर प्रवेश दिया जाएगा क्योंकि इन दरबारों द्वारा नौगांव कालेज के लिए आर्थिक सहायता देना स्वीकार किया गया था । सम्भवतः ब्रिटिश सरकार को आम जनता की शिक्षा के विकास में अधिक रूचि नहीं थी ।

डेली कालेज, इन्दौर शिक्षा का एक मुख्य केन्द्र था लेकिन यह बुन्देलखण्ड क्षेत्र के अन्तर्गत नहीं था । सन् 1900 में केन्द्रीय भारत के गवर्नर जनरल के प्रथम एजेंट द्वारा पोलिटिकल एजेंट को यह मालूम करने के लिए कहा गया कि क्या बुन्देलखण्ड एजेंसी के विभिन्न जागीरदार एवं ठाकुर परिवार अपने पुत्रों को शिक्षा के लिए डेली

कालेज, इंदौर भेजने के इच्छुक थे क्योंकि इनकी शिक्षा इनके भविष्य के लिए तथा इनके राज्य एवं जागीरों के लिए अवश्य ही लाभप्रद होगी ।[1]

अतः बुन्देलखण्ड के पोलिटिकल एजेंट ने क्षेत्र में राजपरिवारों के ऐसे लड़कों का पता लगाया जिन्हें शिक्षा के लिए डेली कालेज, इंदौर भेजा जा सकता था । लेकिन कठिनाई यह थी कि उनके परिवारजन उन्हें पढ़ने के लिए इन्दौर भेजने के पक्ष में नहीं थे क्योंकि इनके अनुसार इन्दौर बहुत दूर था । कुछ परिवारों के लिए तो इन्दौर एक अनजान एवं अजीब देश था ।[2]

पोलिटिकल एजेंट द्वारा फिर भी जागीरदार एवं ठाकुर परिवारों के इन लड़कों को इन्दौर भेजने के संबंध में प्रयास किया गया । सर्वप्रथम उसने देवीगीर गोसतियम को इन्दौर भेजा लेकिन उसका यह प्रयास असफल रहा क्योंकि वह इन्दौर के कालेज से वापिस भाग आया और नौगांव पहुंच गया । जब पुनः उसे इन्दौर भेजा गया तो वह रास्ते में से ही झांसी के आसपास भाग गया और उसे खोजने में पोलिटिकल एजेंट को बहुत कठिनाइयों का सामना करना पड़ा ।[3] अतः पोलिटिकल एजेंट को विश्वास हो गया कि बुन्देलखण्ड एजेंसी क्षेत्र में अभी तक शिक्षा का स्तर बहुत पिछड़ा हुआ था । यद्यपि

---

1 फाइल संख्या 56/1900

2 -वही-

3 -वही-

देवीगीर ने एक शर्मनाक व्यवहार किया था किन्तु यह इस बात का भी संकेत था कि एजेंसी में राजपरिवार एवं जागीरदारों के परिवार भी अपने बच्चों को अच्छी शिक्षा देनं में विशेष रूचि नहीं रखते थे । आम जनता में शिक्षा के प्रति जागरूकता के स्तर का अनुमान इसी से ही आसानी से लगाया जा सकता था । पोलिटिकल एजेंट को अब विश्वास हो गया था कि जागीरदारों के पुत्रों को डेली कालेज भेजना वास्तव में अत्यन्त कठिन कार्य था लेकिन एक बार इस दिशा में किसी राजपरिवार द्वारा प्रयास किए जाने पर क्षेत्र के शेष जागीरदार सम्भवतः अपने बेटों को आसानी से डेली कालेज भेजने के लिए तैयार हो सकते थे ।

जागीरदारों एवं राजप्रमुखों को डेली कालेज इन्दौर में अपने पुत्रों को भेजने के इस प्रयास में पोलिटिकल एजेंट ने इन लड़कों के संबंध में निम्नलिखित जानकारी एकत्र की :

| जागीरदार | पुत्र का नाम | आयु |
|---|---|---|
| पन्ना | | |
| 1. दीवान खुम्मन सिंह | जादवेन्द्र सिंह | 7 वर्ष |
| 2. - | राघवेन्द्र सिंह | 4 वर्ष |
| 3. दीवन बिजय बहादुर सिंह | प्यारे राजा | 9 वर्ष |
| 4. दीवान अनन्त सिंह | भान प्रताप सिंह | 13 वर्ष |
| 5. पूरन सिंह | रणछोर सिंह | 12 वर्ष |
| 6. जगजीत सिंह | माधो सिंह | 7 वर्ष |
| 7. मुसैब सिंह जगजीत | किशोर सिंह | 17 वर्ष |
| 8. - | जीत सिंह | 13 वर्ष |
| 9. दीवान बलवन्त सिंह | प्यारे नू | 13 वर्ष |

| 10. दीवान एस अमन सिंह | गोपाल सिंह | 18 वर्ष |
|---|---|---|
| 11. - | जीत सिंह | 1[illegible] वर्ष |
| 12. - | जगत राज सिंह | - |
| 13. दीवान निलम सिंह | पदम सिंह | 12 वर्ष |
| 14. के.लछमण सिंह | बलदेव सिंह | 17 वर्ष |
| 15. खुम्मन सिंह | रणधीर सिंह | 26 वर्ष |
| 16. - | गुमान सिंह | 23 वर्ष |
| 17. दीवान बीरजीत सिंह | अर्जुन सिंह | - |
| 18. के.तिलोक सिंह | बहादुर सिंह | 11 वर्ष |
| 19. - | जगजीत सिंह | 9 वर्ष |
| 20. - | सुल्तान सिंह | - |
| <u>धुरवई</u> | | |
| 1. जागीरदार | एक पुत्र | 9 वर्ष |
| 2. मनोहर सिंह | एक भाई | 11 वर्ष |
| 3. विक्रमजीत | एक भाई | 12 वर्ष |
| 4. कामोद सिंह | एक पुत्र | 10 वर्ष |
| 5. जुगराज सिंह | एक पुत्र | 10 वर्ष |
| 6. रंजीत सिंह | एक पुत्र | 8 वर्ष |
| 7. पूरन जू | एक भाई | 12 वर्ष |
| 8. मन्नी सिंह | एक पुत्र | 10 वर्ष |
| 9. शेर सिंह | एक पुत्र | 10 वर्ष |
| 10. पहलवान सिंह | एक पुत्र | 12 वर्ष |
| 11. रन्छोर सिंह | एक पुत्र | 10 वर्ष |

लेकिन धुरवई के इन प्रमुखों की आर्थिक स्थिति इतनी सुदृढ़ नहीं थी कि वे डेली कालेज इंदौर में अपने पुत्र/भाई की शिक्षा का खर्च उठा सकें । इसलिए ये लोग अपने बेटों को डेली कालेज भेजने के इच्छुक नहीं थे । पोलिटिकल एजेंट के अनुसार

अन्य रियासतों से जिन बालकों को डेली कालेज भेजा जा सकता था उनका विवरण इस प्रकार था:

| | | |
|---|---|---|
| टोडी फतेहपुर | | |
| जागीरदार | एक पुत्र | 5 वर्ष |
| बंका पहाड़ी | | |
| जागीरदार | एक पुत्र | 10 वर्ष |
| बेरी | | |
| जागीरदार | एक पुत्र | 9 वर्ष |
| | एक पुत्र | 7 वर्ष |
| जिगनी | | |
| | अवयस्क जागीरदार | 22 वर्ष |
| अलीपुरा | | |
| जागीरदार | एक पुत्र | 17 वर्ष-यह बालक आगरा कालेज का छात्र था |
| | एक भतीजा | 17 वर्ष |
| ग्वालियर | | |
| जागीरदार | एक पुत्र | 12 वर्ष |
| बाउनी | | |
| | नवाब का एक पुत्र | - |
| गरौली | | |
| | युवा जागीरदार-रायबहादुर चन्द्रचूड़ सिंह | 18 वर्ष |
| नैगांव रिबाई | | |
| | विश्वनाथ सिंह | 18 वर्ष |

लेकिन गरौंली एवं नैगांव रिबाई के यह दोनों जागीरदार डेली कालेज, इन्दौर इसलिए नहीं जा सकते थे क्योंकि इन्हें जागीर के कार्य की देखरेख करनी थी ।

| दतिया | राजाबहादुर | 14 वर्ष |
| --- | --- | --- |
| अजयगढ़<br>महाराजा की बेटी का पुत्र | - | 5 वर्ष |
| छतरपुर<br>सहानया परिवार के 3 बालक | | |

इसके अतिरिक्त अन्य राजपरिवारों एवं जागीरदारों के बालकों, जिन्हें डेली कालेज, इंदौर में शिक्षा हेतु भेजा जा सकता था, के बारे में ठीक ठीक जानकारी प्राप्त नहीं होती है क्योंकि इन रियासतों जैसे समथर, चरखारी, बिजना, बीहट तथा लुगासी आदि से इस संबंध में पोलिटिकल एजेंट को कोई रिपोर्ट प्राप्त नहीं हुई थी ।

जिन जागीरदारों ने अपने बालकों को डेली कालेज में शिक्षा के लिए भेजा था वह भी सम्भवत: शिक्षा के महत्व से अनभिज्ञ थे । अचानक कुछ अभिभावकों द्वारा अपने बेटों को कालेज से बिना सूचना दिए निकाल लिया गया था । अंग्रेजी शासकों को यह बात अच्छी नहीं लगी । वे चाहते थे कि ये छात्र अपनी शिक्षा पूरी करें । इसलिए सन् 1898 में गवर्नर जनरल के प्रथम एजेंट ने बुन्देलखण्ड के पोलिटिकल एजेंट को लिखा कि इन अभिभावकों को इस प्रकार अपने बच्चों को कालेज से निकालना नहीं चाहिए । यदि किन्हीं परिस्थितियों में वह अपने बेटों को आगे नहीं पढ़ाना चाहते तो उन्हें इसकी पूर्व सूचना सरकार को देनी चाहिए । सरकार का विचार था कि इस संबंध में

कम-से-कम एक सत्र का पूर्व नोटिस अवश्य दिया जाना चाहिए । पोलिटिकल एजेंट को ऐसा नोटिस प्राप्त होने पर वह इसे अपनी संस्तुति के साथ गवर्नर जनरल के आदेश के लिए भेजेगा । इसी प्रकार यदि कोई प्रमुख या जागीरदार अपने किसी बालक को शिक्षा के लिए डेली कालेज भेजना चाहे तो उसे इसकी सूचना गवर्नर जनरल के आदेशार्थ तत्काल देनी चाहिए ।[1]

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि क्षेत्र के उच्च वर्ग के लोगों को भी शिक्षा में विशेष रूचि नहीं थी । लेकिन सरकार को इस संबंध में पूरी जानकारी थी कि किस जागीरदार का कौन सा पुत्र किस आयु वर्ग में है और उसे शिक्षा के लिए कहां भेजना चाहिए । इसके लिए गवर्नर जनरल की अनुमति लिए जाने का प्रावधान यह संकेत देता है कि सरकार द्वारा यद्यपि रियासतों के बालकों के लिए शिक्षा की आधारभूत सुविधाएं उपलब्ध कराए जाने का प्रयास किया गया था किन्तु शिक्षा किस प्रकार की हो, आम नागरिकों को एवं जागीरदारों के बालकों की शिक्षा में कितनी भिन्नता हो आदि सभी महत्वपूर्ण निर्णय सरकार द्वारा लिए जाते थे जिसका लाभ अन्ततः ब्रिटिश शासन को ही था।

## शिक्षा संबंधी अन्य प्रयास

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि क्षेत्र में शिक्षा की अधिक प्रगति नहीं

---

1 फाइल संख्या 56/1900

हुई थी । यद्यपि बुन्देलखण्ड की विभिन्न रियासतों के दरबारों एवं ब्रिटिश सरकार द्वारा समय-समय पर शिक्षा के विकास हेतु प्रयास किए गए थे । लेकिन बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक भी इस दिशा में बहुत कुछ किए जाने की आवश्यकता थी ।

बुन्देलखण्ड एजेंसी में प्राइमरी एवं मिडिल स्कूल शिक्षा में सुधार करने के उद्देश्य से पोलिटिकल एजेंट ने 1904 ई. में यूनाइटेड प्रोविन्सेस के डायरेक्टर आफ पब्लिक इन्स्ट्रक्शनस से बुन्देलखण्ड में शिक्षा संबंधी सुधार लागू करने के संबंध में जानकारी प्राप्त करनी चाही । क्षेत्र के स्कूलों में क्या साहित्य पढ़ाया जाए ? फीस एवं अध्यापकों का वेतन कितना होना चाहिए एवं स्कूलों के प्रबन्ध में सुधार के लिए क्या नियम लागू किए जाएं इत्यादि ऐसे महत्वपूर्ण प्रश्न थे जिनके संबंध में यहां अभी तक नियम नहीं बनाए जा सके थे।

पोलिटिकल एजेंट को बुन्देलखण्ड एजेंसी के स्कूलों के लिए प्रशिक्षित प्रधानाध्यापकों की भी आवश्यकता थी । उसका विचार था कि बुन्देलखण्ड क्षेत्र के स्कूलों में प्रधानाध्यापक पद के लिए 10 वर्ष का अनुभव रखने वाले सरकारी कर्मचारी अथवा पेंशन प्राप्त करने वाले सेवानिवृत्त कर्मचारी योग्य होंगे । अभी तक बुन्देलखण्ड में शिक्षा का समुचित विकास नहीं हो सका था । अतः आसपास के क्षेत्रों में शिक्षा की स्थिति को ध्यान में रखते हुए यहां शिक्षा की प्रगति के लिए और प्रयास किए जाने की अत्यन्त आवश्यकता थी । डायरेक्टर आफ पब्लिक इन्स्ट्रक्शनस यूनाइटेड प्रोविन्सेस ने

"भारतीय शिक्षा नीति" के संबंध में भारत सरकार के 11 मार्च, 1904 के दिशा निर्देशों की ओर बुन्देलखण्ड के पोलिटिकल एजेंट का ध्यान आकर्षित किया । इसकी प्रति चार आना मूल्य पर सुपरिंटेंडेंट, सरकारी प्रेस भारत, कलकत्ता से प्राप्त की जा सकती थी। इसके अतिरिक्त उसका सुझाव था कि बुन्देलखण्ड के पोलिटिकल एजेंट को चाहिए कि सरकारी प्रेस, इलाहाबाद से "कोड फार पब्लिक वर्नाकुलर स्कूलस आफ यूनाइटेड प्रोविन्सेस" तथा 'युनाइटेड प्रोविन्सेस के लिए नए शिक्षा कोड' की एक-एक प्रति भी मंगवा लें ताकि बुन्देलखण्ड के विभिन्न स्कूलों में आवश्यकतानुसार इन नियमों को अपनाया जा सके ।[1]

श्री माइकल जो लगभग 20 वर्ष पूर्व राजकुमार कालेज नौगांव में प्रिंसिपल के पद पर कार्य कर चुके थे 1904 ई. में यूनाइटेड प्रोविन्सेस में इंस्पेक्टर आफ स्कूलस के पद पर कार्यरत थे । अतः वह स्वयं भी बुन्देलखण्ड के विभिन्न स्कूलों में शिक्षा की स्थिति से अनभिज्ञ नहीं थे ।

अध्यापकों के वेतन के संबंध में श्री माइकल, इन्सपेक्टर आफ स्कूलस, आगरा ने बुन्देलखण्ड के पोलिटिकल एजेंट को बताया कि यूनाइटेड प्रोविन्सेस में वर्नाकुलर मिडिल स्कूलों के प्रधानाध्यापकों को 15 रूपए से 40 रूपए तक प्रतिमाह वेतन मिलता

---

1 फाइल संख्या 248/1904

था । इसलिए आवश्यक योग्यता रखने वाले यह अध्यापक सम्भवतः अपने घरों से दूर बुन्देलखण्ड के स्कूलों में 20 रूपए प्रतिमाह से कम वेतन पर कार्य करने के लिए सहमत नहीं होंगे । यदि बुन्देलखण्ड एजेंसी के वर्नाकुलर मिडिल स्कूल 20 रूपए प्रतिमाह वेतन का खर्च वहन कर सकें तो यूनाइटेड प्रोविन्सेस से कुछ योग्य अध्यापकों को बुन्देलखण्ड में कार्य करने के लिए भेजा जा सकता था ।[1]

श्री माइकल का सुझाव था कि बुन्देलखण्ड के पोलिटिकल एजेंट को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि क्षेत्र के सभी दरबार शिक्षा की सेन्ट्रल प्रोविन्सेस पद्धति अपनाएं ।[2] अभी तक क्षेत्र में स्थानीय दरबारों द्वारा स्थानीय नियमों के आधार पर यह स्कूल स्वतंत्र रूप से चलाए जाते थे लेकिन इन पर होने वाले खर्च के अनुपात में शिक्षा का विकास नहीं हुआ था । इसीलिए पोलिटिक्ल एजेंट को बुन्देलखण्ड की परिस्थितियों के अनुसार ही शिक्षा पद्धति लागू करना चाहिए थी ।[3]

प्राइमरी स्कूलों तथा एंग्लो-वर्नाकुलर मिडिल स्कूलों के प्रबन्ध के लिए सेन्ट्रल प्रोविन्सेस कोड अपनाने का सुझाव भी दिया गया । इंस्पेक्टर आफ स्कूलस, आगरा का

---

1 फाइल संख्या 248/1904-इंस्पेक्टर आफ स्कूलस आगरा का बुन्देलखण्ड के पोलिटिकल एजेंट को पत्र दिनांक 13 अगस्त 1904

2 फाइल संख्या 248/1904-पत्र संख्या 2662 दिनांक 6 अगस्त 1904

3 -वही-

विचार था कि यह कोड बुन्देलखण्ड की परिस्थितियों के सर्वथा उपयुक्त था । बुन्देलखण्ड के पोलिटिकल एजेंट द्वारा इन स्कूलों के लिए प्रशिक्षित अध्यापक सेन्ट्रल इंडिया से नियुक्त किए जाने की योजना के कारण इस पद्धति से बुन्देलखण्ड में शिक्षा को और अधिक लाभ होने की आशा थी ।

श्री माइकल का विचार था कि यदि पोलिटिकल एजेंट बुन्देलखण्ड में सेंट्रल इंडिया शिक्षा पद्धति लागू करने की योजना से सहमत हो तो स्कूलों में क्या सहित्य पढ़ाया जाए इसके बारे में आसानी से निर्णय लिया जा सकता था । क्योंकि इस संबंध में सेंट्रल इंडिया एजुकेशनल मैनुअल में दिशा-निर्देश उपलब्ध थे ।[1]

प्राइमरी स्कूल के अध्यापकों को अपने क्षेत्र में कम से कम 10 रूपए प्रतिमाह एवं उनके अनुभव के आधार पर 10 रूपए से 25 रूपए प्रतिमाह तक वेतन मिलता था। सम्भवतः यदि इन्हें अतिरिक्त 5 रूपए वेतन दिया जाए तो वह आसानी से बुन्देलखण्ड जाकर नौकरी करने के लिए सहमत हो सकते थे । एंग्लो वर्नाकुलर मिडिल स्कूलों में अध्यापकों की आवश्यक योग्यता, वेतन इत्यादि के बारे में सेंट्रल प्रोविन्सस के एजूकेशनल मैनुअल तथा मास्टर डायरेक्टरी से अच्छी जानकारी प्राप्त की जा सकती थी ।[2]

---

1 फाइल संख्या 248/1900-पत्र दिनांक 6 अगस्त, 1904

2 -वही-

लेकिन बुन्देलखण्ड में लागू की जाने वाली शिक्षा पद्धति की सफलता के लिए यह आवश्यक था कि किसी प्रशिक्षित डिप्टी इंस्पेक्टर को पोलिटिकल एजेंट बुन्देलखण्ड के अधीन शिक्षा की प्रगति की देखरेख के लिए नियुक्त किया जाए । इस संबंध में श्री चार्ल्स हिल, डायरेक्टर आफ पब्लिक इन्स्ट्रक्शनस का सुझाव था कि उनके क्षेत्र में एक इंस्न्पेक्टर श्री गनपत लाल चौबे बुन्देलखण्ड के टिहरी राज्य का था और वह बुन्देलखण्ड में शिक्षा के विकास की देखरेख के लिए सर्वथा उपयुक्त था। गनपत लाल चौबे को छतीसगढ़ में एजेंसी इंस्पेक्टर आफ स्कूलस के पद पर 250 रूपए प्रति माह वेतन तथा सरकार की ओर से वेतन का 1/8 भाग पेंशन अंश के रूप में एवं 3 रूपए प्रति दिन यात्रा भत्ता मिलता था । उसके अधीन एक क्लर्क 30 रूपए प्रतिमाह पर एवं एक चपरासी 6 रूपए प्रतिमाह पर कार्यरत था । वेतन के अतिरिक्त उसे एक नौकर रखने की एवं कुछ अन्य सुविधाएं भी प्राप्त थीं । इस प्रकार उस पर कुल खर्च लगभग 5550 रूपए प्रतिवर्ष था । अत: यदि बुन्देलखण्ड में कार्य करने के लिए उसे प्रतिमाह 50 रूपए अधिक वेतन दिया जाता तो वह प्रसन्नता से बुन्देलखण्ड में शिक्षा की देखरेख का कार्य कर सकता था ।[1] लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि वह स्वयं शीघ्र बुन्देलखण्ड जाने को उत्सुक था इसलिए छतीसगढ़ से प्राप्त वेतन एवं सुविधाओं से अधिक वेतन प्राप्त न होने पर भी वह पोलिटिकल एजेंट बुन्देलखण्ड के अधीन एजेंसी इंस्पेक्टर आफ

---

1 फाइल संख्या 248/1904-पत्र दिनांक 25 अक्तूबर, 1904

स्कूल बुन्देलखण्ड के पद पर कार्य करने के लिए सहमत हो गया ।[1]

इस प्रकार बुन्देलखण्ड में एजेंसी इंस्पेक्टर आफ स्कूल की नियुक्ति किए जाने की योजना बनाई गई । लेकिन बुन्देलखण्ड की बहुत सी रियासतें इस योजना के पक्ष में नहीं थीं । उदाहरण के लिए बाउनी राज्य यद्यपि एजेंसी इंस्पेक्टर आफ स्कूलस की नियुक्ति की योजना से सहमत था किन्तु राज्य का विचार था कि इस नियुक्ति पर होने वाले खर्च को राज्यों के बीच विभाजित करने पर पुनर्विचार किया जाना चाहिए । छतरपुर राज्य इस योजना से सहमत था । गरौली राज्य ने पोलिटिकल एजेंट को सूचित किया कि इस राज्य में कोई भी स्कूल नहीं था अतः इसे इस योजना से अलग रखा जाना चाहिए था । दतिया बुन्देलखण्ड में एजेंसी इंस्पेक्टर आफ स्कूलस की नियुक्ति से सहमत नहीं था क्योंकि राज्य दरबार का विचार था कि इस राज्य द्वारा पहले से ही अच्छे वेतन पर अध्यापकों की नियुक्ति की गई थी । अतः राज्य को शिक्षा की देखरेख की आवश्यकता नहीं थी । अजयगढ़ राज्य का विचार था कि बुन्देलखण्ड में एजेंसी इंस्पेक्टर की नियुक्ति क्षेत्र के लिए अवश्य ही लाभप्रद हो सकती थी किन्तु दरबार पर ऋण का अधिक बोझ होने के कारण वह इस योजना में भागीदार होने में असमर्थ था । सरीला रियासत ने इस प्रस्ताव के लिए अपनी सहमति दे दी जबकि बिजावर दरबार इस नियुक्ति को केवल एक वर्ष तक किए जाने के पक्ष मे था क्योंकि दरबार के समक्ष

---

1 फाइल संख्या 248/1904-पत्र दिनांक 19 सितम्बर, 1904

शिक्षा से अधिक महत्वपूर्ण कई अन्य समस्याएं थीं और वह कुछ समय पूर्व ही अपने ऋणों से मुक्त हुआ था । चरखारी दरबार के अनुसार एजेंसी इंस्पेक्टर की नियुक्ति की कोई आवश्यकता नहीं थी क्योंकि इससे राज्यों को अतिरिक्त खर्च वहन करना पड़ेगा। ओरछा दरबार के अनुसार इस राज्य में पहले से ही एक इंस्पेक्टर आफ स्कूलस का पद था इसलिए यह राज्य इस योजना से अलग रहना चाहता था । इसी प्रकार समथर दरबार भी स्थानीय प्रबन्ध सन्तोषजनक मानकर योजना से सहमत नहीं था । जिगनी रियासत अधिक ऋण के कारण एजेंसी इंस्पेक्टर की नियुक्ति नहीं चाहती थी जबकि बीहट ने इस प्रस्ताव के लिए सहमति दे दी थी । पन्ना राज्य को भी इस नियुक्ति पर कोई आपत्ति न थी ।[1]

इस प्रकार बुन्देलखण्ड की अनेक रियासतों को क्षेत्र में शिक्षा के विकास के लिए सरकार द्वारा क्षेत्र में एजेंसी इंस्पेक्टर आफ स्कूलस की नियुक्ति में कोई रूचि नहीं थी। सम्भवतः उनके लिए क्षेत्र में शिक्षा के विकास का कार्य अधिक महत्वपूर्ण नहीं था, इसीलिए वे सरकार के प्रस्ताव से सहमत नहीं थे । लेकिन ब्रिटिश सरकार द्वारा स्थानीय दरबारों की रूचि पर अधिक ध्यान नहीं दिया गया और इन राज्य को यह स्पष्ट कर दिया गया कि यदि वे अपने-अपने क्षेत्र में शिक्षा का उचित विकास करना चाहते थे तो वे बुन्देलखण्ड में एजेंसी इंस्पेक्टर आफ स्कूल की नियुक्ति की योजना का लाभ उठा

---

1 फाइल संख्या 248/1904-रिपोर्ट 17 फरवरी, 1905

सकते थे अन्यथा इस योजना में भागीदारी आवश्यक नहीं थी । इसे इच्छानुसार अपनाया जा सकता था ।[1]

सरकार के इस रूख से स्पष्ट था कि वह अपने निर्णयों के लिए स्थानीय दरबारों पर निर्भर नहीं थी । यद्यपि इन दरबारों से सहयोग की अपेक्षा की जाती थी लेकिन समुचित सहयोग प्राप्त न होने की दशा में भी सरकार का उद्देश्य अपनी योजना को कार्यान्वित करना था । दूसरी ओर राजदरबारों की समस्या यह थी कि वह न चाहते हुए भी ब्रिटिश सरकार से सहयोग करने के लिए मजबूर थे क्योंकि वास्तव में उनका अस्तित्व ब्रिटिश सरकार के साथ मिल जुल कर चलने में ही बना रह सकता था । इसीलिए विभिन्न रियासतों द्वारा नौगांव कालेज के लिए अपनी सामर्थ्य के अनुसार सहायता दी गई थी एवं समय-समय पर ब्रिटिश अधिकारियों द्वारा दिए गए सुझावों को भी अधिकांश दरबारों पर अपनाया गया था लेकिन स्वयं की रूचि न होने के कारण एवं आम लोगों में शिक्षा के प्रति जागरूकता न होने के कारण क्षेत्र में शिक्षा का अधिक विकास नहीं हो सका था ।

---

1 फाइल संख्या 248/1904-एजेंट गवर्नर जनरल का पोलिटिकल एजेंट को पत्र

------------

## अध्याय चतुर्थ

## अस्पतालों एवं चिकित्सालयों की स्थापना एवं प्रबन्ध

- नौगांव का सिविल अस्पताल
- मातृ एवं शिशु कल्याण के कार्य
- प्लेग की महामारी रोकने के प्रयास
- पन्ना राज्य में डिस्पेंसरी
- नदीगांव में डिस्पेंसरी
- दतिया में महिला अस्पताल
- मलेहरा में साप्ताहिक डिस्पेंसरी
- हरपालपुर में डिस्पेंसरी
- बघेलखंड एजेंसी सर्जन के पद का बुन्देलखण्ड एजेंसी सर्जन के पद में विलय

## अस्पतालों एवं चिकित्सालयों की स्थापना एवं प्रबन्ध

शिक्षा के पश्चात् किसी क्षेत्र की उन्नति के लिए आवश्यक एक अन्य महत्वपूर्ण पहलू वहां के लोगों को उपलब्ध मूलभूत चिकित्सा सुविधाएं होती हैं । चिकित्सा के उचित साधन जैसे अस्पताल, डिस्पेंसरी, डाक्टर, नर्स, दवाइयां, उपकरण इत्यादि मानव जीवन से जुड़ी वे आवश्यकताएं हैं जिनकी पर्याप्त उपलब्धि निश्चय ही स्वस्थ जीवन की दिशा में एक महत्वपूर्ण प्रयास कहा जा सकता है । स्वस्थ जीवन स्वस्थ समाज का संकेत देता है एवं स्वस्थ समाज क्षेत्र की प्रगति का सूचक है ।

बुन्देलखण्ड के आर्थिक एवं सामाजिक पिछड़ेपन का एक मुख्य कारण सम्भवत: इस क्षेत्र के लोगों में शिक्षा के प्रति अरूचि थी । चिकित्सा जो सामाजिक प्रगति का एक अन्य महत्वपूर्ण सूचक है इसके विकास के लिए बुन्देलखण्ड में ब्रिटिश सरकार द्वारा क्या-क्या कार्य किए गए ? स्थानीय शासकों द्वारा आम जनता के लिए क्या चिकित्सा सुविधाएं उपलब्ध कराई गईं ? इसके बारे में जानने का प्रयास हमने इस अध्याय में किया है ।

**नौगांव का सिविल अस्पताल :**

1864 में बुन्देलखण्ड के पोलिटिकल एजेंट, यहां के कमांडिंग आफिसर और चिकित्सा अधिकारियों द्वारा नौगांव में एक सिविल अस्पताल खोलने की आवश्यकता अनुभव की गई । इस आशय का एक प्रस्ताव भी भारत सरकार को भेजा गया लेकिन क्षेत्र के अन्य राज्यों द्वारा इस अस्पताल के लिए अधिक रूचि न लेने के कारण सरकार द्वारा

इस अस्पताल के प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया गया । इसके पश्चात सन् 1870 में यहां कैन्टूनमेंट के खर्च पर एक अस्पताल बनाने की योजना को सरकार द्वारा स्वीकृत किया गया ।[1] अस्पताल की यह बिल्डिंग 21 जनवरी, 1871 को तैयार हो गई। प्रारम्भ में इसे चैरिटेबल डिस्पेंसरी का नाम दिया गया ।

सन् 1871 में इस डिस्पेंसरी के लिए भारत सरकार द्वारा 46 रूपए प्रतिमाह की सहायता दी जाने लगी । सन् 1877 में स्थानीय सरकार द्वारा इस डिस्पेंसरी के लिए लगभग 200 रूपए प्रदान किए गए और 1889 में यह राशि बढ़ाकर 400 रूपए कर दी गई ।[2] इसके अतिरिक्त इस डिस्पेंसरी के लिए कैन्टूनमेंट फंड से प्रतिमाह कुछ आर्थिक सहायता दी जाती थी । क्षेत्र के कुछ सैनिक अधिकारियों द्वारा भी इस डिस्पेंसरी के खर्च के लिए कुछ चन्दा दिया जाता था । प्रारम्भ में इस डिस्पेंसरी के लिए निम्नलिखित कर्मचारियों की नियुक्ति का प्रस्ताव था[3] :-

| | | वेतन प्रतिमाह (प्रस्तावित) (रू.) |
|---|---|---|
| 1 | स्थानीय डाक्टर | 40 |
| 1 | कम्पाउंडर | 6 |

---

1 फाइल संख्या 163/1942

2 -वही-

3 फाइल संख्या 21/1871

| | | |
|---|---|---|
| 1 | खाना पकाने वाला | 5 |
| 1 | भिश्ती | 5 |
| 1 | हरकारा | 5 |
| 1 | सफाई कर्मचारी | 5 |
| | कुल | 66 रूपए |

इस प्रकार डिस्पेंसरी के कर्मचारियों को प्रतिमाह कुल 66 रूपए वेतन देने का प्रस्ताव था । वेतन के अतिरिक्त दवाइयां, भोजन एवं अन्य खर्चों के अन्तर्गत प्रारम्भ में प्रस्तावित व्यय इस प्रकार था :

| | |
|---|---|
| दवाइयां | 20 रूपए |
| भोजन | 20 रूपए |
| अन्य खर्च | 5 रूपए |

अत: वेतन एवं अन्य प्रस्तावित खर्च मिलाकर प्रतिमाह लगभग 111 रूपए का खर्च था । डिस्पेंसरी शुरू करने के लिए इस न्यूनतम धन की आवश्यकता थी जिसे निम्न स्रोतों से पूरा किए जाने का प्रस्ताव था :-

| | प्रतिमाह (रू.) | वार्षिक (रू.) |
|---|---|---|
| इम्पीरियल राजस्व से | 46 | 552 |

| | | |
|---|---|---|
| कैन्टूनमेंट फन्ड से | 35 | 420 |
| दान स्वरूप प्राप्त राशि | 30 | 360 |
| कुल | रूपए 111 | रूपए 1332 |

उपरोक्त योजना के अनुसार डिस्पेंसरी में कर्मचारियों की नियुक्ति कर ली गई । कमांडर-इन-चीफ द्वारा कैन्टूनमेंट फन्ड से 35 रूपए प्रतिमाह का अनुदान (Grant) स्वीकार कर लिया गया ।[1] नौगांव के नागरिकों द्वारा डिस्पेंसरी के लिए पर्याप्त चन्दा भी दिया जाने लगा और इस प्रकार नौगांव क्षेत्र में चैरिटेबल डिस्पेंसरी ने कार्य करना प्रारम्भ कर दिया ।

भारत सरकार से डिस्पेंसरी के लिए इम्पीरियल राजस्व में से 46 रूपए प्रतिमाह के अनुदान की मांग इसलिए की गई थी कि डिस्पेंसरी के डाक्टर को 40 रूपए प्रतिमाह एवं कम्पाउंडर को 6 रूपए प्रतिमाह वेतन देने का प्रस्ताव था । आसपास के उत्तर पश्चिम प्रोविन्सेस में द्वितीय श्रेणी की डिस्पेंसरियों में नियुक्त किए जाने वाले स्थानीय डाक्टर को 40 रूपए प्रतिमाह और कम्पाउंडर को 6 रूपए प्रतिमाह इस शर्त पर दिए जाते थे कि शेष खर्च स्थानीय स्रोतों से एकत्र किया जाएगा । इसीलिए एजेंट गवर्नर जनरल द्वारा नौगांव डिस्पेंसरी के लिए भी इस वेतन पर एक डाक्टर एवं एक कम्पाउंडर की नियुक्ति

1 फाइल संख्या 21/1871

स्वीकृत करली गई ।1 डिस्पेंसरी के लिए डाक्टर नियुक्त करने की स्वीकृति मिल जाने पर कैन्टूनमेंट कमेटी ने डिप्टी इंस्पेक्टर जनरल आफ हास्पिटलस, सागौर से शीघ्र-से-शीघ्र इस डिस्पेंसरी के लिए 40 रूपए प्रतिमाह के वेतन पर एक अच्छे डाक्टर को भेजने का अनुरोध किया । डिप्टी इंस्पेक्टर द्वारा श्री गंगा सहाय को, जो तृतीय श्रेणी अस्पताल सहायक थे, इस डिस्पेंसरी में डाक्टर के पद पर भेजा गया । वे अंग्रेजी में आवश्यक योग्यता उत्तीर्ण नहीं थे इसीलिए तृतीय श्रेणी हास्पिटल अस्सिटेंट थे । श्री गंगा सहाय इससे पूर्व कुछ समय तक बैतूल (Baitool) डिस्पेंसरी में 35रूपए प्रतिमाह के वेतन पर इन्चार्ज के पद पर कार्य कर चुके थे ।2 श्री गंगा सहाय की डिस्पेंसरी में नियुक्ति होने पर उन्हें दिए जाने वाले वेतन के संबंध में एक समस्या यह उत्पन्न हो गई कि लेखा विभाग के अनुसार उन्हें केवल 20 रूपए प्रतिमाह वेतन दिया जाना चाहिए था क्योंकि एक तृतीय श्रेणी अनुतीर्ण अस्पताल सहायक का वेतन नियमानुसार 20 रूपए प्रतिमाह था और श्री गंगा सहाय डिस्पेंसरी में डाक्टर के पद पर नियुक्त होने के समय तक तृतीय श्रेणी एवं अंग्रेजी में अनुतीर्ण अस्पताल सहायक थे । इस प्रकार डाक्टर के लिए 20 रूपए प्रतिमाह वेतन की संस्तुति करने के साथ ही लेखाकार के अनुसार इम्पीरियल राजस्व फन्ड में 46 रूपए की अनुदान राशि स्वीकृत न करके केवल 26 रूपए प्रतिमाह की दर से अनुदान स्वीकृत किया जाना चाहिए था क्योंकि

---

1 फाइल संख्या 21/1871

2 -वही-

इस फंड का उपयोग केवल डाक्टर एवं कम्पाउंडर के वेतन के लिए किया जा सकता था ।[1]

डिस्पेंसरी के डाक्टर को 40 रूपए प्रतिमाह वेतन दिए जाने के पक्ष में कैन्टूनमेंट कमेटी का कहना था कि नौगांव डिस्पेंसरी में कार्यभार ग्रहण करने से पूर्व बैतूल डिस्पेंसरी में इसी डाक्टर को 35 रूपए प्रतिमाह वेतन मिलता था जिससे यह स्पष्ट था कि सैन्ट्रल प्रोविन्सेस में डिस्पेंसरी डाक्टरों को उनकी श्रेणी के अनुसार वेतन दिया जाना आवश्यक नहीं था । सैन्ट्रल प्रोविन्सस की विभिन्न डिस्पेंसरियों में डाक्टर का वेतन 35 रूपए प्रतिमाह था इसीलिए श्री गंगा सहाय को भी बैतूल डिस्पेंसरी में 35 रूपए प्रतिमाह मिलते थे ।

श्री गंगा सहाय यद्यपि तृतीय श्रेणी के अस्पताल सहायक थे एवं नौगांव डिस्पेंसरी में डाक्टर के पद पर नियुक्त किए गए थे किन्तु नौगांव कैन्टूनमेंट कमेटी के अनुसार वह पद के सर्वथा योग्य थे और उन्हें पहले 40 रूपए वेतन पर नियुक्त करके बाद में कम वेतन देना उचित नहीं था । इसीलिए कैन्टूनमेंट कमेटी ने सरकार से डिस्पेंसरी डाक्टर के वेतन पर पुनर्विचार करके उसे 40 रूपए प्रतिमाह ही दिए जाने का अनुरोध किया । कमेटी का यह सुझाव गवर्नर जनरल द्वारा स्वीकृत कर लिया गया ।[2] नौगांव की यह चैरिटेबल डिस्पेंसरी एजेंसी कार्यालय के एक छोटे से कमरे में शुरू की गई थी । बाद में इसे नौगांव

---

1 फाइल संख्या 21/1871

2 -वही-

सिविल अस्पताल में मिला दिया गया । अस्पताल के प्रबन्ध के लिए एक कमेटी का गठन किया गया था ।

प्रारम्भ में इस डिस्पेंसरी की दशा अच्छी नहीं थी,सन् 1896 में इसके रखरखाव पर लगभग 2052 रूपए खर्च हुए और चूंकि इसकी बिल्डिंग की दशा जर्जर हो चुकी थी इसलिए इसे गिरा दिया गया ।[1]

डिस्पेंसरी के खर्च के लिए कैन्टूनमेंट फंड से 1200 रूपए प्रति वर्ष की दर से उन व्यक्तियों के उपचार पर खर्च के लिए दिए गए जिनका उपचार सामान्यतः सैनिक अस्पताल में होना चाहिए था ।[2]

नौगांव अस्पताल आर्थिक दृष्टि से सदैव घाटे की स्थिति में ही रहता था इसलिए अस्पताल को खर्च चलाने के लिए यूरोपीय अधिकारियों एवं बहुत से दरबार प्रमुखों द्वारा दिए गए दान पर निर्भर रहना पड़ता था । अतः कैन्टूनमेंट कमेटी द्वारा सन् 1897 में अस्पताल के संबंध में यह सुझाव दिया गया कि एजेंसी डिस्पेंसरी एवं सिविल अस्पताल को मिलाकर एक कर दिया जाना चाहिए ताकि खर्च में कमी की जा सके । यह भी सुझाव दिया गया कि अस्पताल फंड को Excluded Local Fund की तरह समझा जाए ताकि बजट तैयार किया जा सके । नौगांव अस्पताल की एक बड़ी समस्या यह थी कि इस

---

1 फाइल संख्या 163/1942

2 -वही-

अस्पताल में इलाज के लिए विभिन्न राज्यों से लोग आते थे लेकिन इनका इलाज करने के बदले में अस्पताल को कुछ भी प्राप्त नहीं होता था इसीलिए सरकार द्वारा इस बात की स्वीकृति दे दी गई कि अस्पताल के लिए रियासतों से चन्दा लिया जाए । वर्ष 1897 तक अस्पताल की बिल्डिंग की दशा बिगड़ चुकी थी और इसे तुरन्त मरम्मत करने की आवश्यकता थी । इसके अतिरिक्त अस्पताल में एजेंसी पुलिस के लिए एक अलग वार्ड की आवश्यकता भी अनुभव की जाने लगी ।[1]

सन् 1901 में सरकार ने देशी राज्यों के चिकित्सा प्रबन्धों को सुधारने की ओर ध्यान दिया । सरकार के इसी प्रयास के फलस्वरूप क्षेत्र में एक एजेंसी सर्जन की नियुक्ति की गई। इस समय अस्पताल के खर्च के लिए विभिन्न सिविल एजेंसियों द्वारा निम्नलिखित मदों पर होने वाले खर्च वहन किए जाते थे[2] :-

| | रूपए |
|---|---|
| वेतन | 4810 |
| दवाइयां | 1500 |
| अन्य खर्च | 480 |
| कैंटूनमेंट द्वारा उठाया गया खर्च | 135 |

---

1 फाइल संख्या 163/1942

2 -वही-

| | |
|---|---|
| स्थानीय फण्ड | 10 |
| सेना एवं नागरिकों द्वारा स्वेच्छा से दिया गया चन्दा | 35 |
| कुल | 6970 |

1901 में बुन्देलखण्ड क्षेत्र में एजेंसी सर्जन की नियुक्ति हुई । प्रथम एजेंसी सर्जन के अनुसार नौगांव अस्पताल की व्यवस्था में अत्यन्त सुधार की आवश्यकता थी । सन् 1903 में एजेंसी डिस्पेंसरी एवं अस्पताल को मिलाकर गठित संयुक्त अस्पताल को सरकार द्वारा सिविल अस्पताल घोषित कर दिया गया । 1904 में भारत सरकार द्वारा अस्तापल फंड को Excluded Local Fund स्वीकार कर लिया गया और इसे भारत के कोषागार नियंत्रक के नियंत्रण में कर दिया गया । सन् 1904 तक पोलिटिकल एजेंट द्वारा अस्पताल फंड के लिए देशी राज्यों से चन्दे के रूप में धन इकट्ठा किया जाता था । लेकिन कैन्टूनमेंट क्षेत्र की सीमा में स्थित अस्पताल की इस इमारत पर राज्यों का धन खर्च करने से पूर्व सिविल अधिकारियों द्वारा यह गारन्टी मांगी गई कि बाद में कैन्टूनमेंट का इस बिल्डिंग पर अधिकार नहीं माना जाएगा । इसीलिए इस अस्पताल के संबंध में सन् 1904 के प्रारम्भ में एक समझौता किया गया जिसके अनुसार इस अस्पताल पर स्थानीय अधिकारियों का नियंत्रण था । राज्यों से मिलने वाली आर्थिक सहायता के अतिरिक्त स्थानीय सरकार, यहां के नागरिकों एवं इन्दौर के आबकारी फंड से भी इस अस्पताल

के लिए धन प्राप्त होता था । इसी धनराशि से नौगांव के इस सिविल अस्पताल में कई सुधार किए गए ।[1]

सन् 1918 में गवर्नर जनरल के एजेंट द्वारा इस अस्पताल के लिए एक योजना स्वीकृत की गई जिसके अनुसार सिविल अस्पताल के लिए वार्षिक अंशदान के रूप में राज्यों से धन प्राप्त करने का अधिकार पोलिटिकल एजेंट को दे दिया गया ।[2]

सन् 1941 की एक रिपोर्ट के अनुसार ब्रिटिश सरकार द्वारा नौगांव अस्पताल के लिए निम्नलिखित मदों हेतु खर्च किया जाता था[3] :-

| | रूपए |
|---|---|
| दो उप सहायक सर्जन का वेतन | 2650 |
| कम्पाउंडर का वेतन | 700 |
| यात्रा भत्ता | 100 |
| दवाईयां | 1600 |
| अन्य खर्च | 1000 |
| मकान किराया तथा अन्य खर्च | 100 |

---

1 फाइल संख्या 163/1942

2 -वही-

3 -वही-

| | |
|---|---|
| छुट्टी के दौरान वेतन | 600 |
| कुल | 6750 |

अस्पताल के रखरखाव के लिए बुन्देलखण्ड राज्यों द्वारा लगभग 5000 रूपए प्रतिवर्ष दिए जाते थे । अस्पताल द्वारा लगभग 54800 रूपए का निवेश किया गया था। रिपोर्ट के अनुसार सन् 1942 में सरकार द्वारा अस्पताल के लिए अनुदान राशि देना बन्द कर दिया गया था क्योंकि एजेंसी सर्जन के कार्यालय के खर्च का भुगतान केन्द्रीय राजस्व से किया जाने लगा था ।

नौगांव का यह सिविल अस्पताल भारत सरकार द्वारा एक चैरिटेबल अस्पताल के रूप में उन्हीं शर्तों पर स्वीकृत किया गया था जिन के आधार पर यूनाइटेड प्रोविन्सिस के अन्य जिलों में ऐसी डिस्पेंसरियां एवं अस्पताल बनाए गए थे । इनमें से एक मुख्य शर्त के अनुसार डिस्पेंसरियों को बढ़ावा दिए जाने के संबंध में सरकार द्वारा अपनाई गई नीति के अन्तर्गत यह आवश्यक था कि ऐसी प्रत्येक डिस्पेंसरी के लिए स्थानीय लोगों द्वारा प्रभावी मांग की गई हो । इसके लिए या तो स्थानीय नागरिकों द्वारा डिस्पेंसरी की इमारत का निर्माण किया गया हो या उसके निर्माण के लिए विशेष चन्दा करके धन एकत्र किया गया हो या नागरिकों द्वारा लिखित रूप से यह वचन दिया जाना चाहिए कि एक प्रथम श्रेणी डिस्पेंसरी के लिए वे प्रत्येक वर्ष लगभग 840 रूपए की धनराशि चन्दे द्वारा एकत्र करके

उपलब्ध कराएंगे ।[1]

डिस्पेंसरी/अस्पताल खोलने की भारत सरकार की इस शर्त के लिए नौगांव के सैनिक अधिकारियों एवं पोलिटिकल एजेंट ने अपनी स्वीकृति दे दी थी । इसका निर्माण कैन्टूनमेंट फंड की अतिरिक्त आय से किया गया था । कैन्टूनमेंट फंड कमेटी द्वारा इस अस्पताल के खर्च के लिए 35 रूपए प्रतिमाह स्वीकृत किए गए एवं पोलिटिकल एजेंट ने सिविल फंड से प्रतिमाह 10 रूपए अस्पताल के लिए देना स्वीकार कर लिया ।

इसके अतिरिक्त स्थानीय नागरिकों से चंदा/दान प्राप्त करने हेतु एक दान पुस्तिका खोली गई एवं प्रत्येक सैनिक एवं सिविल अधिकारी द्वारा एक रूपया प्रतिमाह का चन्दा अस्पताल के लिए दिया जाना स्वीकृत कर लिया गया । इन अधिकारियों के अतिरिक्त स्थानीय नागरिकों एवं क्षेत्र के अन्य लोगों द्वारा भी अस्पताल के लिए दान दिया जाता था । इस प्रकार जो दान-पुस्तिका शुरू की गई थी सन् 1907 तक भी इसी के अनुसार दान स्वीकार किया जाता था ।[2]

सन् 1896 से कैन्टूनमेंट द्वारा नौगांव अस्पताल के लिए 100 रूपए प्रतिमाह अलग से दिया जाने लगा । यह धनराशि सामान्य संक्रमित मरीजों के इलाज के लिए तथा उन मरीजों के इलाज के लिए दी जाती थी जिन्हें कैन्टूनमेंट अधिकारियों द्वारा अस्पताल में

---

1 फाइल संख्या 4/1907

2 फाइल संख्या 4/1907

भेजा जाता था । लेकिन इस अतिरिक्त सहायता का अस्पताल की आर्थिक स्थिति पर अथवा इसे सिविल फंड से मिलनी वाली आर्थिक सहायता पर कोई अन्तर नहीं पड़ा । अस्पताल के चेरिटेबल फंड को निम्न मदों पर खर्च किया जाता था :-

(i) अस्पताल के रखरखाव संबंधी छोटे खर्च

(ii) गरीब मरीजों के भोजन एवं कपड़े के लिए

(iii) देशी दवाइयों पर

(iv) उन यूरोपीय दवाइयों एवं उपकरणों पर जो सामान्य वार्षिक अनुदान से नहीं खरीदे जा सकते थे

(v) आकस्मिक व्यय

(vi) अन्य व्यय

स्थानीय प्रशासन द्वारा सिविल फंड के रूप में निम्न खर्चे वहन किए जाते थे :-

1. दवाइयां - प्रतिवर्ष 1600/- रूपए

2. चिकित्साधिकारी, अस्पताल सहायक कम्पाउंडर के वेतन एवं अन्य भत्तों पर तथा उनके छोटे-छोटे खर्च

3. फर्नीचर, अन्य खर्चे जैसे स्टेशनरी, डाक खर्च तथा अस्पताल के रखरखाव के अन्य खर्च ।

पॉलिटिकल एजेंट, नौगांव छावनी का स्टेशन आफिसर कमांडिंग, कैन्टूनमेंट मजिस्ट्रेट तथा एजेंसी सर्जन अस्पताल बोर्ड के सदस्य थे । चेरिटेबल फंड का लेखा परीक्षण नियंत्रक द्वारा किया जाता था ।[1]

सन् 1907 की एक रिपोर्ट के अनुसार लगभग 23 स्थानीय नागरिकों द्वारा अस्पताल के लिए नियमित दान दिया जाता था । इसके अतिरिक्त उन सभी नागरिकों द्वारा जो खर्च उठाने में सक्षम थे जब वे अस्पताल में इलाज के लिए जाते थे उस समय दान स्वरूप कुछ-न-कुछ धन अवश्य दे देते थे । इस प्रकार प्रतिमाह अस्पताल को लगभग 30 रूपए से 40 रूपए तक की धन राशि प्राप्त होती थी ।[2]

नौगांव का यह अस्पताल पूर्णतः स्थानीय लोगों के इलाज के लिए था लेकिन नौगांव छावनी के फौजी अस्पताल में गम्भीर रोगी आने पर वहां के डाक्टरों द्वारा इस सिविल अस्पताल से उपकरण इत्यादि उधार ले लिए जाते थे । इस प्रकार निश्चय ही क्षेत्र के विकास में नौगांव अस्पताल का बहुत योगदान रहा ।

नौगांव सिविल अस्पताल में एन्टी रेबिक सेन्टर खोलने के उद्देश्य से सितम्बर, 1932 में एक प्रस्ताव मध्य भारत के मुख्य चिकित्सा अधिकारी द्वारा बम्बई सरकार के

---

1 फाइल संख्या 4/1907

2 फाइल संख्या 4/1907-पत्र संख्या 294/1907

सर्जन जनरल को भेजा गया ।[1] अभी तक कुत्ते एवं अन्य जानवरों के काटने पर मरीजों को इलाज के लिए कसौली जाना पड़ता था । चूंकि नौगांव हरपालपुर स्टेशन से केवल 19 मील की दूरी पर स्थित था और इस मार्ग पर सड़क भी अच्छी थी तथा हरपालपुर बघेलखण्ड एजेंसी का मुख्य केन्द्र था इसलिए यह तय किया गया कि यदि नौगांव सिविल अस्पताल में एन्टी रेबिक सेन्टर खोला जाए तो इसका लाभ इस क्षेत्र की अधिकांश जनता को होगा ।[1] इसके लिए यह भी सुझाव दिया गया कि सहायक सर्जन श्री राव साहब वी.के.फड़के (Rao Sahib V.K.Phadke) को हैंफकिन्स इन्स्टीट्यूट में प्रशिक्षण के लिए भेजा जाए । अस्पताल में वैक्सीन के रख-रखाव के लिए पर्याप्त प्रबन्ध किए जाने का भी सुझाव दिया गया । योजना के अनुसार वैक्सीन बम्बई के विक्टोरिया टर्मिनस स्टेशन से हरपालपुर तक रेल से लाई जाएगी जिसमें लगभग 24 घण्टे का समय लगेगा । हरपालपुर से नौगांव तक सड़क मार्ग से एक घंटा लगने की सम्भावना थी । चूंकि इस क्षेत्र में कई वर्षों से एन्टी रेबिक सेन्टर की आवश्यकता अनुभव की जा रही थी एवं इसकी योजना में सभी पहलुओं पर विचार किया गया था अतः सरकार द्वारा शीघ्र ही नौगांव में एन्टी रेबिक सेन्टर खोलने के लिए स्वीकृति दे दी गई । क्षेत्र के सभी राज्यों एवं रियासतों को 16 जनवरी, 1933 को एजेंसी सर्जन बुन्देलखण्ड द्वारा यह सूचित किया गया कि एन्टी रेबिक इलाज के लिए भारत सरकार द्वारा नौगांव सिविल अस्पताल को मान्यता दे दी गई है अतः

---

1 फाइल संख्या 12/1932

यह राज्य अपने क्षेत्र के रोगियों को इस इलाज के लिए नौगांव सिविल अस्पताल भेज सकते हैं । गरीब रोगियों को इस इलाज के लिए नौगांव आने के लिए वही रेलवे सुविधा दिए जाने की घोषणा भी की गई जो उन्हें कसौली अथवा किसी अन्य केन्द्र पर जाने के लिए प्राप्त थी ।[1]

इस इलाज के लिए प्रत्येक गरीब रोगी को 12रूपए खर्च देना पड़ता था । वे व्यक्ति जो गरीब नहीं थे और साधारण वर्ग के थे उन्हें इस इलाज का खर्च 30 रूपए एवं उच्च श्रेणी के रोगी को इसके लिए 50 रूपए खर्च देना पड़ता था । राज्य सरकारों को यह भी सूचित किया गया कि इस इलाज में 14 दिन लगते थे और नौगांव अस्पताल में इन रोगियों के रहने एवं भोजन की व्यवस्था नहीं थी इसलिए रोगियों को इलाज के लिए आते समय अपने साथ 14 दिन के खर्च की व्यवस्था भी रखनी चाहिए । यदि कोई व्यक्ति कुत्ते के काटने से गम्भीर रूप से घायल हो और उसे अस्पताल में भर्ती किए जाने की आवश्यकता हो तो ऐसे रोगियों को नौगांव सिविल अस्पताल में भर्ती कर लिया जाता था । गरीब रोगी चूंकि अपने इलाज का खर्च 12 रूपए स्वयं नहीं उठा सकते थे इसलिए एजेंसी सर्जन द्वारा राज्य सरकारों से अनुरोध किया गया कि वे ऐसे रोगी का इलाज खर्च 12 रूपए प्रति रोगी उसके साथ अवश्य भेजें अथवा सीधे एजेंसी सर्जन बुन्देलखण्ड को भिजवा दें ।

इस प्रकार 1933 में बुन्देलखण्ड क्षेत्र के नौगांव सिविल अस्पताल में एन्टी रेबिक

---

1 फाइल संख्या 12/1932

सेन्टर प्रारम्भ करके कुत्ते आदि के काटने से पीड़ित रोगियों के इलाज की व्यवस्था की गई। इन रोगियों को इस से बहुत सहायता मिली । अब उन्हें इलाज के लिए क्षेत्र से दूर नहीं जाना पड़ता था और उचित समय पर उन्हें इलाज की सुविधा प्राप्त हो सकती थी ।

इन वर्षों में नौगांव सिविल अस्पताल के कार्य में सराहनीय प्रगति हुई । 28 मार्च 1947 को इंडियन रैड क्रास सोसायटी ने अपनी एक आम सभा में नौगांव सिविल अस्पताल को इस वर्ष 1947में400 रूपए का वार्षिक अनुदान देने का निर्णय लिया ।[1]

**मातृ एवं शिशु कल्याण के कार्य :**

नौगांव में अस्पताल द्वारा प्रदान की जा रही सराहनीय सेवाओं के अतिरिक्त इस क्षेत्र में मातृ एवं शिशु कल्याण के लिए लेडी चेम्सफोर्ड एसोसिएशन की शाखा खोलने की योजना बनाई गई ।[2] लेडी चेम्सफोर्ड द्वारा भारत में मातृ एवं शिशु कल्याण के लिए एक लीग की स्थापना की गई थी जिसे मैटरनिटी एंड चाइल्ड वेलफेयर लीग कहा जाता था । इस समय भारत में शिशु मृत्यु दर अधिक थी एवं बच्चे के जन्म के बाद माता के खराब स्वास्थ्य तथा मृत्यु दर के आंकड़े भी अधिक थे जिसका एक कारण प्रचलित सामाजिक प्रथा थी । लोग डाक्टर के पास जाने की अपेक्षा अप्रशिक्षित दाइयों से प्रसव कराते थे और मां एवं बच्चे के स्वास्थ्य के लिए पूर्णतः उन्हीं पर निर्भर रहते थे । पूरे भारतवर्ष में

---

1 फाइल संख्या 49/1947

2 फाइल संख्या 24/1924

चिकित्सकों का अनुभव था कि उन्हें बच्चे के जन्म के ऐसे अवसरों पर ही बुलाया जाता था जबकि स्त्री की दशा अप्रशिक्षित दाइयों के विभिन्न प्रयोगों के द्वारा बिगड़ चुकी होती थी और उसकी हालत खतरनाक मोड़ पर पहुंच चुकी होती थी । इस प्रकार प्रचलित रीति-रिंवाजों को देखते हुए मातृ एवं शिशु कल्याण के क्षेत्र में बहुत कुछ करने की आवश्यकता थी इसीलिए लेडी चेम्सफोर्ड संस्था द्वारा मां एवं शिशु कल्याण के क्षेत्र में दो प्रमुख कार्यों का प्रयत्न किया गया । प्रथम यह कि लोगों को मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य के संबंध में शिक्षित किया जाए और दूसरे उनको इस संबंध में आवश्यक सहायता उपलब्ध कराई जाए । बुन्देलखण्ड एजेंसी क्षेत्र में भी इस संस्था की शाखा खोलने की योजना बनाई गई । इसकी केन्द्रीय शाखा नौगांव में एवं प्रत्येक राज्य में एक शाखा खोलने की योजना थी । इन सभी शाखाओं द्वारा क्षेत्र में मातृ एवं शिशु कल्याण के लिए कार्य करने का प्रस्ताव था ।

इसी उद्देश्य से नौगांव अस्पताल में शिशु कल्याण केन्द्र की स्थापना की गई । 23 अगस्त, 1931 को एजेंट गवर्नर जनरल द्वारा नौगांव जाकर नौगांव कल्याण केन्द्र की नई इमारत का उद्घाटन किया गया । इस नई बिल्डिंग का निर्माण अजयगढ़ की महारानी से प्राप्त सहायता से किया गया था । एजेंट गवर्नर जनरल ने अपने उद्घाटन भाषण में इस केन्द्र द्वारा किए जा रहे कार्यों की अत्याधिक प्रशंसा की ।

सन् 1936 में नौगांव के किचनेर कालेज (Kitchner College) का क्षेत्र छोड़कर शेष कैन्टूनमैंट क्षेत्र को छतरपुर राज्य में सम्मिलित कर लिया गया इस प्रकार वे लोग जो

पहले ब्रिटिश भारत कैन्टूनमेंट के निवासी थे अब छतरपुर राज्य की प्रजा हो गए थे ।[1] एजेंसी का सिविल क्षेत्र अब भी अलग था और इसे छतरपुर राज्य में सम्मिलित नहीं किया गया था । नौगांव के शिशु कल्याण केन्द्र का कार्य इसी छोटे से सिविल क्षेत्र में चलाया जा रहा था लेकिन पहले अधिकांश कार्य पुराने कैन्टूनमेंट बाजार क्षेत्र में होता था और यह क्षेत्र अब छतरपुर राज्य के अन्तर्गत आ चुका था । नौगांव के मातृ एवं शिशु कल्याण केन्द्र के लिए रैडक्रास सोसायटी द्वारा 800 रूपए वार्षिक की सहायता दी जाती थी लेकिन सन् 1936 में यह प्रश्न उठा कि क्या रैडक्रास सोसायटी भविष्य में भी इस केन्द्र को इसी प्रकार आर्थिक सहायता देती रहेगी क्योंकि इस केन्द्र का कार्य अब जिन लोगों के लिए किया जाता था वे परिस्थितिवश अब ब्रिटिश भारत के नागरिक न होकर छतरपुर राज्य के नागरिक बन चुके थे । इसीलिए केन्द्र के सचिव ने इंडियन रैडक्रास सोसायटी, इन्दौर से यह जानना चाहा[2] कि ऐसी परिस्थितियों में क्या रैडक्रास सोसायटी इस केन्द्र को वार्षिक सहायता देना जारी रखेगी ? रैडक्रास सोसायटी को यह भी अवगत कराया गया कि यदि सोसायटी यह सहायता बन्द करना चाहे तो यह कल्याण केन्द्र भी बन्द करना पड़ेगा क्योकि इसका रखरखाव बिना इस आर्थिक सहायता के सम्भव नहीं था । ऐसी स्थिति में शिशु कल्याण केन्द्र की आम सभा में यह निर्णय लिया गया कि यदि केन्द्र को बन्द करना पड़े तो कम-से-कम एक प्रशिक्षित दाई (Midwife) इस कार्य के लिए रखी जानी चाहिए और

---

1 फाइल संख्या 24/1924
2 वही

इसीलिए रैडक्रास सोसायटी से अनुरोध किया गया कि वे कम-से-कम इस दाई का खर्च उठा ले ।[1] इस दाई से यद्यपि सिविल क्षेत्र में भी कार्य करने की अपेक्षा की गई थी किन्तु अब इसका कार्य छतरपुर राज्य की देख-रेख में किया जाना था । अब एजेंसी सर्जन इसके कार्य के लिए उत्तरदायी नहीं था । लेकिन इसी बीच इस केन्द्र को कुछ समय के लिए बन्द कर दिया गया ।[2]

नौगांव का मातृ एवं शिशु कल्याण केन्द्र अब छतरपुर राज्य के अधिकार क्षेत्र में आ गया था । सन् 1937 में छतरपुर राज्य के दीवान राय बहादुर राम मिश्रा ने पोलिटिकल एजेंट बुन्देलखण्ड से अनुरोध किया कि इस क्षेत्र के छतरपुर में आ जाने के पूर्व आम जनता द्वारा इस केन्द्र के लिए लगभग 300 रूपए की धनराशि उपलब्ध कराई जाती थी । अब भी जनता द्वारा इतना ही धन दिए जाने का आश्वासन दिया गया था । अतः पोलिटिकल एजेंट रैडक्रास सोसायटी के दिल्ली स्थित मुख्य कार्यालय से यह अनुरोध करें कि इस सोसायटी द्वारा इस केन्द्र को दी जानी वाली सहायता पुनः शुरू की जाए ताकि केन्द्र को शीघ्र शुरू किया जा सके । छतरपुर राज्य द्वारा इस केन्द्र के लिए एक प्रशिक्षित नर्स की नियुक्ति भी कर ली गई थी लेकिन रैडक्रास सोसायटी द्वारा उपलब्ध कराई जाने वाली

---

1 फाइल संख्या 24/1924-पत्र संख्या 751/14 मार्च, 1936

2 -वही-

आर्थिक सहायता के बिना केन्द्र का कार्य चलाना सम्भव नहीं था ।[1]

23 मार्च 1938 को रैडक्रास सोसायटी ने यह निर्णय लिया कि इस शिशु कल्याण केन्द्र को वर्ष 1938 के लिए 500 रूपए का अनुदान दिया जाएगा । लेकिन यह सहायता इस शर्त पर दी गई थी कि कल्याण केन्द्र की इस नई छतरपुर शाखा को पहले की नौगांव शाखा की भांति ही कार्य करना होगा ।[2]

इस प्रकार नौगांव में मातृ एवं शिशु कल्याण केन्द्र की स्थापना करके ब्रिटिश सरकार द्वारा इस दिशा में सराहनीय कार्य किया गया था । बाद में यह केन्द्र छतरपुर दरबार के नियंत्रण में आ गया था लेकिन छतरपुर दरबार द्वारा भी इस केन्द्र का कार्य जारी रखा गया । इसके अतिरिक्त समय-समय पर शिशु सप्ताह का आयोजन भी किया जाता था जिनका उद्देश्य शिशु स्वास्थ्य के प्रति जनता में जागरूकता उत्पन्न करना था ।

25 मार्च 1927 को शिशु सप्ताह काउंसिल की मीटिंग में नौगांव शिशु कल्याण केन्द्र के कार्य की देखभाल के लिए एक कमेटी नियुक्त करने का निर्णय लिया गया जिसमें एजेंसी सर्जन, सिविल अस्पताल के दो सब असिस्टेंट सर्जन तथा एक्जीक्यूटिव आफिसर सदस्य रखे गए । इस कमेटी द्वारा 10 नवम्बर 1927 एवं 22 दिसम्बर 1927 को मीटिंग करके निर्णय लिया गया कि 'नौगांव शिशु कल्याण एसोसिएशन' नाम से एक एसोसिएशन

---

1 फाइल संख्या 24/1924-पत्र सं.8724/सी-22/37 दिनांक 15 दिसंबर, 1937

2 फाइल संख्या 24/1924-पत्र सं.2259-सी/1938 दिनांक 13 अप्रैल, 1938

की स्थापना की जाए और इसके अधिक-से-अधिक सदस्य बनाए जाएं । इस एसोसिएशन के सदस्य बनने की निम्नलिखित शर्तें रखी गईं :

(i) वे व्यक्ति जो प्रतिमाह 2 रूपए या अधिक देंगे इस एसोसिएशन के पैट्रन (patron) होंगे ।

(ii) वे व्यक्ति जो 1 रूपया या अधिक प्रतिमाह देंगे वे इसके सदस्य (member) होंगे ।

(iii) यदि कोई व्यक्ति 8 रूपए प्रतिमाह देगा उसे इसका एसोसिएट (Associate) कहा जाएगा और 4 रूपए प्रतिमाह देने वाला इस एसोसिएशन का सबस्क्राइबर (Subscriber) होगा ।

नौगांव शिशु कल्याण एसोसिएशन के कार्य की देखरेख के लिए पोलिटिकल एजेंट की अध्यक्षता में एक सुपरवाइजरी कमेटी बनाने का निर्णय भी लिया गया । वे सभी व्यक्ति जो इस संस्था को 1 रूपए या अधिक धनराशि देंगे इस कमेटी के सदस्य होंगे । एजेंसी सर्जन को इस कमेटी का सचिव नियुक्त किया गया । इस कमेटी के अतिरिक्त राय साहब मुंशी राम नारायण की अध्यक्षता में एक मैनेजिंग कमेटी भी बनाई गई । इस कमेटी का मुख्य कार्य नौगांव के शिशु कल्याण केन्द्र के खर्च इत्यादि का लेखा-जोखा रखना था । इस एसोसिएशन के लिए अनुदान जनवरी 1928 से एकत्र किए जाने का निर्णय भी लिया

गया ।[1]

हर वर्ष शिशु सप्ताह कमेटी नौगांव द्वारा शिशु सप्ताह मनाए जाते थे । सन् 1929 में ऐसा ही शिशु सप्ताह छठी बार 4 से 7 मार्च के बीच मनाया गया । यह सप्ताह बहुत सफल रहा ।[2] सप्ताह के प्रथम दिन श्रीमती फिशर द्वारा कार्यक्रम का उद्घाटन किया गया। इस अवसर पर बड़ी संख्या में आदमी, औरतें एवं बच्चे कार्यक्रम के लिए जमा हुए । कार्यक्रम के अनुसार दूसरे दिन सुबह आम जनता एवं स्कूली छात्रों को शिशु कल्याण सम्बन्धी भाषण दिए गए। दोपहर बाद का कार्यक्रम पर्दानशीं औरतों के लिए रखा गया था। इसमें बड़ी संख्या में औरतों ने भाग लिया । तीसरे एवं चौथे दिन शिशुओं के स्वास्थ्य की जांच की गई एवं 155 स्वस्थ बच्चों के लिए लगभग 310 रूपए के पुरस्कार वितरित किए गए। इस शिशु सप्ताह में सिनेमा शो का भी आयोजन किया गया । इन शिशु सप्ताहों का मुख्य उद्देश्य शिशुओं के स्वास्थ्य के प्रति लोगों में जागरूकता पैदा करना था । इस कार्यक्रम में दिए गए भाषणों में शिशु मृत्यु दर के मुख्य कारणों जैसे बाल विवाह, पर्दा प्रथा, सफाई की कमी इत्यादि पर चर्चा की गई। लोगों को इस बात का विश्वास दिलाया गया कि अंधविश्वास के साथ किसी भी रीति-रिवाज को मानना उस व्यक्ति की तरह आचरण करना है जिसने चलने से पहले अपनी आंखें बन्द कर ली हों । जनता को यह भी बताया

---

1 फाइल संख्या 24/1924

2 फाइल संख्या 18/1930

गया कि शिशु मृत्यु दर को कम करने के लिए यह आवश्यक था कि कुछ ऐसे रीति-रिवाजों को छोड़ दिया जाए जो शिशु स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हैं । लोगों को यह बताया गया कि बाल-विवाह विशेष रूप से 16 वर्ष की कम आयु की लड़कियों का विवाह कर दिए जाने पर उनकी सन्तान कमजोर पैदा होती है और अक्सर उसकी मृत्यु हो जाती है । पर्दा प्रथा के नुकसान की चर्चा भी की गई । चर्चा में यह बताया गया कि गरीब औरतों को इस प्रथा के कारण छोटे-छोटे कमरों में बन्द रहना पड़ता था जिससे उनका शारीरिक एवं मानसिक विकास नहीं हो पाता इसीलिए उनकी सन्तानों को अधिक बीमारियों का शिकार होना पड़ता है ।

इस शिशु सप्ताह में आम जनता से अपील की गई कि बच्चे के जन्म से जुड़े पुराने रीति-रिवाजों को छोड़कर उन्हें नई चिकित्सा को अपनाना चाहिए । मातृ एवं शिशु कल्याण केन्द्र, नौगांव, जो लगभग चार वर्ष पूर्व स्थापित किया गया था इसके कार्य की सराहना भी गई । इस केन्द्र द्वारा स्थानीय दाइयों को प्रशिक्षित किया गया था । इनका कार्य एक नर्स की देखरेख में होता था । वर्ष 1928 के आंकड़ों के अनुसार इस केन्द्र में 8457 बच्चों की देखभाल की गई थी जिसमें उन्हें प्रतिदिन दूध उपलब्ध कराया जाता था उनका साप्ताहिक वजन किया जाता था एवं उनकी छोटी-छोटी बीमारियों का इलाज भी किया गया था ।

इन शिशु सप्ताहों से क्या वास्तव में कुछ लाभ हुआ ? एक रिपोर्ट के अनुसार यह शिशु सप्ताह शो वास्तव में बहुत लाभदायक थे । नौगांव क्षेत्र के आंकड़ों के अनुसार सन्

1925 में 247 में से 49 बच्चों की 1 वर्ष से कम आयु में मृत्यु हो गई थी । सन् 1926 में 275 नवजात बच्चों में से 43 की मृत्यु 1 वर्ष से कम आयु में हो गई थी । सन् 1927 में 310 बच्चों में 43 की मृत्यु तथा सन् 1928 में 242 में से 30 की मृत्यु हुई । इस प्रकार शिशु मृत्यु दर 1926 में 19.83% थी, 1927 में 14.73% से कम होकर सन् 1928 में 12.39% रह गई थी । अतः यह विश्वास किया जाने लगा था कि भारत के इस बुन्देलखंड क्षेत्र में बेबी सप्ताह एवं शिशु कल्याण केन्द्र के कार्यों से शिशु मृत्यु दर कम होने लगी थी।[1]

1929 के इस शिशु सप्ताह के लिए धनराशि विभिन्न स्रोतों से एकत्र की गई थी। नौगांव कैन्टूनमेंट फन्ड से इस उद्देश्य के लिए 250 रूपए स्वीकृत किए गए । टीकमगढ़ दरबार द्वारा 25 रूपए की एवं छतरपुर दरबार द्वारा 50 रूपए की आर्थिक सहायता दी गई थी । मातृ एवं शिशु कल्याण से संबंधित साहित्य सामग्री की बिक्री से 3-1-0 रूपए की आय हुई । इस धनराशि से इस शिशु सप्ताह के विभिन्न कार्यक्रम आयोजित किए गए ।[2]

नौगांव सिविल अस्पताल के प्रबन्ध एवं कार्यप्रणाली में समय-समय पर सुधारों की आवश्यकता अनुभव की जाती रही । सन् 1942 में बुन्देलखण्ड में पोलिटिकल एजेंट श्री एच.एम.पोलटन (H.M.Poulton) ने मध्य भारत में रेजीडेंट के सचिव को नौगांव सिविल

---

1 फाइल संख्या 18/1930

2 -वही-

अस्पताल के रखरखाव में सुधार की आवश्यकता से अवगत कराया ।[1] अभी तक अस्पताल का खर्च तीन अलग-अलग स्रोतों से किया जाता था । अस्पताल की इमारत के निर्माण एवं रखरखाव का खर्च दो अलग-अलग संस्थाओं द्वारा किया जाता था । अस्पताल के कुल खर्च पर सरकारी अधिकारियों का नियंत्रण था जबकि अस्पताल को दी जाने वाली आर्थिक सहायता में सरकार द्वारा दिया गया अंश अपेक्षाकृत कम था । यद्यपि इस प्रकार अस्पताल का कार्य चलाने में कोई कठिनाई नहीं थी लेकिन पोलिटिकल एजेंट के अनुसार इन स्थितियों में अस्पताल के लिए कोई दीर्घकालीन योजना बनाना सम्भव नहीं था । इस आर्थिक व्यवस्था के कारण अस्पताल के लिए आवश्यक सुधार करना भी सम्भव नहीं था। अस्तपाल खर्च के लिए विभिन्न राज्य सरकारों द्वारा दी जाने वाली आर्थिक सहायता उनके द्वारा भेजे गए रोगियों के इलाज का खर्च उठाने के लिए भी पर्याप्त नहीं थी । ऐसा कोई प्रावधान नहीं था जिसके अन्तर्गत राज्य सरकारों को उनके रोगियों के इलाज खर्च के अनुपात में आर्थिक सहायता देने के लिए बाध्य किया जा सके । पोलिटिकल एजेंट का विचार था कि नौगांव एजेंसी का अस्तित्व सदैव के लिए नहीं रहेगा इसीलिए इस बात की

---

1 फाइल संख्या 163/1942-पत्र संख्या 2651-सी दिनांक 15 अप्रैल,1942

आवश्यकता थी कि नौगांव अस्पताल के प्रबन्ध के लिए एक को-ओपरेटिव ग्रुप बनाया जाना चाहिए क्योंकि यदि भविष्य में कभी बुन्देलखण्ड पोलिटिकल एजेंसी बन्द कर दी जाए तब नौगांव अस्पताल के संबंध में एक गम्भीर प्रश्न यह उठेगा कि अस्पताल का फन्ड कैसे खर्च किया जाए, क्योंकि वास्तव में इस पर उन राज्यों का अधिकार था जिन्होंने नियमित रूप से अस्पताल फन्ड के लिए योगदान दिया था और इसीलिए नैतिकता के आधार पर इसे इन्हीं राज्यों के रोगियों की भलाई के लिए ही खर्च किया जाना चाहिए । साधारणतः ऐसी स्थिति में अस्पताल का कार्यभार छतरपुर राज्य को इस आशा पर कि वह अस्पताल फन्ड को अस्पताल के रखरखाव पर ही खर्च करेगा, सौंप दिए जाने की सम्भावना थी लेकिन यह सुनिश्चित करना सम्भव नहीं था कि इस धन को किसी और प्रयोजन पर खर्च नहीं किया जाएगा । ऐसी स्थिति में एजेंसी के दूसरे राज्यों को अस्पताल से उतना लाभ मिलने की आशा नहीं की जा सकती थी जितना कि उनके द्वारा दिए गए अनुदान के आधार पर उनका अधिकार बनता था ।[1]

इसलिए यह सुझाव दिया गया कि इस अस्पताल और सम्बन्धित राज्यों के मेडिकल विभागों को एक को-ओपरेटिव ग्रुप का सदस्य बना दिया जाए एवं एजेंसी सर्जन को इस ग्रुप का पदेन चिकित्सा सलाहकार बना दिया जाए और उसकी सहायता के लिए एक कमेटी बनाई जाए जिसमें राज्यों के मेडिकल अधिकारी हों । यह कमेटी

---

1 फाइल संख्या 163/1942

संयुक्त अस्पताल के वित्त संबंधी मामलों पर नियंत्रण रखेगी । इस प्रकार न केवल यह राज्य अपनी जिम्मेदारी अनुभव करेंगे बल्कि इससे यह सुनिश्चित करने में भी सहायता मिलेगी कि भविष्य में प्रत्येक राज्य अस्पताल के खर्च के अपने अंश का भुगतान करेगा । इस योजना के अनुसार प्रत्येक राज्य को गत वर्ष के खर्च के आधार पर आगामी वर्ष के लिए वार्षिक खर्च का भुगतान करना होगा । अभी तक कुछ राज्य अपने हिस्से के खर्च से कुछ अधिक नौगांव अस्पताल के लिए देते थे जबकि कुछ अन्य राज्य अपने हिस्से का खर्च भी वहन नहीं करते थे । इसीलिए इस सुझाव के अनुसार यदि राज्यों को स्वयं एजेंसी सर्जन के परामर्श के अनुसार अस्पताल के वित्तीय मामलों में नियंत्रण का अधिकार होगा तो वे अपने अंशदान का सही भुगतान करेंगे । यदि भविष्य में कभी एजेंसी सर्जन का पद समाप्त कर दिया जाए तब भी जिम्मेदारी बांटने का यह को-ओपरेटिव तरीका अन्य किसी योजना से बेहतर ही सिद्ध होगा । यदि कभी नौगांव सिविल अस्पताल को बन्द कर देना पड़े तब भी उसमें खर्च किया गया धन एवं उसकी अन्य परिसम्पत्तियों इत्यादि का निपटारा करने के लिए सभी संबंधित राज्यों की भागीदारी आवश्यक होगी ।[1]

नौगांव अस्पताल के लिए एजेंसी सर्जन, दो उप सहायक सर्जन तथा दो कम्पाउंडरों का वेतन एवं उनकी छुट्टी के दौरान वेतन तथा एक उप सहायक सर्जन का मकान किराया सरकार द्वारा दिया जाता था । इसके अतिरिक्त सरकार द्वारा अस्पताल बिल्डिंग की

---

1 फाइल संख्या 163/1942-पत्र संख्या 2651-सी-दिनांक 15 अप्रैल, 1942

मरम्मत के लिए खर्च भी दिया जाता था तथा 1600 रूपए दवाइयों के लिए दिए जाते थे । पोलिटिकल एजेंट की योजना के अनुसार इस खर्च में से एजेंसी सर्जन का वेतन एजेंसी के राज्यों द्वारा वार्षिक अनुदान देकर वहन किया जा सकता था । यद्यपि ब्रिटिश सरकार इस को-ओपरेटिव ग्रुप की योजना से सहमत थी लेकिन इसे लागू करने में अनेक कठिनाइयां थीं इसलिए इस योजना को तुरन्त कार्यान्वित करना संभव नहीं था ।

अभी तक एजेंसी सर्जन का वेतन सरकार द्वारा दिया जाता था इसके अतिरिक्त कुछ राज्य उसके वेतन के लिए लगभग 300 रूपए मासिक देते थे लेकिन राज्यों द्वारा एजेंसी सर्जन के कार्य के लिए वेतन के रूप में दिया गया अंश समान नहीं था । पन्ना राज्य द्वारा लगभग 900 रूपए वार्षिक दिए जाते थे जो योजना के अनुसार को-ओपरेटिव ग्रुप का सदस्य नहीं था इसलिए सरकार का विचार था कि जब तक एजेंसी सर्जन का वेतन ब्रिटिश सरकार द्वारा दिया जा रहा था उसे संयुक्त राज्य अधिकारी बनाने का कई औचित्य नहीं था क्योंकि ऐसा करने से राज्यों पर खर्च का अतिरिक्त भार पड़ेगा जिसे राज्य सरकारें वहन नहीं करना चाहेंगी इसीलिए को-ओपरेटिव प्रशासन पर किए जाने वाले खर्च को राज्यों द्वारा अन्य क्षेत्रों में लगाना ही लाभदायक होगा। इसके अतिरिक्त ब्रिटिश सरकार को डर था कि यदि राज्य सरकारें एजेंसी सर्जन के वेतन का अंश देने लगेंगी तो वे शीघ ही नौगांव सिविल अस्पताल में कम वेतन पर डाक्टर की नियुक्ति की मांग करने लगेंगी । इसलिए प्रस्तावित को-ओपरेटिव ग्रुप बनाए जाने की योजना को कार्यान्वित नहीं किया जाना चाहिए था ।

इसके अतिरिक्त एक मुख्य बात यह थी कि नौगांव बुन्देलखण्ड के बहुत से राज्यों के लिए महत्वपूर्ण अस्पताल नहीं था । दतिया के लोग इलाज के लिए झांसी जा सकते थे। कालपी के आस-पास के क्षेत्र के लोग आसानी से कानपुर जा सकते थे । इसी प्रकार सतना के आस-पास क्षेत्रों के लोग इलाहाबाद जा सकते थे । अतः इन राज्यों को नौगांव सिविल अस्पताल का खर्च उठाने में आपत्ति हो सकती थी । 1940-41 के आंकड़ों के अनुसार नौगांव अस्पताल केवल ओरछा, चरखारी, छतरपुर, बीजावर और नौगांव के आसपास के छोटे राज्यों के लिए ही एक केन्द्रीय अस्पताल के रूप में प्रभावी रूप से कार्य कर रहा था इसलिए सरकार ने निर्णय लिया कि जब तक एजेंसी सर्जन का पद रहेगा तब तक नौगांव सिविल अस्पताल की कार्य-प्रणाली में कोई परिवर्तन नहीं किया जाएगा । भविष्य में भी आवश्यकता पड़ने पर नौगांव अस्पताल को राज्यों को सौंपने के बारे में निर्णय उस समय की परिस्थितियों के अनुसार कर लिया जाएगा । इस प्रकार राज्यों के मेडिकल विभागों का एक को-ओपरेटिव ग्रुप बनाने की योजना को लागू नहीं किया गया तथा सरकार द्वारा यह निर्णय लिया गया कि जिन राज्यों के लोगों द्वारा अस्पताल की सेवाओं का अधिक प्रयोग किया जाता था वे इसके रखरखाव के लिए अधिक धन दें । एजेंसी सर्जन भी सरकार के इस विचार से सहमत था कि नौगांव अस्पताल का प्रशासन यथावत रहने दिया जाए ।

**प्लेग की महामारी रोकने के प्रयास :**

सन् 1896 में भारत में प्लेग की भयंकर महामारी फैली । इस महामारी से लगभग 30,000 लोग एक ही वर्ष में मर गए । सन् 1904 में कुछ सप्ताहों में ही मरने वालों की संख्या प्रति सप्ताह 30,000 से अधिक हो गई थी । इस प्लेग से लगभग 10,40,000 लोग इस एक ही वर्ष में मर गए । वर्ष 1905 में प्रारम्भ के चार महीनों में ही इस महामारी से लगभग 6,87,705 व्यक्तियों की मृत्यु हो गई । भारत में पंजाब, उत्तर पश्चिम प्रान्त तथा बम्बई प्रेजीडेंसी में इस महामारी का सबसे अधिक प्रभाव पड़ा । पंजाब की जनसंख्या लगभग 27 करोड़ थी जिसमें से प्लेग के कारण केवल सन् 1904 में 3,50,000 लोगों की मृत्यु हो गई थी अर्थात् प्रत्येक 77 में से एक व्यक्ति की प्लेग से मृत्यु हो गई थी ।[1] बुन्देलखण्ड भी इस महामारी के प्रकोप से अछूता नहीं रहा । एक रिपोर्ट के अनुसार सन् 1896 से लगातार नौ वर्षों तक (केवल सन् 1900 को छोड़कर) प्रत्येक वर्ष भारत में प्लेग से मरने वालों की संख्या में वृद्धि होती रही और 1905 तक लगभग चार करोड़ लोग इस महामारी का शिकार हुए । इस महामारी ने इन वर्षों में इतना भयंकर रूप धारण कर लिया था कि इसकी तुलना 1348 के उस प्लेग से की जा सकती थी जिसे काली मृत्यु (Black Death) का नाम दिया गया था और जिसके कारण इंग्लैंड में तथा यूरोप के अन्य

---

1 फाइल संख्या 2/1898

भागों में सामाजिक स्थिति बिल्कुल बदल गई थी।[1]

रायल कालेज आफ फिजिशियनस के प्रेजीडेंट, श्री आर.डी.पावल ने इस प्लेग के बारे में अपनी रिपोर्ट में लिखा कि 1348 के बाद इतना भयानक प्लेग इतिहास में कभी नहीं फैला । उन्हें भय था कि यह प्लेग केवल भारत तक सीमित न रहकर अन्य देशों में भी फैल सकता था इसलिए इस महामारी से ब्रिटिश साम्राज्य के अन्य भागों को खतरा था और इसे रोकने के प्रभावी उपाय किए जाने की आवश्यकता थी ।

भारत में स्वच्छता संबंधी उपाय पर्याप्त नहीं थे जिससे प्लेग के फैलने में बढ़ावा मिल सकता था इसलिए रायल कालेज आफ फिजिशियन द्वारा यह सुझाव दिया गया कि एक विशेष स्वच्छता सेवा का गठन किया जाए जिसमें ऐसे प्रशिक्षित लोगों को रखा जाए जो उन उपायों को प्रभावी रूप से लागू कर सकें जिनके द्वारा अन्य स्थानों पर प्लेग पर काबू पाया जा सका था । इस प्रकार की स्वच्छता सेवा प्लेग को रोकने में बहुत सहायक हो सकती थी । रायल कालेज आफ फिजिशियनस के अनुसार यदि स्वच्छता संबंधी इस सेवा को तुरन्त लागू कर दिया जाए तो इससे न केवल तत्कालीन प्लेग को बढ़ने से रोका जा सकता था बल्कि भविष्य में भी इस महामारी पर नियंत्रण पाया जा सकता था ।[2]

यद्यपि इस संस्था के गठन पर बहुत खर्च आने की संभावना थी किन्तु विशेषज्ञों का विचार था कि यह खर्च प्लेग से होने वाली हानि की तुलना में कम ही होगा । प्लेग की इस

---

1 फाइल संख्या 2/1898

2 -वही-

भयानकता का प्रभाव सभी क्षेत्रों पर पड़ा था । औद्योगिक उत्पादन के क्षेत्र में इसका स्पष्ट असर दिखने लगा था । प्लेग से अधिक प्रभावित होने वाले प्रांतों में लोगों की आर्थिक स्थिति दयनीय हो गई थी । खेती के लिए मजदूरों की कमी हो गई थी क्योंकि बहुत से व्यक्ति प्लेग का शिकार हो गए थे । मिलों एवं फैक्टरियों के लिए काम करने वाले लोग अब कठिनाई से मिलते थे जिसके फलस्वरूप शारीरिक श्रम करने वालों के पारिश्रमिक में वृद्धि हो गई थी । विशेषज्ञों को डर था कि यदि शीघ्र ही प्लेग पर नियंत्रण न किया गया तो देश में सामाजिक आर्थिक असंतुलन उत्पन्न हो जाने का खतरा था । बुन्देलखण्ड के लोगों पर भी इस प्लेग का प्रभाव पड़ा था और उनकी आर्थिक स्थिति कमजोर हो गई थी । इसलिए प्लेग की इस महामारी पर नियंत्रण के लिए एक योजना बनाई गई । इस योजना के अनुसार यह सुझाव दिया गया कि उन स्थानों पर चार या पांच प्रशासनिक केन्द्र स्थापित किए जाएं जहां प्लेग का आक्रमण प्रतिवर्ष हो रहा था । एक चिकित्सा विभाग भी स्थापित किए जाने की योजना बनाई गई जिसका अधिकारी स्थानीय भाषा एवं रीति-रिवाजों से भली-भांति परिचित हो । इस विभाग में भारत की चिकित्सा सेवाओं के अधिकारी और प्लेग के लिए विशेष चिकित्सक सम्मिलित किए जाने चाहिएं । यह विभाग स्थानीय महिला तथा पुरूष चिकित्सकों के कार्य की देखरेख करेगा । यह भी सुझाव दिया गया कि इस चिकित्सा विभाग को अलग-अलग विभागों में बांटा जाए जो अलग-अलग कार्य देखेंगे ।

इस प्रकार स्थापित प्रशासनिक केन्द्रों में बड़ी संख्या में यूरोपीय तथा स्थानीय चिकित्सा अधिकारियों को भेजा जाए जो प्लेग के बारे में अध्ययन कर इसे नियंत्रण करने

के उपायों को सीख सकें ताकि जब यह संस्था धीरे-धीरे बढ़कर उन क्षेत्रों में कार्य शुरू करे जिन्हें इसकी अति आवश्यकता है तब वहां के स्थानीय निवासियों की भावनाओं को कोई ठेस न पहुंचे । इस प्रकार से स्थापित यह प्रशासनिक केन्द्र यद्यपि स्वतंत्र रूप से स्थानीय आवश्यकताओं के अनुसार कार्य करेंगे किन्तु इन्हें एक विशेष प्लेग विभाग के नियंत्रण में रखा जाए जो सभी क्षेत्रों के इन केन्द्रों के कार्यों में तालमेल रखेगा ।

यह भी सुझाव दिया गया कि इस प्रकार से प्लेग के नियंत्रण के लिए स्थापित की गई संस्था भविष्य में स्वच्छता के क्षेत्र में भारत में एक स्थायी संस्था बनी रह सकती है ।[1]

इसके अतिरिक्त एक सुझाव यह भी था कि सभी क्षेत्रों के प्लेग संबंधी आंकड़ों तथा उनकी रोकथाम संबंधी उपायों को एक मासिक परिपत्र के रूप में प्रकाशित किया जाए जिससे इस महामारी की रोकथाम के लिए पूरी जानकारी प्राप्त हो सके ।[2]

रायल कालेज आफ फिजीशियनस के विशेषज्ञों ने ब्रिटिश सरकार को प्लेग नियंत्रण के लिए अपनी ओर से पूर्ण सहयोग देने का आश्वासन भी दिया ।

भारत में फैली इस महामारी के कारणों का पता लगाने के उद्देश्य से सन् 1905 में सरकार द्वारा एक वैज्ञानिक कमीशन भी नियुक्त किया गया । इस कमीशन ने सन् 1907

---

1 फाइल संख्या 2/1898-रायल कालेज आफ फिजिशियनस का मेमोरेन्डम दिनांक 21 जुलाई, 1905

2 -वही-

तक इस बीमारी की रोकथाम के लिए उपायों का पहला चरण पूरा कर लिया था । इस कमीशन द्वारा प्लेग से बचाव एवं इसकी रोकथाम के लिए अपनी रिपोर्ट में महत्वपूर्ण सुझाव दिए गए ।[1]

प्लेग का विस्तृत अध्ययन करने के पश्चात् यह कमीशन इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि ब्युबानिक प्लेग संक्रमित चूहों से फैलता है । एक चूहे से दूसरे चूहे तक तथा चूहों से मनुष्यों तक यह रोग चूहों के पिस्सुओं के द्वारा फैलाया जाता है । प्लेग के यह कीड़े मिट्टी, फर्श तथा घरों की दीवारों में पाए जाते हैं ।

इस वैज्ञानिक कमीशन की रिपोर्ट के उपरोक्त निष्कर्ष तत्कालीन प्लेग को रोकने में बहुत महत्वपूर्ण सिद्ध हुए । अभी तक घरों में प्लेग के कीड़ों को नष्ट करने के लिए जो कठिन तथा खर्चीले प्रयास किए जा रहे थे इस कमीशन के इन निष्कर्षों के बाद उन्हें रोक दिया गया क्योंकि इनकी आवश्यकता नहीं थी बल्कि संक्रमित चूहों एवं उनके पिस्सुओं से मनुष्यों को बचाने की आवश्यकता थी तथा संक्रमित पिस्सुओं के काटने के असर को कम किए जाने की आवश्यकता थी ।

ब्रिटिश सरकार इस बात से पूरी तरह परिचित थी कि संक्रमित चूहों एवं चूहों के पिस्सुओं तथा मनुष्यों के बीच संक्रमण की रोकथाम एक अत्यन्त कठिन कार्य था । इसके अनेक कारण थे । अधिकतर भारतीय मकानों की बनावट इस प्रकार की थी जो चूहों के

---

1 फाइल संख्या 2/1898-पत्र संया 1275-1284-दिनांक 17 अगस्त, 1907

बढ़ने में सहायक थी। इनमें चूहों को खाने-पीने के पदार्थ आसानी से उपलब्ध होते थे। बहुत से लोग चूहों को न तो स्वयं मारना चाहते थे और न ही सरकार द्वारा चूहे मारने के लिये उपलब्ध करायी गयी सुविधाओं का प्रयोग करना चाहते थे। वैज्ञानिक कमीशन द्वारा सरकार को सुझाव दिया गया कि चूहों की संख्या तेजी से बढ़ती है अतः इनको मारने के ठोस उपाय करने की आवश्यकता थी क्योंकि छुटपुट उपायों से प्लेग को फैलने से रोका नहीं जा सकता था। प्लेग नियंत्रण के लिये चूहे मारने के साथ-साथ इनकी संख्या कम करने के अन्य सुझाव भी दिये गये। यद्यपि मकानों की बनावट में शीघ्र सुधार करना सम्भव नहीं था लेकिन कुछ क्षेत्रों में निर्धन लोगों के लिये कुछ मकान सरकार द्वारा बनवाये जा सकते थे जो लोगों के लिये चूहों रहित मकान का आदर्श प्रस्तुत कर सकें। धीरे-धीरे लोगों द्वारा इस प्रकार के आदर्श मकानों को अपना लिया जायेगा। इसके साथ ही अस्वच्छता दूर करने का प्रयास किए जाने की आवश्यकता थी जिससे चूहों की संख्या में कमी हो। इसके अतिरिक्त लोगों को प्लेग रोकने के उपायों के सम्बन्ध में शिक्षित किए जाने का सुझाव भी दिया गया।[1]

वैज्ञानिक कमीशन ने सुझाव दिया कि चूहों को उपलब्ध भोजन में कमी करने के लिए अनाज गोदामों को चूहों से सुरक्षित रखा जाये। गन्दगी दूर करके भी चूहों की वृद्धि को रोका जा सकता था।

---

1 फाइल संख्या 2/1898

प्लेग से बचाव का एक मुख्य उपाय यह था कि लोगों को प्रभावित स्थानों से निकाल कर दूर भेज दिया जाये लेकिन इसे कार्यान्वित करने में अनेक कठिनाईयां थी। लोग घर छोड़ने में होने वाली असुविधा के कारण अपना घर छोड़ना नहीं चाहते थे इसलिये सरकारी अधिकारियों को यह सुझाव दिया गया कि वे लोगों को अस्थायी घरों में भेजते समय इस प्रकार उनकी सहायता करें कि उन्हें कम-से-कम असुविधा हो। इसलिए सरकार द्वारा जिला स्तर के अधिकारियों को इस सम्बन्ध में उचित स्वतन्त्रता दी जानी चाहिये ताकि वह अपने क्षेत्र की स्थिति के अनुसार नियम बना सकें और इन नियमों के लिये उचित तकनीकी परामर्श प्राप्त कर सकें। लोगों को अस्थायी घर बनाने के लिये परिस्थितियों के अनुसार अलग अलग सहायता की आवश्यकता हो सकती थी कहीं यह सहायता सरकार द्वारा धन देकर, कहीं कच्चे मकान बनाने के लिये आवश्यक सामग्री उपलब्ध करा कर और कहीं घरों के लिये लोहा इत्यादि देकर यह सहायता की जा सकती थी। इसके अतिरिक्त लोगों द्वारा अपने घरों में छोड़ी गयी सम्पति की सुरक्षा के सम्बन्ध में भी अधिकारियों द्वारा उचित नियम बनाये जाने की आवश्यकता थी। इन सबसे अधिक आवश्यकता इस बात की थी कि लोगों को यह समझाने का प्रयास किया जाये कि उन्हें इस महामारी से बचाने के लिये ही अस्थायी घरों में भेजने के प्रबन्ध किये गये हैं।

वैज्ञनिक कमीशन के अनुसार प्लेग से लोगों को बचाने का एक अन्य महत्वपूर्ण सुझाव यह था कि लोगों को प्लेग से रोकथाम का टीका लगाया जाये। यद्यपि देश के विभिन्न भागों में लोग इस टीकाकरण के विरूद्ध थे किन्तु सरकार को उनकी भावनाओं का पूरा ध्यान रखते हुए उन्हें इसके लाभ से अवगत कराना चाहिये। सरकार द्वारा ऐसे प्रबन्ध किये जायें कि प्रत्येक प्रभावित क्षेत्र में टीकाकरण की उचित व्यवस्था हो । इसके लिये अस्पतालों एवं डिस्पेंसरियों के कर्मचारियों की सेवाएं ली जानी चाहियें और जहां आवश्यक हो अतिरिक्त टीकाकरण कर्मचारी लगाये जाने चाहिए। इस टीकाकरण के लिये कर्मचारियों को उचित प्रशिक्षण भी दिया जाना चाहिये।

ब्रिटिश सरकार द्वारा अपने अधिकारियों को यह भी निर्देश दिये गये कि वे प्लेग जैसी भंयकर महामारी की रोकथाम के उपाय लागू करते समय लोगों से सख्ती से पेश न आयें और उन्हें उचित मार्गदर्शन, परामर्श तथा सहायता प्रदान की जाये।

सरकार द्वारा स्थानीय शासकों से भी प्लेग की रोकथाम के लिये सहायता करने की अपील की गयी।

आम जनता को प्लेग की बीमारी एवं इसे रोकने के उपायों के सम्बन्ध में सरकार द्वारा स्थानीय भाषा में उपलब्ध करायी गयी जानकारी कुछ इस प्रकार थी :-

"प्लेग की बीमारी जिसे ताउन भी कहते हैं किस तरह फैलती है :

असल में प्लेग चूहों की बीमारी है और जो चूहों का नाश कर दिया जाए तो यह बीमारी आदमियों को न होवे।

चूहों में यह बीमारी कीड़ों से फैलती है यह कोई छूत का रोग उनमें नहीं है यह कीड़े या पिसू खासकर चूहों में होता है। जो कीड़े बिल्ली वगैरह की देह पर होते हैं उनमें और चूहों के कीड़ों में बहुत फरक होता है और यह कीड़े सहज सुभाव आदमी के ऊपर नहीं चढ़ते लेकिन जब इस बीमारी से चूहे मरने लगते हैं तो बाकी चूहे अपने बिलों को छोड़कर दूसरी जगह चले जाते हैं और उन कीड़ों को जो बिलों में रह जाते है जब कोई चूहा नहीं मिलता तब वह बिल्ली कुत्ते और आदमियों के बदन पर खून पीने के लिये चढ़ जाते हैं क्योंकि खून ही पीकर वह जीते हैं और जब यह कीड़े खून पीने के लिये काटते है तब उनका विष आदमी की देह में पैठ कर यह बीमारी पैदा कर देता है । सरकार बहादुर ने जो कमीशन इस बीमारी का हाल दरयाफ्त करने के लिये मुकर्रर किया था उन्होंने पूरी तरह से यह बात निश्चै कर ली है कि यह प्लेग की बीमारी सिरफ चूहों से आदमियों में फैलती है और मकानों में चूहे रहने के सबब वह मकान बीमारी का घर हो जाता है इसलिये चूहों को मिटाने की यह तदबीरें की जावें तो इस बीमारी से बचाव हो :

(i) मकानों को ऐसा बनवावें जिनमें चूहे आराम से न रह सकें। गच का फरस बनवावें हफ्ता में येक बार घरों को खूब साफ करें, घरों में ईंधन या कंडों

का ढेर न रखें। खाने-पीने की चीजें ढके हुए टीन के बरतन में रखें जिसमें चूहों क्यों न मिल सकें।

(ii) मकान के छप्पर लोहे के फनालीदार चद्दरों से या बंगलों के छप्परों से छावें जिसमें चूहों को रहने को कोई जगह न मिले देसी छप्परों से जो मकान छाये जाते हैं उनमें चूहे रह सकते हैं।

(iii) चूहों को हमेशा चूहे दान में पकड़ कर मार डालें या विष देकर मार डालें इस तरह हमेशा चूहों को मारते रहें अगर इन तदबीरों से भी चूहे घर से न जायें तो फिर बीमारी से बचने के लिये यह उपाय करें :

1. उस जगह को छोड़ देवें और बाहर मैदान में छप्पर डालकर मय बाल बच्चों के रहें।

2. ऐसा टीका लगवावें कि जिसमें इस बीमारी से आदमी उसी तरह बच सकता है जैसा टीका लगाने से बच्चे चेचक से बचते हैं।"

इस प्रकार प्लेग की इस महामारी को रोकने का सरकार ने हर सम्भव प्रयास किया लेकिन इसका प्रकोप कई वर्षों तक रहने के कारण एवं लोगों का पूरा सहयोग प्राप्त न होने के कारण सरकार को इस बीमारी पर नियंत्रण प्राप्त करने में बहुत कठिनाई हुई । लोगों की अकाल मृत्यु ने आगामी कई वर्षों तक क्षेत्र के सामाजिक एवं आर्थिक जीवन पर अपना प्रभाव बनाये रखा।

**पन्ना राज्य में डिस्पेन्सरी :**

सन् 1904 में पन्ना राज्य द्वारा बीरसिंहपुर में एक डिस्पेन्सरी खोलने की योजना बनाई गयी। पन्ना के दीवान के अनुसार डिस्पेन्सरी शुरू करने के लिये दो इमारतें उपयुक्त थीं । एक बिल्डिंग बालदेव मन्दिर के महन्त की थी। इस महन्त की पूरी जागीर जिसमें यह बिल्डिंग भी सम्मिलित थी, का प्रबन्ध कोर्ट की देखरेख में किया जाता था इसलिये इस बिल्डिंग को डिस्पेन्सरी के लिये प्रयोग करने के लिये महन्त की अनुमति की आवश्यकता नहीं थी। इसलिये पन्ना राज्य के अधिकारियों का विचार था कि यदि डिस्पेन्सरी के लिये इस इमारत को उपयुक्त पाया जाये तो इसमें आवश्यक परिवर्तन करके इसमें डिस्पेन्सरी प्रारम्भ की जा सकती थी और इसके लिये महन्त को उपयुक्त किराया दिया जा सकता था।

डिस्पेन्सरी के लिये दूसरी बिल्डिंग पन्ना राज्य की थी। सम्भवतः सोहावल राज्य से पन्ना राज्य पर अतिक्रमण रोकने के लिये इसका निर्माण पन्ना की सीमा के समीप ही किया गया था। पहले इस बिल्डिंग में जमात (Jamat) के चार सिपाही तैनात थे तथा जमात के समाप्त कर दिये जाने पर इस बिल्डिंग में पुलिस के सिपाहियों की ड्यूटी लगायी जाती थी। पन्ना के दीवान के अनुसार दोनों ही इमारतें डिस्पेन्सरी के लिये उपयुक्त थीं किन्तु दूसरी बिल्डिंग जो पन्ना राज्य की थी वह तीन मंजिल थी और उसमें अस्पताल अस्सिटेन्ट के रहने की व्यवस्था भी आसानी से की जा सकती थी।[1]

---

1 फाइल संख्या 2/1903

इस प्रकार जब बीरसिंहपुर में डिस्पेन्सरी प्रारम्भ करने की योजना बनायी जा रही थी पन्ना के दीवान को बघेलखन्ड एजेन्सी के एजेन्सी सर्जन मेजर होव (Major Hove) से मिलने का अवसर प्राप्त हुआ। बघेलखन्ड का एजेन्सी सर्जन पन्ना राज्य द्वारा बीरसिंहपुर में डिस्पेन्सरी खोलने के पक्ष में नहीं था।[1] उसका विचार था कि यदि मझगांव में डिस्पेन्सरी खोली जाये तो वह आस-पास के क्षेत्रों के लिये अधिक लाभदायक होगी। बीरसिंहपुर के निवासी भी आसानी से मझगांव की इस डिस्पेन्सरी का लाभ उठा सकते थे। इसके अतिरिक्त सतना भी बीरसिंहपुर से अधिक दूर नहीं था इसलिये यहां के निवासी इस अस्पताल की सेवाओं का लाभ भी उठा सकते थे। अतः बघेलखन्ड के एजेन्सी सर्जन ने पन्ना के दीवान को सुझाव दिया कि यदि पन्ना राज्य बीरसिंहपुर में डिस्पेन्सरी खोलने की योजना को रद्द कर दे तो एजेन्सी सर्जन द्वारा मझगांव में डिस्पेन्सरी शुरू करने का प्रयास किया जा सकता था। उसके विचार में बीरसिंहपुर की डिस्पेन्सरी पर बुन्देलखन्ड के एजेन्सी सर्जन के द्वारा नियन्त्रण की तुलना में मझगांव की डिस्पेन्सरी पर बघेलखन्ड के एजेन्सी सर्जन द्वारा नियन्त्रण किया जाना अधिक आसान था।

बघेलखन्ड के एजेन्सी सर्जन के सुझाव को ध्यान में रखकर पन्ना राज्य द्वारा बीरसिंहपुर में डिस्पेन्सरी प्रारम्भ करने की योजना पर पुनर्विचार किया गया और बीरसिंहपुर के स्थान पर धर्मपुर में एक डिस्पेन्सरी प्रारम्भ करने की योजना बनायी गयी । धर्मपुर में

---

1 फाइल संख्या 2/1903

डिस्पेन्सरी की अति आवश्यकता थी। क्योंकि इस क्षेत्र में लगभग 20 वर्ग मील बड़े क्षेत्र में कोई चिकित्सा सुविधा उपलब्ध नहीं थी । यद्यपि कालिंजर में एक डिस्पेन्सरी थी किन्तु इसकी स्थिति बहुत खराब हो चुकी थी।[1] बघेलखन्ड का एजेन्सी सर्जन भी धर्मपुर में डिस्पेन्सरी खोलने की योजना से सहमत था क्योंकि दाथर कच्छार के लोग भी इस डिस्पेन्सरी से लाभ उठा सकते थे। दूसरी ओर बीरसिंहपुर के निवासी सतना अस्पताल तथा मझगांव की डिस्पेन्सरी से लाभान्वित हो सकते थे । यह योजना पन्ना राज्य के दीवान द्वारा पोलिटिकल एजेन्ट के विचारार्थ भेजी गयी। लेकिन बुन्देलखन्ड के पोलिटिकल एजेन्ट द्वारा धर्मपुर में डिस्पेन्सरी खोलने की योजना को स्वीकार नहीं किया गया क्योंकि बघेलखन्ड के एजेन्सी सर्जन ने पोलिटिकल एजेन्ट को बताया था कि मझगांव में डिस्पेन्सरी शीघ्र शुरू करने का कोई विचार नहीं था। इसलिये पोलिटिकल एजेन्ट ने पन्ना के दीवान एवं बुन्देलखन्ड एजेन्सी सर्जन को बीरसिंहपुर में डिस्पेन्सरी प्रारम्भ करने की स्वीकृति दे दी। इस प्रकार पन्ना राज्य द्वारा बीरसिंहपुर में एक डिस्पेन्सरी खोली गयी जिससे इस क्षेत्र के लोगों को बहुत लाभ हुआ।[2]

**नदीगांव में डिस्पेन्सरी :**

सन् 1915 में दतिया राज्य के नदीगांव में एक डिस्पेन्सरी शुरू करने की योजना

---

1 फाइल संख्या 2/1903

2 -वही-

बनाई गयी। इसके लिये दरबार द्वारा एक सब अस्सिटेन्ट सर्जन की नियुक्ति का प्रस्ताव था। लेकिन इस डिस्पेन्सरी के लिये कोई उपयुक्त सब अस्सिटेन्ट सर्जन न मिल सकने के कारण प्रारम्भ में दरबार द्वारा एक हैड कम्पाउन्डर शेख लाल मुहम्मद को डिस्पेन्सरी कार्य के लिये नियुक्त कर लिया गया। इस कम्पाउन्डर को 20 रूपये प्रतिमाह वेतन पर नियुक्त किया गया था। नदीगांव डिस्पेन्सरी में नियुक्त किये जाने से पूर्व शेख लाल मुहम्मद एक लम्बे समय तक बीहट डिस्पेन्सरी के इन्चार्ज के पद पर कार्य कर चुके थे।[1]

यह नई डिस्पेन्सरी अस्सिटेन्ट सर्जन दतिया के नियन्त्रण में शुरू की गई थी। अस्सिटेन्ट सर्जन दतिया डिस्पेन्सरी को सुचारू रूप से चलाने के लिये उत्तरदायी था। इस डिस्पेन्सरी के लिये दवाईयां आदि दतिया के अस्पताल से उपलब्ध करायी जाती थीं। नई डिस्पेन्सरी के लिये प्रारम्भ में फर्नीचर आदि का प्रबन्ध भी दतिया के अस्सिटेन्ट सर्जन द्वारा किया गया एवं डिस्पेन्सरी के लिये दवाईयां आवश्यक उपकरण इत्यादि भी दतिया अस्पताल द्वारा दिये गये। इस प्रकार नदीगांव की इस डिस्पेन्सरी ने कम्पाउडर शेख लाल मुहम्मद की देखरेख में सन् 1915 में कार्य प्रारम्भ किया।[2]

**दतिया में महिला अस्पताल :**

दतिया के राजा का विचार था कि दतिया में महिलाओं के लिये एक अस्पताल

---

1 फाइल संख्या 33/1915

2 -वही-

खोला जाये। ग्वालियर जय आरोग्य अस्पताल, लश्कर, ग्वालियर में कार्यरत सब अस्सिटैंट सर्जन डा.(श्रीमती) एम. जोसफसन दतिया में कार्य करने के लिये तैयार थी। उसने 1923 में दतिया के दीवान को अपना प्रार्थना पत्र भेजा। डा. जोसफसन ने आगरा मेडिकल स्कूल से एल.एम.पी. की परीक्षा पास की थी और उसने यूनियन मिशन जनाना अस्पताल झांसी में दस वर्ष तक कार्य भी किया था।[1] अपने प्रार्थना पत्र में उसने लिखा कि वह लगभग एक वर्ष से जे.ए. अस्पताल, ग्वालियर में कार्यरत थी किन्तु उसकी पुत्री का स्वास्थ्य ठीक न रहने के कारण वह ग्वालियर छोड़ना चाहती थी इसीलिए वह दतिया में खोले जाने वाले अस्पताल में कार्य करने के लिये तैयार थी। उसका प्रार्थना पत्र दतिया के दीवान काजी अजीजुद्दीन अहमद ने 26 जनवरी 1923 को एजेन्सी सर्जन के विचारार्थ भेजा। एजेन्सी सर्जन ने इस प्रार्थना पत्र पर विचार करके श्रीमती जोसफसन को लिखा कि इस नियुक्ति के लिये उसे 100 रूपये प्रतिमाह और रहने के लिये क्वार्टर दिया जायेगा।[2] जोसफसन एजेन्सी सर्जन से जानना चाहती थी कि उसे रहने के लिये जो क्वार्टर उपलब्ध कराया जायेगा उसमें रहने के लिये फर्नीचर आदि की व्यवस्था थी अथवा नहीं। इसके अतिरिक्त वह 25 रूपये आने जाने के लिये देय भत्ता के बारे में भी स्पष्ट रूप से जानना चाहती थी ।

---

1 फाइल संख्या 111/1923

2 -वही-

16 जून 1923 को इसी अस्पताल के सम्बन्ध में दतिया के दीवान ने एजेन्सी सर्जन को सूचित किया कि दतिया के इस महिला अस्पताल का कार्य कुछ मिशनरियां अपने हाथ में लेना चाहती थी। दीवान के अनुसार डा. अरनेस्ट दतिया के इस अस्पताल में एक महिला डाक्टर भेजने का प्रबन्ध कर रही थी। अगले माह धौलपुर जनाना मिशन की ओर से मिस हेमपटन दीवान से मिलना चाहती थी। डा. अरनेस्ट लेन्डूर (Landour) से एक महिला डाक्टर को बुलाना चाहती थी ताकि वह धौलपुर डिस्पेन्सरी को देख ले जिससे दतिया का काम शुरू किया जा सके।[1] दतिया दीवान ने एजेन्सी सर्जन को अनुरोध किया कि दतिया महिला डिस्पेन्सरी अमेरिकन मिशन को हस्तान्तिरत करने के बारे में डा. अरनेस्ट से जानकारी प्राप्त की जाये। इस डिस्पेन्सरी को दो हजार रूपये प्रतिवर्ष पर अमेरिकन मिशन को दिये जाने का विचार था। इन्ही दिनों एक अन्य मिशन धौलपुर मिशन भी यह कार्य करने के लिये इस क्षेत्र में आना चाहता था। दतिया दीवान चूंकि इन दोनों मिशन में कोई मतभेद नहीं पैदा करना चाहता था इसलिए उसने एजेन्सी सर्जन से निवेदन किया कि डा. अरनेस्ट को धौलपुर मिशन के बारे में कुछ भी न बताया जाये।

इस प्रकार दतिया राज्य द्वारा इस महिला अस्पताल के लिये अमेरिकी मिशनरियों की सहायता प्राप्त करने का प्रयास किया गया। लेकिन डा. अरनेस्ट ने एजेन्सी सर्जन को यह बताया कि यद्यपि उनका बोर्ड दतिया में यह कार्य करने का इच्छुक था लेकिन इस कार्य

---

1 फाइल संख्या 111/1923-पत्र संख्या 3729, दिनांक 16 जून, 1923

के लिये धन भेजने के बारे में बोर्ड द्वारा कुछ भी नहीं कहा गया था और वह झांसी के कोष से इस कार्य के लिये धन देने में असमर्थ थी।[1] डा. अरनेस्ट ने यह भी बताया कि अभी तक वहां रहने के लिये किसी डाक्टर की व्यवस्था भी नहीं हो सकी थी। अतः उसने महिला अस्पताल का कार्य शुरू करने के लिये दतिया के दीवान से कुछ और समय मांगा। डा. अरनेस्ट यद्यपि इस वर्ष इस महिला अस्पताल का कार्य प्रारम्भ करने में स्वंय को असमर्थ पा रही थी लेकिन उसने यह इच्छा व्यक्त की कि वह महीने में दो बार डिस्पेन्सरी कार्य के लिये दतिया जाने को तैयार थी और अस्पताल में भर्ती कराये जाने वाले रोगियों को झांसी में अपने अस्पताल में ले जा सकती थी। उसके अनुसार उन्हें अमेरिका से शीघ्र ही एक और डाक्टर आने की आशा थी लेकिन उसे इसकी कोई निश्चित सूचना न थी।[2]

इस प्रकार यह अमेरिकी मिशनरी जिसने झांसी के झोकनबाग में मिशन अस्पताल की स्थापना की थी, दतिया में भी चिकित्सा कार्य करने की इच्छुक थी लेकिन धन और उपयुक्त डाक्टर के अभाव में उसके लिये दतिया में महिला अस्पताल का कार्य करना सम्भव नहीं हो रहा था।

दतिया दरबार भी राज्य में इस महिला अस्पताल का कार्य शुरू करने के पक्ष में था। अतः एजेन्सी सर्जन ने दतिया दरबार को इस बात के लिये सहमत कर लिया कि जब तक

---

1 फाइल संख्या 111/1923-पत्र संख्या 1702 दिनांक 18 जून, 1923

2 फाइल संख्या 111/1923

डा. अरनेस्ट को अस्पताल के लिये अमेरिका से धन प्राप्त नहीं होता तब तक दरबार द्वारा उसे यह धन उपलब्ध कराया जाये। एजेन्सी सर्जन के अनुसार इस महिला अस्पताल का कार्य चूंकि अमेरिकन मिशनरी डा. अरनेस्ट द्वारा किये जाने की इच्छा व्यक्त की गयी थी इसलिये इस कार्य को धौलपुर मिशन को नहीं दिया जाना चाहिये था। उसका विचार था कि धौलपुर के डाक्टर के स्थान पर डा. अरनेस्ट दतिया में अधिक अच्छी तरह यह कार्य कर सकेगी और उसे ही इस कार्य के लिये आमंत्रित किया गया था अत: यह कार्य उसे ही सौंपा जाना चाहिए ।[1]

एजेन्सी सर्जन की सिफारिश पर दतिया के राजा ने डा. अरनेस्ट द्वारा इस महिला अस्पताल का कार्य शुरू करने के लिये उसे आर्थिक सहायता देना स्वीकार कर लिया[2] चूंकि यह कार्य डा. अरनेस्ट को दिये जाने का निर्णय लिया गया था इसलिए दतिया के दीवान ने धौलपुर मिशन की महिलाओं को यह भी सूचित कर दिया कि इस कार्य के लिये अब उनकी सेवाओं की आवश्यकता नहीं थी।

दतिया राज्य द्वारा अमेरिकन मिशनरी डा. अरनेस्ट को इस महिला अस्पताल का कार्य भार सौंपने के लिये निम्न शर्ते रखी गयी :

(i) पहली शर्त के अनुसार राज्य इस कार्य के लिये दो हजार रूपये प्रतिवर्ष देगा।

---

1 फाइल संख्या 111/1923

2 फाइल संख्या 111/1923 पत्र दिनांक 28 जून, 1923

(ii) दूसरी शर्त के अनुसार यह निर्णय लिया गया कि अस्पताल में जो भी दवाईयां, फर्नीचर, कपड़े, मशीनें इत्यादि थीं , वह मिशन को ही दे दी जायेंगी।

(iii) इस समझौते की तीसरी शर्त के अनुसार अस्पताल में भारतीय महिला डाक्टर की नियुक्ति होने पर उसे रहने के लिये मुफ्त फर्नीचर रहित क्वार्टर अस्पताल के निकट उपलब्ध कराया जायेगा। अगर किसी यूरोपियन महिला डाक्टर की नियुक्ति होगी तो उसे उपयुक्त आवास, अगर सम्भव हो, दिया जायेगा।

(iv) मिशन को अस्पताल में एक प्रशिक्षित महिला डाक्टर की नियुक्ति करनी होगी।

(v) समझौते की पांचवी शर्त यह थी कि अस्पताल की महिला डाक्टर राजपरिवार की निःशुल्क चिकित्सा करेगी ।

(vi) दतिया महिला अस्पताल अमेरिकन मिशनरी को दिये जाने के समझौते की एक महत्वपूर्ण शर्त यह थी कि मिशन को अस्पताल में या रोगियों के घर पर बाइबल पढ़ाने अथवा धार्मिक गान की स्वतन्त्रता केवल रोगियों की सहमति से ही होगी और उनकी भावनाओं को आहत नहीं किया जायेगा।

(vii) अस्पताल में आवश्यकतानुसार दवाईयों एवं आवश्यक उपकरणों तथा मशीनों का पूरा भन्डार रखा जायेगा तथा गरीब रोगियों की निःशुल्क चिकित्सा की जायेगी।

(viii) यह समझौता किसी भी पक्ष द्वारा तीन महीने का पूर्व नोटिस देकर बिना हरजाने के समाप्त किया जा सकता था।

(ix) इसकी अन्तिम शर्त यह थी कि किसी मतभेद की दशा में एजेन्सी सर्जन एवं दतिया दीवान का निर्णय अन्तिम होगा।[1]

इस प्रकार दतिया के दीवान द्वारा महिला अस्पताल दतिया को अमेरिकन महिला मिशनरी को दिये जाने के सम्बन्ध में उपरोक्त नौ शर्ते रखी गईं। इसके अतिरिक्त एजेन्सी सर्जन का सुझाव था कि अस्पताल के डाक्टर द्वारा रोगियों का रजिस्टर बनाया जाये और दरबार द्वारा उपलब्ध कराये जाने वाले निर्धारित प्रपत्र पर अस्पताल द्वारा वार्षिक लेखा-जोखा एजेन्सी सर्जन को भेजा जाये ताकि उसे मध्य भारत एजेन्सी के विवरण में शामिल किया जा सके। एजेन्सी सर्जन को इस समझौते की दतिया दरबार द्वारा रखी गयी उपरोक्त सभी शर्ते स्वीकार थीं।

एजेन्सी सर्जन की स्वीकृति मिल जाने पर दतिया के दीवान ने डा. अरनेस्ट को इस अस्पताल में अमेरिकन मिशनरियों की देखरेख में कार्य शुरू करने से सम्बन्धित दतिया दरबार की उपरोक्त शर्तों से अवगत कराया। लेकिन इस महिला मिशनरी को दतिया दरबार की समझौते की कुछ शर्ते स्वीकार नहीं थीं अतः इस मिशनरी द्वारा दतिया दरबार को समझौते का एक नया प्रारूप भेजा गया लेकिन दतिया के दीवान ने डा. अरनेस्ट को लिखा कि उनके द्वारा भेजे गये समझौते के नये प्रारूप पर दरबार द्वारा सावधानीपूर्वक विचार किया गया तथा दरबार को इसकी शर्तों पर कुछ आपत्ति है। उसने लिखा कि

---

1 फाइल संख्या 111/1923-पत्र संख्या 622 दिनांक 28 अगस्त, 1923

"आपको इस सम्बन्ध में लिखे जाने से पूर्व नागरिकों की एक मीटिंग बुलायी गयी थी और उन्होंने यह फैसला किया कि बाइबल का उपदेश और दूसरे धार्मिक गान रोगियों की स्वीकृति से ही होने चाहिएं और किसी भी दशा में यह प्रत्येक व्यक्ति पर थोपे नहीं जाने चाहिए। मरीजों की भावनाओं का आदर करना बहुत आवश्यक है।"[1]

लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि डा. अरनेस्ट को दतिया दरबार की शर्तें स्वीकार नहीं थी। यद्यपि दतिया दरबार की यह शर्तें कठोर नहीं थीं किन्तु सम्भवतः दतिया में महिला अस्पताल खोलने के साथ-साथ अमेरिकन मिशनरी का इरादा वहां के लोगों को ईसाई धर्म में परिवर्तित करना था जो इस समझौते के लागू होने पर सम्भव नहीं था। अतः दरबार द्वारा प्रस्तावित शर्तें मानने से मिशन के लोगों ने इन्कार कर दिया।[2]

अतः दतिया दरबार द्वारा महिला डाक्टर जोसफसन को जिसने इस अस्पताल में कार्य करने के लिये आवेदन किया था यहां नियुक्त कर लिया गया। उसे सौ रूपये प्रतिमाह वेतन, पच्चीस रूपये आने-जाने का खर्च, रहने के लिये क्वार्टर एवं राज्य के नियमों के अनुसार छुट्टी तथा पेन्शन इत्यादि दिया जाना तय किया गया। यद्यपि वह अस्पताल के अतिरिक्त भी मरीजों को फीस लेकर देख सकती थी लेकिन उसे राजघराने की महिलाओं को निःशुल्क सेवा उपलब्ध करानी पड़ती थी। प्रारम्भ में उसे एक वर्ष के लिये नियुक्त

---

1 फाइल संख्या 111/1923

2 -वही-

किया गया था। यह अवधि पूरी होने पर किसी भी तरफ से सेवा समाप्ति के लिये एक महीने का पूर्व नोटिस पर्याप्त था।[1] बाद में डा. जोसफसन के अनुरोध पर इन सेवा शर्तों में कुछ संशोधन किया गया जिसमें उसे सौ रूपये प्रतिमाह वेतन के साथ सात रूपये प्रतिमाह प्राविडेन्ट फन्ड देना भी स्वीकार कर लिया गया जो उसके खाते में स्टेट बैंक दतिया में जमा किया जाना था।

इस प्रकार यद्यपि दतिया दरबार और एजेन्सी सर्जन दोनों ही इस क्षेत्र में अमेरिकन मिशनरी द्वारा चिकित्सा सुविधा उपलब्ध कराये जाने के इच्छुक थे लेकिन दरबार द्वारा लोगों की धार्मिक भावनाओं का ध्यान रखने की शर्त के पश्चात् इस मिशन द्वारा अस्पताल का कार्य प्रारम्भ करने में अधिक रूचि नहीं ली गयी अतः यह कार्य दतिया दरबार द्वारा ही शुरू किया गया और डा. जोसफसन ने इस अस्पताल का कार्यभार संभाल लिया।

**<u>मलेहरा में साप्ताहिक डिस्पेन्सरीः</u>**

छतरपुर के महाराजा, महारानी, सरस्वती सदन के सदस्य एवं शहर के कुछ व्यापारियों द्वारा ईश्वर को धन्यवाद के रूप में एक भेंट बुन्देलखन्ड के पोलिटिकल एजेन्ट को दी गयी। उसने यह भेंट किसी दान धर्म के कार्य में लगाये जाने के लिए बुन्देलखन्ड के एजेन्सी सर्जन मेजर लेजर को दे दी। यह भेंट पोलिटिकल एजेन्ट और मालवा भील कोर्पस

---

1 फाइल संख्या-111/1923 पत्र दिनांक 15 नवम्बर, 1923-दतिया दीवान का पत्र

के कमांडर पर कुछ लोगों द्वारा प्राणघातक हमला किये जाने एवं उनके सुरक्षित बच जाने के कारण दी गयी थी।[1] इस धन का उपयोग मलेहरा में साप्ताहिक डिस्पेन्सरी (दवाखाना) खोलने के लिए किया गया। डिस्पेन्सरी का नाम पोलिटिकल एजेन्ट के नाम पर "फिशर साप्ताहिक डिस्पेन्सरी" रखा गया।

इस डिस्पेन्सरी के बारे में एक समचार पत्र 'अजीजी हिन्द' ने दिनांक 21 फरवरी 1931 को लिखा कि "हम महाराजा और पोलिटिकल एजेन्ट को इस शुभ कार्य के लिये बधाई देते हैं और विश्वास व्यक्त करते हैं कि दूसरे राज्य भी इसी प्रकार आम जनता की भलाई के लिये साप्ताहिक डिस्पेन्सरियों का प्रबन्ध करेंगे।" अजीजी हिन्द ने लिखा कि "यह एक बहुत अच्छा कार्य था और आशा की जाती है कि यह डिस्पेन्सरी छतरपुर के लिये मेजर फिशर एवं मालवा भील कोर्पस द्वारा की गयी सेवाओं की याद में एक वर्ष के बाद प्रतिदिन खोली जायेगी। प्रारम्भ में यह डिस्पेन्सरी हर सोमवार सुबह से शाम तक खुली रहेगी।"[2]

23 फरवरी, 1931 को जबलपुर से प्रकाशित समाचार पत्र में यह खबर छपी कि

---

1 फाइल संख्या 7/1931

2 फाइल संख्या 12-ए/1931 "अजीजी हिन्दी" समाचार पत्र दिनांक 21 फरवरी 1931 का अनुवाद

छतरपुर के महाराजा द्वारा राज्य के अन्दरूनी हिस्से मलेहरा में एक साप्ताहिक डिस्पेन्सरी खोली गयी है जिसमें बीमार लोगों का इलाज किया जायेगा और उन्हें मुफ्त दवा दी जायेगी। हर सोमवार इस शहर में बाजार लगता है इसीलिये यह दवाखाना सोमवार को खुलेगा। यदि किसी मरीज को प्रतिदिन चिकित्सा की आवश्यकता हुई तो उसकी देखभाल का प्रबन्ध छतरपुर के पुरूष एवं महिला अस्पतालों में किया जायेगा।[1]

महिला डा. मिस हुल तथा डाक्टर गुलाब फूल खान (जी.पी. खान) को प्रत्येक सोमवार को इस डिस्पेन्सरी में मरीजों को देखने का कार्य सौंपा गया। जो धनराशि दानस्वरूप मेजर लेजर को दी गयी थी उसके बारे में मेजर लेजर ने 18 फरवरी, 1931 को छतरपुर के दीवान पंडित इकबाल किशन को सूचित किया कि यह धनराशि बढ़कर लगभग 700 रूपये हो गयी थी। इस धन से मलेहरा में खोला जाने वाला यह दवाखाना पर्याप्त दवाईयों एवं अन्य सामान के साथ लगभग एक वर्ष तक चलाया जा सकता है। डा. हुल जो छतरपुर के महिला अस्पताल में कार्यरत है, सप्ताह में एक बार सोमवार को जो बाजार का दिन होता है, यहां आ सकती है।[2] डा. हुल स्त्री और पुरूष दोनों ही मरीजों को देखेगी किन्तु महिलाओं और बच्चों के लिये उनकी सेवा विशेष रूप से महत्वपूर्ण रहेगी। इस

1. फाइल संख्या 7/1931 दिनांक 23 फरवरी 1931 को लोकमत समाचार पत्र में प्रकाशित एक लेख का अनुवाद

2. फाइल संख्या 7/1931

डिस्पेन्सरी के प्रारम्भ हो जाने के फलस्वरूप क्षेत्र के लोगों को सही इलाज एवं राय प्राप्त हो सकेगी। यह डिस्पेन्सरी मलेहरा के साथ-साथ महाराजपुर एवं आस-पास के अन्य गांवों के लोगों के लिये भी लाभप्रद होगी।[1] मेजर लेजर के अनुसार उसे यह डिस्पेन्सरी खोलने के लिये किराया रहित अथवा मामूली किराये पर दो कमरे की एक उचित इमारत की आवश्यकता थी। एक वर्ष के पश्चात राज्य इस डिस्पेन्सरी को अपने खर्च पर चला सकता है या इसके उचित रख रखाव के लिये इसे अमेरिकन फ्रेन्डस मिशन को सौंप सकता है।[2] उसने छतरपुर के दीवान को लिखा कि "मैने इस सम्बन्ध में अमेरिकन फ्रेन्डस मिशन की मिस बार्ड से बातचीत की है जिसने इस कार्य में बहुत रूचि लेते हुए यह आशा व्यक्त की है कि एक वर्ष के पश्चात् उसका मिशन निश्चित रूप से इस दवाखाने का प्रबन्ध कर लेगा।"[3]

इस डिस्पेन्सरी का नाम पोलिटिकल एजेन्ट मेजर फिशर के नाम पर रखने का निर्णय लिया गया था इसलिये पोलिटिकल एजेन्ट ने इस सम्बन्ध में मध्य भारत में गवर्नर जनरल के एजेन्ट के सचिव को डिस्पेन्सरी से सम्बन्धित विवरण देते हुए यह जानना चाहा कि क्या नियमों के अन्तर्गत डिस्पेन्सरी का नाम उसके नाम पर रखा जा सकता है ? गवर्नर

---

1 फाइल संख्या 7/1931

2 -वही-

3 -वही-

जनरल के एजेन्ट द्वारा इस सम्बन्ध में कोई आपत्ति नहीं की गई।[1]

इस डिस्पेन्सरी का उद्घाटन 2 मार्च, 1931 को किया गया। महाराजा छतरपुर यद्यपि इस उद्घाटन समारोह में शामिल नहीं हो सके लेकिन उद्घाटन समारोह में उनका भाषण उनके निजी सचिव द्वारा पढ़ा गया। डिस्पेन्सरी के उद्घाटन समारोह पर महाराजा विश्वनाथ सिंह का यह भाषण इस प्रकार था - "मुझे दु:ख है कि मैं फिशर डिस्पेन्सरी के उद्घाटन समारोह में शामिल नहीं हो सका हूं। मैं मलेहरा में साप्ताहिक डिस्पेन्सरी प्रारम्भ किये जाने के सुझाव के लिये मेजर लेजर को बधाई देता हूं। मुझे खुशी है कि इस डिस्पेन्सरी का नाम मेजर फिशर के नाम पर रखा गया है। यद्यपि आज यह एक छोटा सा कार्य प्रतीत होता है किन्तु मैं आशा करता हूं कि यह डिस्पेन्सरी मेजर फिशर द्वारा इस राज्य के लिये की गई सेवाओं तथा ईश्वरीय महिमा के फलस्वरूप उनकी जान बच जाने की यादगार का एक स्थायी प्रतीक बन जायेगी एवं अत्यधिक उपयोगी होगी। मलेहरा के लोग भाग्यशाली हैं जिन्हें शहर के बच्चों एवं महिलाओं के लाभ के लिये इस प्रकार की डिस्पेन्सरी प्राप्त हुई है। महिलाओं एवं बच्चों की भलाई के कार्य को कोई भी राज्य अनदेखा नहीं कर सकता । मुझे खुशी है कि इस डिस्पेन्सरी के प्रारम्भ होने से राज्य में उपयोगी कार्य को बढ़ावा मिला है। मैं एक बार फिर मेजर फिशर तथा उन महिलाओं और अधिकारियों को धन्यवाद देता हूं जिन्होंने अपनी असुविधाओं के बावजूद मेरे राज्य के लिये

---

1 फाइल संख्या 12ए/1931-पत्र संख्या 301-ए दिनांक 26/28 फरवरी, 1931

इतनी मेहनत की। मैं इस संस्था की सफलता के लिये पूरा ध्यान दूंगा।", महाराजा के इस भाषण के बाद जो उनके निजी सचिव द्वारा पढ़ा गया, मेजर फिशर द्वारा इस डिस्पेन्सरी का उद्‌घाटन किया गया।

शीघ्र ही यह दवाखाना स्थानीय लोगों में बहुत प्रसिद्ध हो गया। 1 मई, 1931 को डा. ई. रूथ हुल ने एजेन्सी सर्जन मेजर लेजर को अपने एक पत्र में लिखा कि यहां मरीजों की कमी न थी। उन्हें दोपहर तक लगभग 150 से 200 मरीज देखने होते थे। एक दिन में अधिक से अधिक मरीजों की संख्या लगभग 217 थी जिसमें स्त्री पुरूष तथा बच्चे सभी शामिल थे।[2] इस प्रकार धीरे-धीरे इस डिस्पेन्सरी की लोकप्रियता बढ़ती गई। डा. हुल द्वारा प्रारम्भ की गई चिकित्सा सेवा का परिणाम यह भी हुआ कि यहां शीघ्र ही इसाई समर्थकों की संख्या बढ़ने लगी। सम्भवत: चिकित्सा सेवा से प्रेरित होकर लोग इसाई मत स्वीकार करने लगे थे ।

इसी बीच डा. हुल 1931 के मध्य डाक्टरी के प्रशिक्षण से सम्बन्धित एक नये कोर्स के लिये कलकत्ता चली गईं। उनकी अनुपस्थिति में एलेना काकिन्स और नैल लेविस यहां का कार्य देखती रहीं। इन दोनों महिलाओं को आस-पास के गांवों में जाकर भी दवायें इत्यादि देनी पड़ती थी। अत: थोड़े ही दिनों पश्चात् मिस बार्ड की कार इन महिलाओं को

---

1 फाइल संख्या 12-ए/1931

2 फाइल संख्या 7/1931

प्राप्त हो गयी जिससे उन्हें आने-जाने में सुविधा हो गयी।[1]

1932 तक इस डिस्पेन्सरी का एक वर्ष पूरा हो रहा था। इसी बीच मेजर लेजर के स्थान पर एजेन्सी एर्जन के पद पर आर. हे. (R. Hay.) की नियुक्ति हो चुकी थी। छतरपुर के दीवान इकबाल किशन के स्थान पर पंडित चम्पाराम मिश्रा दीवान का कार्यभार संभाल चुके थे। 29 फरवरी 1932 को एजेन्सी सर्जन ने दीवान को सूचित किया कि वह 2 मार्च 1932 को छतरपुर आना चाहते हैं ताकि 1 अप्रैल, 1932 से किये जाने वाले फिशर दवाखाने के प्रबन्ध एवं खर्च इत्यादि के सम्बन्ध में बातचीत की जा सके।[2] 2 मार्च 1932 को मलेहरा की इस डिस्पेन्सरी के सम्बन्ध में हुई बातचीत में यह निर्णय लिया गया कि तत्कालिक आर्थिक कठिनाइयों के बावजूद राज्य द्वारा भविष्य में इस दवाखाने को चलाये जाने का प्रबन्ध किया जायेगा।[3] डा. हुल ने महिला मरीजों को देखने के लिये सप्ताह में एक बार इस डिस्पेन्सरी में आना जारी रखने की स्वीकृति दे दी एवं उसके आने-जाने का खर्च मिशन द्वारा दिया जाना स्वीकार कर लिया गया।[4] चूंकि फिशर डिस्पेन्सरी कोष को एक विशेष उद्देश्य के लिये बनाया गया था इसलिये एजेन्सी एर्जन हे ने सुझाव दिया कि इस

---

1 फाइल संख्या 7/1931

2 फाइल संख्या 7/1931-पत्र संख्या 785 दिनांक 29 मार्च 1932

3 फाइल संख्या 7/1931

4 -वही-

कोष से मलेहरा डिस्पेन्सरी के लिये जो भी औजार मशीनें इत्यादि खरीदीं गयी थीं वे इसी डिस्पेन्सरी द्वारा प्रयोग के लिये रखे जायें एवं उन्हें राज्य की दूसरी डिस्पेन्सरियों को न दिया जाये।[1] इस समय तक फिशर डिस्पेन्सरी कोष में बकाया धनराशि केवल 54 रूपये रह गयी थी जिसे एजेन्सी सर्जन ने दीवान को भिजवा दिया ताकि फिशर डिस्पेन्सरी के लिये आगामी वर्ष में इसका उपयोग किया जा सके। यह भी तय किया गया कि भविष्य में दवाईयां तथा डिस्पेन्सरी के अन्य सामान का प्रबन्ध डिस्पेन्सरी के डाक्टर के सुपुर्द कर दिया जाये। डिस्पेन्सरी शुरू होने के प्रथम वर्ष में इसका प्रबन्ध चूंकि 'फिशर कोष' से किया जाता था इसलिये प्रथम वर्ष में दवाईयां एवं अन्य सामान मंगाने के लिये एजेन्सी सर्जन की अनुमति लेनी पड़ती थी जिसकी अब कोई आवश्यकता नहीं थी।

इस प्रकार डा. हुल की सेवाओं के परिणामस्वरूप मलेहरा में यह डिस्पेन्सरी शुरू की जा सकी। समय-समय पर एजेन्सी सर्जन द्वारा अन्य डिस्पेन्सरियों एवं अस्पतालों की भांति ही इस डिस्पेन्सरी का भी निरीक्षण किया जाता था। लेकिन 8 फरवरी 1934 को किये गये निरीक्षण के दौरान एजेन्सी सर्जन ने इस डिस्पेन्सरी के रख रखाव पर अप्रसन्नता व्यक्त की।[2] इस निरीक्षण की रिपोर्ट में एजेन्सी सर्जन ने लिखा कि "उसने देखा कि तश्तरियां एवं कटोरों पर धूल जमी हुई थी जिसे दो या तीन दिन से साफ नहीं किया गया

---

1. फाइल संख्या 7/1931 पत्र संख्या 785
2. फाइल संख्या 7/1931-पत्र संख्या 512/7-31 दिनांक 14 फरवरी, 1934

था। मलेहरा और महराजपुर दोनों ही स्थानों पर डिस्पेन्सरियों का प्रबन्ध अस्वच्छ और गन्दा था। उसे बेहतर किया जा सकता था। उसने देखा कि भंडार में पुरानी दवाईयां बड़ी मात्रा में थीं और ऐसा प्रतीत होता था कि डाक्टर ने उन्हें प्रयोग नहीं किया बल्कि और दवाईयां मंगवायी जाती रहीं। यह धन का अनावश्यक दुरूपयोग था। नई दवायें मंगवाने से पहले पुरानी दवाओं का प्रयोग किया जाना चाहिये था। अगर वे दवायें प्रभावी नहीं थीं तो उन्हें किसी जिम्मेदार व्यक्ति के सामने नष्ट किया जाना चाहिये था।",

एजेन्सी सर्जन की इस रिपोर्ट से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि 1934 तक संभवतः डिस्पेन्सरी के रख रखाव में लापरवाही बरती जाने लगी थी। यह भी सम्भव है कि धन के अभाव के कारण अब राज्य द्वारा इस डिस्पेन्सरी के रख रखाव की ओर उचित ध्यान न दिया जा रहा हो।

**हरपालपुर में डिस्पेन्सरी :**

अपने क्षेत्र की जनता को चिकित्सा सुविधायें उपलब्ध कराये जाने के उद्देश्य से अलीपुरा के महाराजा ने अमेरिकन फ्रैन्डस मिशन की इसाई मिशनरियों को हरपालपुर में डिस्पेन्सरी खोलने के लिये कुछ भूमि प्रदान की थी।

13 जनवरी, 1905 को अलीपुरा के राजा ने बुन्देलखन्ड के पोलिटिकल एजेन्ट डब्ल्यू.ई.जारडीन को सूचित किया कि उसने नौगांव के फ्रैन्डस मिशन को हरपालपुर में

---

1 फाइल संख्या 7/1931

कुछ भूमि उसके द्वारा मांगे जाने पर एक मकान बनाने हेतु मुफ्त दे दी है । यह भूमि हरपालपुर रेलवे स्टेशन के पास थी।[1] राजा द्वारा यह भी बताया गया कि यह भूमि इस शर्त पर दी गयी है कि अगर भविष्य में मिशन द्वारा इस इमारत का प्रयोग उस उद्देश्य के लिये नहीं किया गया जिसके लिये यह बनाई जायेगी अथवा मिशन उसे किसी दूसरे उद्देश्य के लिये प्रयोग करना चाहे अथवा मिशन उसे बेचना चाहेगा तब मिशन को इस भूमि के लिये उस समय लागू राजमूल्य के आधार पर हर्जाना देना होगा।[2] अलीपुरा के राजा को विश्वास था कि फ्रेन्डस मिशन की शाखा हरपालपुर में स्थापित हो जाने पर उसके राज्य के निर्धन व्यक्तियों को बड़ी सहायता मिलेगी क्योंकि यह मिशन चिकित्सा और निःशुल्क शिक्षा का कार्य कर रहा था।[3]

इस सम्बन्ध में पोलिटिकल एजेन्ट के कार्यालय द्वारा यह विचार व्यक्त किया गया कि अमेरिकन फ्रैन्डस मिशन पहला मिशन है जिसने बुन्देलखण्ड में 1899 ई. में कदम रखा है। यद्यपि इस मिशन को इस प्रकार भूमि दिये जाने के सम्बन्ध में कोई नियम नहीं थे

---

1 फाइल संख्या 105/1905

2 -वही-

3 -वही-

किन्तु कार्यालय द्वारा पोलिटिकल एजेन्ट को यह सुझाव दिया गया कि यदि मिशन के साथ एक लिखित समझौता किया जाये और गवर्नर जनरल के एजेन्ट की अनुमति ले ली जाये तो यह सभी के हित में होगा।

यद्यपि पोलिटिकल एजेन्ट हरपालपुर में डिस्पेन्सरी प्रारम्भ करने के पक्ष में था किन्तु उसे इस बात पर आपत्ति थी कि राजा द्वारा फ्रैन्डस मिशन को भूमि दिये जाने से पूर्व उससे विचार विमर्श नहीं किया गया था। फिर भी उसका विचार था कि फ्रैन्डस मिशन की शाखा हरपालपुर में खुल जाने से कोई हानि न थी बल्कि यह एक अच्छा कार्य था। उसके अनुसार यदि मिशन द्वारा कोई परेशानी पैदा की जायेगी तो राजा उनसे भूमि वापिस ले सकता था। अतः किसी लिखित समझौते की आवश्यकता न थी किन्तु वह यह चाहता था कि इस प्रकार मिशनरियों को भूमि दिये जाने सम्बन्धी महत्वपूर्ण कार्यों की पूर्व सूचना पोलिटिकल एजेन्ट को अवश्य दी जानी चाहिये थी।[1]

अलीपुरा के महाराजा ने हरपालपुर में मिशन द्वारा बनाई जाने वाली इस इमारत के संदर्भ में पोलिटिकल एजेन्ट को बताया कि यह भूमि मिशन को लीज पर नहीं दी गई है बल्कि उसने मिशन से इस सम्बन्ध में एक लिखित समझौता कर लिया है। मिशन को दी जाने वाली भूमि लगभग 250x150 वर्ग फुट थी। राजा ने पोलिटिकल एजेन्ट को लिखा कि वह हरपालपुर में व्यापारिक गतिविधियां बढ़ाने के उद्देश्य से वहां इमारत बनाने के लिये

---

1 फाइल संख्या 105/1905-पत्र संख्या 575 सी दिनांक 30 जनवरी, 1905

किसी को भी, उसके द्वारा मांगे जाने पर इस प्रकार भूमि दे देता है। फिर भी उसने विश्वास दिलाया कि मिशन के सम्बन्ध में वह पोलिटिकल एजेन्ट के निर्देशानुसार ही कार्य करेगा।[1]

अमेरिकन फ्रैन्डस मिशन की महिला मिशनरी मिस डी. फिशलर द्वारा हरपालपुर में फ्रैन्डस मिशन का यह केन्द्र स्थापित करने का कार्य किया जा रहा था। मिशन द्वारा बनायी जाने वाली यह इमारत यहां एक डिस्पेन्सरी खोलने के लिये थी। डिस्पेन्सरी के साथ ही डाक्टर के रहने के लिये आवास की भी व्यवस्था थी। पोलिटिकल एजेन्ट के निर्देश पर अलीपुरा के राजा ने मिशन की सुपरिन्टेन्डेंट को लिखा कि फिलहाल उस भूमि पर तब तक कार्य प्रारम्भ ना किया जाये जब तक उसे इस सम्बन्ध में पुनः सूचित न किया जाये।[2] लेकिन मिस डेलिया फिशलर हरपालपुर में यह केन्द्र स्थापित किये जाने के लिये बहुत उत्सुक थी। अतः उसने इस भूमि के सम्बन्ध में पोलिटिकल एजेन्ट जारडीन को लिखा कि "आपसे पूर्व अधिकारी ने मुझे बताया था कि भूमि के लिये अलीपुरा के राजा की अनुमति ही पर्याप्त थी अतः अलीपुरा के राजा की अनुमति प्राप्त हो जाने पर मैंने समझा कि इस भूमि पर इमारत इत्यादि बनाने के लिये यह अनुमति पर्याप्त थी। इसीलिये मैंने इमारत की नींव भरने एवं अन्य सामग्री एकत्र करने का कार्य शुरू कर दिया था। किन्तु दो सप्ताह पहले राजा द्वारा मुझे सूचित किया गया कि इस कार्य के लिये आपकी अनुमति की

---

1 फाइल संख्या 105/1905-पत्र संख्या 20 दिनांक 12 फरवरी, 1905

2 -वही-

आवश्यकता है और तब से मैंने यह मामला सुलझने तक सारा कार्य बन्द करवा दिया है।"[1] उसने पोलिटिकल को यह भी लिखा कि "वर्षा शुरू होने से पहले हम इस इमारत में आ जाने के लिए उत्सुक हैं और समय कम होने के कारण आपसे प्रार्थना है कि इस सम्बन्ध में शीघ्र अनुमति देने की कृपा करें।"[2]

पोलिटिकल एजेन्ट द्वारा शीघ्र ही इस कार्य की अनुमति दे दी गई। गवर्नर जनरल के एजेन्ट को भी अमेरिकन फ्रैन्डस मिशन द्वारा हरपालपुर में केन्द्र स्थापित किये जाने के सम्बन्ध में कोई आपत्ति नहीं थी। इस प्रकार 1905 ई. में अमेरिकन फ्रैन्डस मिशन ने हरपालपुर में अपना केन्द्र स्थापित किया।

हरपालपुर की डिस्पेन्सरी का कार्य प्रारम्भ करने के उद्देश्य से विलियम प्रसाद को आगरा भेज कर तीन वर्ष की फार्मेसी की ट्रेनिंग करायी गयी। ट्रेनिंग प्राप्त करने के बाद विलियम प्रसाद ने हरपालपुर डिस्पेन्सरी की देख रेख का कार्य आरम्भ कर दिया किन्तु दुर्भाग्य से 1911 ई. से लेकर लगभग 1919 ई. के 8 वर्ष इस मिशन केन्द्र के लिये कठिन समय था। ईस्थर बार्ड जो नौगांव से एक नर्स के रूप में आयी थी वह बीमारी के कारण 13 फरवरी 1911 को अवकाश लेकर वापिस चली गई। इसके परिणामस्वरूप हरपालपुर की डिस्पेन्सरी बन्द हो गयी किन्तु 1912 ई. में जब विलियम प्रसाद फार्मेसी की ट्रेनिंग करके

---

1 फाइल संख्या 105/1905

2 -वही-

हरपालपुर वापिस आया तो उसने इस डिस्पेन्सरी के कार्य को पुनः प्रारम्भ किया। प्रतिदिन औसत लगभग 60 रोगी हरपालपुर डिस्पेन्सरी में आते थे। किन्तु प्रथम विश्व युद्ध प्रारम्भ होने पर इस मिशन को प्राप्त होने वाली सहायता बन्द हो गयी थी जिसका प्रभाव हरपालपुर की डिस्पेन्सरी पर भी पड़ा । यहां के कर्मचारियों की संख्या में भी कमी करनी पड़ी। 1915 ई. के अन्त तक पुनः इन मिशनरियों को अमेरिकी बोर्ड से सहायता प्राप्त होने लगी थी। इस सहायता से हरपालपुर में रोगियों की देखरेख तथा उनके शान्ति विश्राम के लिये दो कमरों के निर्माण का कार्य आरम्भ किया गया। इससे पहले हरपालपुर में रोगियों को दवा देकर वापिस घरों को लौटा दिया जाता था क्योंकि वहां रोगियों के रहने की कोई व्यवस्था नहीं थी।

इस प्रकार इस डिस्पेन्सरी के लिये अलीपुरा के राजा द्वारा उदारतापूर्वक आर्थिक सहायता प्रदान की गई और इसके फलस्वरूप क्षेत्र के आस-पास के लोगों को चिकित्सा सुविधाओं का लाभ प्राप्त हुआ ।

**<u>बघलेखन्ड एजेन्सी सर्जन के पद का बुन्देलखन्ड एजेन्सी सर्जन के पद में विलय</u> :-**

सन् 1921 में ब्रिटिश सरकार द्वारा यह निर्णय लिया गया कि बघेलखन्ड में एजेन्सी सर्जन का पद बनाये रखने की कोई आवश्यकता नहीं थी लेकिन रीवा के युवा महाराज को अभी नाबालिग होने के कारण अपने अधिकार प्राप्त नहीं थे इसलिये सरकार द्वारा यह निर्देश दिये गये कि बघेलखन्ड में एजेन्सी सर्जन का पद समाप्त करके उसे बुन्देलखन्ड

एजेन्सी सर्जन के पद में मिला दिया जाये तथा रीवा दरबार को अपना चिकित्सा अधिकारी नियुक्त करने की अनुमति दे दी जाये। ऐसा करने पर रीवा दरबार द्वारा बघेलखन्ड में एजेन्सी सर्जन के कार्यालय के लिये दिये जाने वाले 12000 रूपये प्रतिवर्ष के खर्च से उसे मुक्त कर दिया जायेगा। इसके अतिरिक्त बघेलखण्ड पोलिटिकल एजेन्ट तथा उसके कार्यालय द्वारा सतना एवं बघलेखन्ड में छोटे राज्यों से सम्बन्धित किए जाने वाले चिकित्सा सम्बन्धी सभी कार्य बुन्देलखन्ड के एजेन्सी सर्जन को दे दिये जायेंगे। इस प्रकार एजेन्सी सर्जन बुन्देलखन्ड को कुछ अतिरिक्त कार्य करना होगा जिसके लिये उसे 150 रूपये प्रतिमाह अतिरिक्त भत्ता दिये जाने का निर्णय लिया गया,इस 150/-रूपये प्रतिमाह में से 25 प्रतिमाह मेहर (Maihar) द्वारा तथा 25 रूपये प्रतिमाह नागौर राज्य द्वारा दिया जाना स्वीकार किया गया।[1]

इसके अतिरिक्त बुन्देलखन्ड में एजेन्सी सर्जन को रीवा राज्य द्वारा इस राज्य से सम्बन्धित चिकित्सा कार्यों की देखरेख के लिये 300 रूपये प्रतिमाह दिये जाने का निर्णय भी लिया गया ।[2] यद्यपि दरबार द्वारा अपना चिकित्सा अधिकारी नियुक्त करने की योजना थी किन्तु एजेन्सी सर्जन बुन्देलखन्ड को 300 रूपये प्रतिमाह की यह राशि तब तक दिये जाने का निर्णय लिया गया जब तक कि अवयस्क महाराजा वयस्क होकर राज्य का

---

1 फाइल संख्या 116/1921

2 -वही-

प्रशासन न सम्भाल ले। महाराजा के वयस्क हो जाने पर इस प्रबन्ध पर पुर्नविचार किये निर्णय भी लिया गया।[1]

इस प्रकार ब्रिटिश सरकार द्वारा बघेलखन्ड में एजेन्सी सर्जन के पद को समाप्त कर दिया गया । जिसके स्थान पर उपरोक्त नये प्रबन्ध 1 अक्तूबर 1921 से लागू किये गये। सरकार के इस आदेश के परिणामस्वरूप बघेलखन्ड में एजेन्सी सर्जन मेजर पियरपोयान्ट (Major Pierpoint) ने अपना कार्यभार सतना में सब असिस्टेन्ट सर्जन श्री वी.एन. शवाद्धे (V.N. Shvade) को सौंप दिया। इस तरह बघेलखन्ड के एजेन्सी सर्जन के पद को एजेन्सी सर्जन बुन्देलखन्ड में विलय कर दिया गया।

1921 में बघेलखन्ड एजेन्सी सर्जन की नियुक्ति समाप्त कर दिये जाने के पश्चात् रीवा राज्य द्वारा अपना एक राज्य सर्जन तथा मुख्य चिकित्सा अधिकारी नियुक्त किया गया। एजेन्सी सर्जन बुन्देलखन्ड को बघेलखन्ड का अतिरिक्त कार्य करने के लिये केन्द्रीय राजस्व से प्रतिमाह 100 रूपये दिये जाते थे । इसके अतिरिक्त मेहर तथा नागौर राज्यों में से प्रत्येक द्वारा प्रतिमाह 25रूपये दिये जाते थे। यह प्रबन्ध सन् 1932 तक चलता रहा लेकिन अब मेहर राज्य ने 25 रूपये प्रतिमाह देना बन्द कर दिया था।

सन् 1932 में बघेलखन्ड एजेन्सी डिस्पेन्सरी को बन्द कर दिया गया था इसलिये यह सुझाव दिया गया कि एजेन्सी सर्जन को दिये जाने वाले 100 रूपये प्रतिमाह भी बन्द

---

1 फाइल संख्या 116/1921

कर दिये जाने चाहिये । लेकिन बुन्देलखन्ड एजेन्सी सर्जन को 100 रूपये प्रतिमाह बघेलखन्ड एजेन्सी सर्जन के सभी कार्यों की देखभाल के लिये दिये जाते थे। एजेन्सी डिस्पेन्सरी की देखरेख का कार्य उसके कार्यों में से एक था । अतः इस सुझाव को कार्यान्वित करना इतना सरल न था ।

बघेलखन्ड एजेन्सी सर्जन के प्रमुख कार्य निम्नलिखित थे :-

(i) रीवा राज्य को छोड़कर अन्य राज्यों के चिकित्सा विभागों की देखरेख करना । यह राज्य थे-मेहर, नागौड़, चौबे जागीर तथा जासो । रीवा राज्य ने अपने चिकित्सा कार्यों के लिये एक सर्जन एवं प्रमुख चिकित्सा अधिकारी की नियुक्ति कर ली थी।

(ii) टीकाकरण कार्यों का निरीक्षण, बघेलखन्ड एजेन्सी के राज्यों में टीकाकरण कार्यों के लिये 5 टीकाकरण कर्मचारी थे जिन्हें एक विशेष फन्ड से वेतन दिया जाता था । यह विशेष फन्ड बरौन्दा, कोठी, चौबे जागीरें तथा सोहावल राज्यों द्वारा दिये गये चन्दे से बनाया गया था। एजेन्सी सर्जन का इन कर्मचारियों पर पूरा नियंत्रण था एवं इस विशेष फन्ड की देखरेख का कार्य भी एजेन्सी सर्जन द्वारा ही किया जाता था।

इस प्रकार एजेन्सी सर्जन का नागौड़, चौबे जागीरें तथा जासो के चिकित्सा विभागों पर पूर्ण नियंत्रण था । वह इन राज्यों के चिकित्सा विभागों में कर्मचारियों की नियुक्ति करता था, चिकित्सा सम्बन्धी उपकरण/दवाइयों आदि की आवश्यकता के अनुरोध की छानबीन करता था तथा बिलों का भुगतान भी उसकी स्वीकृति से

किया जाता था । टीकाकरण सम्बन्धी 5 कर्मचारियों को नियुक्ति इन राज्यों में टीकाकरण कार्य बन्द हो जाने के बाद पोलिटिकल एजेन्ट द्वारा कुछ वर्ष पूर्व ही की गयी थी जिन्हें विशेष फन्ड से वेतन दिया जाता था । टीकाकरण कार्यों की देखरेख एजेन्सी सर्जन का एक प्रमुख कार्य था।

(iii) रीवा राज्य को छोड़कर एजेन्सी के अन्य राज्यों के पब्लिक हैल्थ विभाग की देखरेख का कार्य भी एजेन्सी सर्जन द्वारा किया जाता था।

पब्लिक हैल्थ विभागों की देखरेख के अन्तर्गत एजेन्सी सर्जन द्वारा इन राज्यों में बीमारियों को फैलने से रोकने सम्बन्धी सभी आवश्यक कार्य किये जाते थे । महामारियों की रोकथाम सम्बन्धी आवश्यक कार्य एजेन्सी सर्जन की देखरेख में किये जाते थे। एजेन्सी सर्जन के कार्यालय द्वारा अस्पतालों में जन्म एवं मृत्यु सम्बन्धित आंकड़े, महामारियों तथा मुख्य बीमारियों सम्बन्धी सूचना एकत्र की जाती थी एवं इससे सम्बन्धित रिपोर्ट तैयार की जाती थी।

अभी तक इनमें से कुछ राज्यों में मूलभूत चिकित्सा सुविधायें भी उपलब्ध नहीं थीं। यद्यपि 5 कर्मचारी टीकाकरण कार्यों के लिये थे लेकिन क्षेत्र के एक बहुत बड़ा भाग में चिकित्सा सुविधाओं का सर्वथा अभाव था । सन् 1932 तक निम्नलिखित राज्यों में यह

सुविधाएं बिल्कुल नहीं थीं :[1]

| | क्षेत्रफल वर्गमील | जनसंख्या |
|---|---|---|
| बरौन्दा | 218 | 16,071 |
| कोठी | 169 | 21,424 |
| सोहावल | 213 | 42,192 |
| कुल | 600 | 79,681 |

इस प्रकार यद्यपि सरकार द्वारा चिकित्सा के क्षेत्र में कुछ प्रयास किये गये थे किन्तु फिर भी चिकित्सा की स्थिति बहुत दयनीय थी । क्षेत्र का लगभग 600 वर्ग मील का भाग ऐसा था जिसकी जनसंख्या लगभग 80,000 थी लेकिन इस जनसंख्या के लिये कोई चिकित्सा उपलब्ध नही थी । इन क्षेत्रों में महामारी कभी भी फैल सकती थी क्योंकि मूलभूत चिकित्सा का अभाव था । लेकिन चिन्ता की सबसे बड़ी बात यह थी कि महामारी इत्यादि फैल जाने के बाद भी उसके विषय में एजेन्सी सर्जन को सूचित करने की सुविधायें भी उपलब्ध नहीं थीं । यद्यपि इन राज्यों के मध्य चिकित्सा कार्यों के लिये एक मात्र साधन एजेन्सी सर्जन था लेकिन यह भी सर्वथा अपर्याप्त था।

---

1 फाइल संख्या 116/1921

क्षेत्र के इतने बड़े भूभाग के चिकित्सा की मूलभूत सुविधाओं से सर्वथा वंचित होने के कारण आसपास के राज्यों एवं मध्य भारत के अन्य क्षेत्रों में महामारी फैलने का खतरा था । एक मात्र उपाय के रूप में टीकाकरण कर्मचारियों द्वारा इस क्षेत्र के निवासियों से सम्पर्क बनाये रखने का प्रयास किया जाता था ताकि महामारियों पर नियंत्रण रखा जा सके।

बघेलखन्ड के इन राज्यों को अभी अपने चिकित्सा कार्यों के लिये एजेन्सी सर्जन द्वारा देखरेख की आवश्यकता थी । यहां चिकित्सा सुविधाओं का पूर्णतः अभाव होने का एक मुख्य कारण इन राज्यों की निर्धनता थी । यह अपनी गरीबी के कारण अन्य बड़े राज्यों की भांति अपने चिकित्सा विभाग स्थापित नहीं कर सकते थे। बघेलखन्ड एजेन्सी का यह क्षेत्र अन्य राज्यों की तुलना में 50 वर्ष पिछड़ा कहा जा सकता था। अतः यदि एजेन्सी सर्जन बुन्देलखन्ड को यहां के चिकित्सा कार्यों की देखभाल से मुक्त कर दिया जाये तो एक गम्भीर समस्या उत्पन्न हो सकती थी । यह न तो इन राज्यों के हित में होता और न ही आसपास के राज्यों के लिये हितकर होता क्योंकि एजेन्सी सर्जन द्वारा टीकाकरण प्रयासों द्वारा क्षेत्र में महामारियों की रोकथाम के जो उपाय किये जा रहे थे वह भी समाप्त हो जाने की आशंका थी । अतः 1932 में यह निर्णय लिया गया कि क्षेत्र के हित को देखते हुए एजेन्सी सर्जन बुन्देलखन्ड को बघेलखन्ड क्षेत्र के कार्यों के लिये दिये जा रहे 100 रूपये प्रतिमाह की राशि को समाप्त न किया जाये।

उपरोक्त विवेचन से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि ब्रिटिश सरकार बुन्देलखण्ड क्षेत्र में चिकित्सा सुविधाओं की कमी से अनभिज्ञ नहीं थी । सरकार द्वारा नौगांव में अस्पताल की स्थापना एवं इसका विस्तार चिकित्सा के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण उपलब्धि कही जा सकती है । इसके अतिरिक्त विभिन्न राज्यों द्वारा भी अपने नागरिकों को मूलभूत चिकित्सा सुविधाएं उपलब्ध कराने के उद्देश्य से डिस्पेंसरियां इत्यादि खोली गईं किन्तु यह सुविधाएं निश्चय ही पर्याप्त नहीं थीं । कुछ बड़े राज्यों जैसे दतिया आदि द्वारा लोगों की आवश्यकताओं के अनुरूप अपने यहां अस्पताल/डिस्पेंसरी आदि खोली गईं किन्तु बुन्देलखण्ड के बड़े भाग में चिकित्सा सुविधाओं का अभाव था । जिन डिस्पेंसरियों की स्थापना की गई थी धन के अभाव में उनका रखरखाव ठीक से नहीं हो सकता था जिससे उनकी स्थिति बिगड़ने लगी थी । यदि ब्रिटिश अधिकारियों द्वारा चिकित्सा सुविधाएं उपलब्ध कराने के संबंध में उचित ध्यान दिया जाता तो निश्चित रूप से लोगों की स्वास्थ्य संबंधी कठिनाइयों को और कम किया जा सकता था ।

-------------

## अध्याय पंचम

## बुन्देलखण्ड में न्याय व्यवस्था

- सुनोरी चोरों के गिरोह तथा उनसे निबटने के उपाय
- बुन्देलखण्ड क्षेत्र में डकैती
- डकैती रोकने के उपाय
- नशीले पदार्थों की तस्करी
- पुलिस व्यवस्था
- नौगांव जेल का प्रबन्ध
- एजेंसी न्यायालयों में फीस संबंधी नियम

## बुन्देलखण्ड में न्याय व्यवस्था

किसी भी क्षेत्र की न्याय व्यवस्था क्षेत्र की प्रगति में महत्वपूर्ण स्थान रखती है। समाज में अपराधों की कमी एक सुदृढ़ न्याय व्यवस्था और एक सुदृढ़ समाज का द्योतक है। 19वीं शताब्दी में बुन्देलखण्ड क्षेत्र में अपराधों की क्या स्थिति थी, सरकार द्वारा इन अपराधों को रोकने के लिए क्या उपाय किए गए थे ? क्षेत्र में पुलिस व्यवस्था किस प्रकार की थी ? क्या क्षेत्र की पुलिस को सुदृढ़ करने के लिए सरकार द्वारा कोई कदम उठाए गए? क्षेत्र में जेलों के सुधार के लिए क्या नियम बनाए गए ? विभिन्न मुकदमों के फैसलों के लिए कौन-कौन से न्यायालय थे, उनमें फीस संबंधी क्या नियम लागू किए गए थे ? ऐसे ही कुछ प्रश्नों का उत्तर जानने का प्रयास हमने इस अध्याय में किया है ।

### सुनोरी चोरों के गिरोह तथा उनसे निबटने के उपाय :

बुन्देलखण्ड में सुनोरी चोरों के गिरोह लगभग पूरे क्षेत्र में फैले हुए थे । यह एक समुदाय अथवा जाति थी जो सुनोरी अथवा उठाईगिरी कहलाते थे । इन्हें भाट या भामपटी या छिपती अथवा धोजी भी कहा जाता था । यह जेबकतरे भी कहलाते थे । इस प्रकार यह जाति विभिन्न नामों से प्रसिद्ध थी एवं बुन्देलखण्ड में कई पीढ़ियों से पाई जाती थी ।[1]

सन् 1867 में जिला सुपरीटेन्डेंट आफ पुलिस, नागपुर ने इंस्पेक्टर जनरल आफ

---

1 फाइल संख्या 2/1867-68 .

पुलिस, मध्य प्रान्त नागपुर को इनके बारे में जानकारी देते हुए लिखा था।[1] कि इस जाति के नींव डालने वाले के बारे में अधिक जानकारी नहीं है लेकिन प्रारम्भ में एक सच्चा सुनोरी अवश्य ही कोई ब्राह्मण रहा होगा । इन्होंने निम्न जाति के लोगों को अपनी इस कला में प्रवीण बनाया और फिर उन्हें अपने इस पेशे में शामिल कर लिया । इस प्रकार इस जाति का विकास हुआ । बाद में इसने विभिन्न रूप धारण कर लिए ।

यह गिरोह चोरी करते थे । लेकिन इस कार्य के लिए भी गिरोह कई स्तर पर विभाजित होता था । प्रत्येक गिरोह का एक सिरगना और एक मुख्तयार होता था । यह गिरोह में क्रमशः प्रथम एवं द्वितीय स्थान रखते थे । प्रारम्भ में 'सिरगना' और 'मुख्तयार' ब्राह्मण होते थे, लेकिन बाद में निम्न जाति के व्यक्तियों ने, जो स्वयं निपुण चोर हो गए थे, उन्होंने इन गिरोहों में सिरगना और मुख्तयार का पद प्राप्त कर लिया था ।

सिरगना गिरोह का मुख्यिा होता था । गिरोह 'नाल' अथवा छोटे-छोटे समूह में विभक्त था जिसमें प्रत्येक का मुखिया मुख्तयार होता था।[2] एक रिपोर्ट के अनुसार 1867

---

1 फाइल संख्या 1/1867-जिला सुपरिन्टेंडेट आफ पुलिस नागपुर का इंस्पेक्टर जनरल आफ पुलिस, मध्य प्रांत नागपुर को 24 जुलाई, 1867 का पत्र ।

2 फाइल संख्या 1/1867 -वही-

में केवल टिहरी जिले में सुनोरी लोगों की संख्या इस प्रकार थीं :-

| | |
|---|---|
| सिरगना और मुख्तयार | 100 से 150 |
| ब्राह्मण सुनोरी | 200 |
| जाति के अन्य सदस्य | 1500 |

ललितपुर जिले में इस समय लगभग 300 से 400 सुनोरी थे । ब्राह्मण जाति के सुनोरी चोरों की संख्या धीरे-धीरे कम हो रही थी ।

टिहरी राज्य में सुनोरी जाति के लोग मुख्यतः निम्नलिखित गांवों में पाये जाते थे :-

1. छुरकुआ
2. हरपुरा
3. भनोरा
4. सुजानपुरा
5. जमरेर
6. पुरहार
7. तेनदारी
8. कुरमारी
9. पन्डेर
10. कारी

11. उमरपुर

12. लहर

इन 12 गांवों को मिलाने से इस क्षेत्र का नाम बारागांव अथा बड़ागांव पड़ा । क्षेत्र के अन्य गांवों में भी सुनोरी रहते थे किन्तु इनमें उनकी संख्या अधिक नहीं थी ।

ललितपुर जिले में सुनोरी मुख्यतः निम्न गांवों में पाये जाते थे :

1. बानपुर

2. बीड़

3. उड़ायल

4. गंगासागर

5. उदयपुरा

6. सूरी

टिहरी जिले में सुनोरी गिरोहों के तीन मुख्य सिरगना थे जिनके नाम इस प्रकार थे - छत्तर दूलिया - छुरकुआ का लम्बरदार, नन्हें हिरानिया - छुरकुआ का लम्बरदार और जमरेर का बिहारी कोइया । ये सिरगना गिरोह के साथ चोरी के अभियान पर नहीं जाते थे बल्कि चोरी का माल प्राप्त करने के लिए घर पर रहते थे और इस माल में से अपना हिस्सा रख लेते थे । एक रिपोर्ट के अनुसार[1] ऐसा कहा जाता है कि ये सिरगना चोरी की गई

---

1 फाइल संख्या 1/1867

वस्तुओं में उपहार देने लायक महत्वपूर्ण वस्तु होने पर उसे टिहरी सरकार को भेंट कर देते थे।[1]

सुनोरियों द्वारा चोरी की गई सम्पत्ति टिहरी जिले में जिन व्यक्तियों को बेची जाती थी उनमें प्रमुख थे :- जवाहर सिंह बनिया, देवजी सिंघई बनिया, रामचन्द नाईक, बिहारी चौधरी बनिया, गुबदू बनिया, बिजय दूबे, कुल्लु बनिया तथा कुछ अन्य । सन् 1867 में सभी गिरफ्तार कर लिए गए ।

ललितपुर जिले में सुनोरियों के प्रमुख सरगना थे - मस्त नन्हें बीड़ के मातिन और बानपूर के हीरालाल डकैत । हीरालाल डकैत के दो लड़के भी गिरोहों के सदस्य थे । इनमें से एक को गिरफ्तार कर नागपुर जेल में रखा गया था ।

सुनोरी जाति में दो प्रकार की शपथ प्रचलित थी - 'देवी तथा पिछोरिया' । देवी शपथ लेने का अर्थ था कि वे चोरी के अतिरिक्त कोई दूसरा अपराध नहीं करेंगे ।

लूट का माल बांटते समय पिछोरिया या चूड़ा की शपथ ली जाती थी जिसका अभिप्राय यह था कि जो धन बांटा जाना है वह ही कुल चोरी किया गया धन है और इसका कोई अंश छिपाया नहीं गया है । गिरोह का कोई सदस्य यदि कोई झूठी शपथ ग्रहण करता तो उसका पता लग जाने पर उसे गिरोह से निकाल दिया जाता था और उसे भारी हर्जाना देना पड़ता था ।

---

1 फाइल संख्या 1/1867

चोरों के इन गिरोहों द्वारा अपना कार्य नवम्बर या दिसम्बर में शुरू किया जाता था। चोरी की इस मुहिम पर जाने से पहले गांव के ज्योतिषी से शुभ मुहूत, दिशा इत्यादि के बारे में प्रत्येक गिरोह द्वारा विचार विमर्श किया जाता था । उसी के बताए निर्देशानुसार गिरोह के सदस्य एक निश्चित समय पर गांव के बाहर किसी पेड़ के नीचे अथवा कुएं के पास एकत्र होते थे जहां वे रात भर के लिए रूकते थे । घर की औरतें उनके लिए भोजन इत्यादि वहीं देकर आती थीं और इस प्रकार एक बार गांव छोड़ने के बाद वे किसी भी दशा में पुनः गांव में नहीं जाते थे ।

छोटी चोरियां मुख्यतः लड़कों द्वारा की जाती थीं । निम्न जाति के लड़कों को 8 या 9 वर्ष के होने पर चोरी करने की शिक्षा दी जाती थी । इसके लिए गिरोह के सरगना द्वारा इन लड़कों के माता-पिता से इन्हें इनकी शिक्षा के अनुसार 5 रूपये से 50 रूपये तक देकर ले लिया जाता था । शिक्षा ग्रहण करने के दौरान इन लड़कों को 'छाबा' (Chabah) कहा जाता था ।[1]

ब्राह्मण लड़के 13 या 14 वर्ष की उम्र तक चोरी शुरू नहीं करते थे । उन्हें 'छाबा' बनकर भी नहीं रहना पड़ता था । कला में प्रवीण हो जाने पर उन्हें उपारदार (Upardar) के पद पर प्रोन्नत कर दिया जाता था ।

---

1 फाइल संख्या 1/1867

किसी लड़के द्वारा अपनी पहली चोरी सफलतापूर्वक करने पर उस सम्पत्ति को बांटा नहीं जाता था बल्कि लड़के द्वारा 'चूड़ा' या 'पिछोरिया' में प्राप्त की गई पूरी सम्पत्ति को मिठाई इत्यादि में खर्च कर दिया जाता था । देवी की पूजा की जाती थी और लड़के को उस समय से गिरोह के बन्धुत्व में शामिल कर लिया जाता था । यदि कोई लड़का गिरफ्तार हो जाता लेकिन अपने गिरोह के बारे में कोई सूचना न देता तो गिरोह के अन्य सदस्यों द्वारा उसकी अति प्रशंसा की जाती थी और सामान्य से अधिक रूचि लेकर उसे चोरी करने की विद्या में निपुण बनाया जाता था ।

1867 की एक रिपोर्ट में इन सुनोरी गिरोहों द्वारा चोरी करने की विधि का वर्णन भी मिलता है ।[1] इसके अनुसार यह चोरियां उदाहरणार्थ इस प्रकार की जाती थीं : गिरोह के दो सुनोरी 'क' और 'ख' एक छोटे लड़के 'ग' को लेकर चोरी की मुहिम पर निकलते हैं जिनमें से ख उपरदार है । ऐसे में 'क' और 'ख' दोनों संभ्रान्त नागरिकों की वेशभूषा धारण करते हैं । वे बाजार जाकर उस दुकान को चुन लेते हैं जहां उन्हें चोरी करनी है और अपना सारा ध्यान उसी पर केन्द्रित कर लेते हैं । उदाहरण के लिए यदि वो एक महाजन की दुकान है उसमें बैठा व्यक्ति लिखा पढ़ी करने में व्यस्त है । ऐसे में 'क' दुकान के अन्दर जाता है और महाजन को बातों में लगा लेता है । 'ख' दुकान के बाहर कुछ दूरी पर खड़ा हो जाता

---

1 फाइल संख्या 1/1867

है । 'ग' अपने आप में व्यस्त दिखाते हुए दुकान के पास चला जाता है लेकिन वास्तव में वह 'ख' को बहुत ध्यान से देख रहा होता है और उसी के इशारों पर हर कार्य करता है । वह 'क' से जो दुकान के अन्दर बैठे व्यक्ति से बातचीत करने में व्यस्त है, अनभिज्ञ बना रहता है। अब 'ख' अपना दायां हाथ अपने चेहरे तक लाता है । अपनी उंगलियां सीधी करता है और सांकेतिक रूप से अपनी कोहनी आगे करता है । 'ग' 'ख' की कोहनी के इशारे से पूर्णतः निर्देशित है । 'ख' की कोहनी दायें या बायें होने का अर्थ है कि लड़के को भी उसी दिशा में चलना है । यदि वह कोहनी पीछे को झटकाये तो इसका अर्थ है कि लड़के को तुरन्त वहां से पीछे हट जाना चाहिए । कोहनी आगे करने का तात्पर्य है कि वह आगे बढ़ता रहे । 'ख' द्वारा खांसने पर खतरे का इशारा समझा जाए । इस दौरान 'क' दुकानदार को पूरी तरह बातों में उलझा लेता है और लड़का 'ग' दुकान के बिल्कुल समीप आ जाता है । यदि उसे बढ़ते रहने का संकेत मिलता है तो वह ऐसा ही करता है और अवसर देखकर 'ख' की कोहनी के नीचे होने का संकेत पाते ही समीप रखी कोई भी वस्तु जैसे कलमदान अथवा कोई कपड़ा जो भी समीप पड़ा हो उसे उठा लेता है और वहां से तुरन्त हट जाता है। यदि चोरी पकड़ी जाती है और लड़के पर शक हो जाता है तो 'ख' द्वारा खांसी का संकेत करके 'ग' को यह समझा दिया जाता है कि वह उस चोरी की हुई वस्तु को तुरन्त गिरा दे ।

इसके बाद 'ख' और 'ग' अलग-अलग दिशा की ओर चले जाते हैं और 'क' अभी तक दुकान में खड़ा दुकानदार से चोरी हो जाने पर सहानुभूति व्यक्त करने लगता है ।

चोरी करने में किसी लड़के द्वारा गलती किए जाने पर या बार-बार असफल रहने पर उपारदार द्वारा उसकी पिटाई की जाती थी । उपारदार की अनुपस्थिति में किसी भी लड़के को अपने आप चोरी करने की अनुमति नहीं थी । गिरोह में लड़कों की कमी होने पर गिरोह के पुरूष उपरोक्त विधिनुसार चोरी करते थे लेकिन साधारणतः वे स्वयं को बड़ी चोरियों के लिए रखते थे एवं छोटी-छोटी चोरियों के लिए छोटे लड़कों की सहायता ली जाती थी ।

सुनोरी चोरों की कुछ विशेषताएं भी थीं । वे जानवर चोरी नहीं करते थे, मकानों में सेंध नहीं लगाते थे और रात को चोरी नहीं करते थे । उन्हें डकैती न करने और राजमार्ग पर चोरी न करने की कसम दी जाती थी । यदि गिरोह का कोई सदस्य इनमें से कोई अपराध करता था तो ऐसा मुख्तयार की जानकारी के बिना ही सम्भव हो सकता था । यदि कोई व्यक्ति चोरी करने के कार्य से मना करता था तो उसे विवाह नहीं करने दिया जाता था और वे जो चोरी की इस कला में निपुण हो जाते थे और बुलाए जाने पर चोरी में रूचि लेते थे उनका विवाह प्राथमिकता के आधार पर होता था । गिरोह के सदस्यों द्वारा चोरी की गई मूल्यवान वस्तुओं को घर भेज दिया जाता था और कम मूल्य की ऐसी वस्तुएं जो घर नहीं ले जायी जा सकती थीं उन्हें जो भी मूल्य मिले उस पर बेच दिया जाता था ।

सुनोरी जाति में प्रचलित चोरी के नियमानुसार यदि कोई चोरी तीन अथवा चार गिरोह मिलकर करते थे तो चोरी में प्राप्त सम्पत्ति को सभी गिरोहों में बांटा जाता था अर्थात उस सम्पत्ति पर केवल उसी गिरोह के सदस्यों का अधिकार नहीं होता था जिन्होंने उसे चुराया हो । सुनोरी गिरोहों का प्रत्येक सदस्य अपना नाम बदल लेता था। गांव में और गिरोह के सदस्य के रूप में उसके अलग-अलग नाम होते थे ।

ललितपुर जिले में निम्न जाति का एक गिरोह भी था जिसके प्रधान कुर्कवारी के नदवे थे । यह गिरोह सुनोरियों के दूसरे गिरोहों से अलग था । इसके सदस्यों को किसी दूसरे गिरोह के सदस्यों के साथ भोजन इत्यादि की अनुमति नहीं थी लेकिन लूट में इनका हिस्सा बराबर रखा जाता था ।[1]

सुनोरी जाति की एक विशेषता यह थी कि एक गिरोह के सदस्य यदि अलग अलग जाति के होते तो वह एक थाली में भोजन नहीं करते थे । गिरोह के सभी सदस्यों के लिए भोजन पकाने का काम ब्राह्मण करता था ।[2]

रेलवे की शुरूआत होने पर मुख्तयार एक संभ्रान्त व्यक्ति का वेश धारण कर ट्रेन में सफर करता था और गिरोह के अन्य सदस्यों द्वारा गाड़ियों एवं स्टेशनों पर आसानी से चोरी कर ली जाती थी ।

---

1 फाइल संख्या 1/1867

2 -वही-

गिरोह के सदस्यों की संख्या भी हमेशा एक जैसी न होकर परिस्थितियों के अनुसार बदलती रहती थी। आवश्यकतानुसार इन्हें छोटे-छोटे समूहों में विभक्त कर दिया जाता था। ऐसा माना जाता था कि गिरोह की सदस्य संख्या उनके भाग्य पर निर्भर करती थी । भाग्य अच्छा होने पर मुख्तयार सहित अधिक सदस्य गिरोह में शामिल हो जाते थे । यदि गिरोह असफल होता तो कभी-कभी मुख्तयार को अपना पद भी छोड़ना पड़ता था ।

सन् 1864 में कैप्टन सुथरलैन्ड (Sutherland) जो सैन्ट्रल प्रोविन्सस में जिला सुपरिंटेंडेंट आफ पुलिस थे, ने 61 सुनोरियों को गिरफ्तार कर लिया ।[1] इस बड़ी गिरफ्तारी के बाद गिरोह के मुखिया द्वारा उन्हें इस जाति के बारे में और इनकी कार्यप्रणाली के बारे में महत्वपूर्ण सूचनाएं प्राप्त हुईं । इन सूचनाओं के अनुसार इस जाति के लगभग 65 अलग-अलग गिरोह थे जो भारत में विभिन्न स्थानों पर चोरियां करते थे । दिल्ली गजट में छपी एक खबर के अनुसार[2] इस सूचना में यह ज्ञात हुआ कि इस जाति का मुख्यालय शुरू से ही टिहरी राज्य में ओरछा में था । ओरछा प्रमुख द्वारा सुनोरियों पर एक कर भी लगाया जाता था जिसे गुरगुनाह (Gurgunnah) कहते थे। ऐसा माना जाता है कि 1863 में इस कर द्वारा

---

1 फाइल संख्या 1/1867

2 दिल्ली गजट दिनांक 1 अक्तूबर, 1864

लगभग 800 रूपए जमा किए गए थे । इस कर के अतिरिक्त चोरी की हुई मूल्यवान वस्तुएं जो ओरछा प्रमुख को भेंट करने के योग्य होती थीं उन्हें टिहरी सरकार द्वारा स्वीकार कर लिया जाता था ।[1]

इस जाति में परस्पर भाई-चारे की नींव किसने डाली इसका ठीक ठीक पता नहीं चलता लेकिन ऐसा माना जाता है कि प्रारम्भ में इस कला की शुरूआत ब्राह्मणों द्वारा की गई जिन्होंने इस बुराई की शिक्षा निम्न जाति के व्यक्तियों को दी और धीरे-धीरे वे उन मुख्य पदों पर पहुंच गये जिन पर पहले केवल पुजारी के आदेशानुसार ही अधिकार दिया जाता था। धीरे-धीरे सुनोरी ब्राह्मणों की संख्या में भी कमी आई ।

टिहरी राज्य द्वारा सुनोरी चोरों को संरक्षण दिये जाने की सूचना से सरकार में खलबली मच गई । 1864 में दिल्ली गजट समाचार पत्र ने लिखा कि ब्रिटिश सरकार टिहरी के प्रमुख के विरूद्ध इन पेशेवर चोरों को संरक्षण दिये जाने के ख़िलाफ क्या कार्यवाही करना चाहती है ? क्योंकि खबर के अनुसार यह बात स्पष्ट थी कि सुनोरी लोग मुख्यतः उसके क्षेत्र में उसकी जानकारी से ही बारह गांवों में बसे हुए थे और टिहरी प्रमुख ने सब कुछ जानते हुए उनसे चोरी की सम्पत्ति प्राप्त की थी और उनके लाभ पर कर लगा कर उनके इस अवैध कार्य को अपनी स्वीकृति प्रदान की थी । पत्र ने लिखा कि ब्रिटिश सरकार को चाहिए कि टिहरी प्रमुख को सेन्ट्रल इंडिया एजेंसी की दूसरी देशी रियासतों से

---

1 दिल्ली गजट दिनांक 1 अक्तूबर, 1864

अलग कर दे । उसे सलामी (Salute) के अधिकार से वंचित कर दे और उसे दी जाने वाली सभी प्रकार की सहायता एवं परामर्श से तब तक वंचित कर दे जब तक कि वह इन चोरों को अपने क्षेत्र से निकाल न दे और भविष्य में अच्छे प्रशासन देने का आश्वासन न दे ।[1]

इससे यह स्पष्ट था कि क्षेत्र के लोग सुनोरी चोरों से तो परेशान थे ही टिहरी सरकार द्वारा इनके संरक्षण की बात से उनमें और अधिक रोष व्याप्त हो गया था । पत्र का कहना था कि टिहरी प्रमुख को उसके कृत्यों के लिए सबक अवश्य दिया जाना चाहिए क्योंकि उसने चोरी को संरक्षण प्रदान करके लोगों के कष्ट को और अधिक बढ़ा दिया था ।[2]

टिहरी सरकार द्वारा सुनोरियों को संरक्षण दिये जाने की खबर पर एजेन्ट जनरल सैन्ट्रल इंडिया ने पोलिटिकल एजेन्ट को निर्देश दिये कि वह टिहरी सरकार के विरूद्ध लगे आरोपों की सत्यता की जांच करने के लिए तुरन्त आवश्यक कार्यवाही करे ।[3]

आम जनता में टिहरी सरकार के विरूद्ध रोष भड़कने पर पोलिटिकल एजेन्ट बुन्देलखण्ड ने टिहरी के एक ईमानदार अधिकारी प्रेमनारायण को पत्र लिखा[4] जिसमें उससे

---

1 दिल्ली गजट दिनांक 1 अक्तूबर, 1864

2 -वही-

3 फाइल संख्या 1/1867-पत्र संख्या 1248 दिनांक 8 अक्तूबर, 1867

4 फाइल संख्या 1/1867-पत्र दिनांक 9 अक्तूबर, 1867

अनुरोध किया गया कि वह इस मामले की गम्भीरता को टिहरी के युवा प्रमुख और दीवान को समझाने का प्रयत्न करे । पोलिटिकल एजेन्ट के अनुसार यह बात इतनी महत्वपूर्ण नहीं थी कि दिल्ली गजट में छपी यह खबर सही थी अथवा गलत जितनी यह कि इस खबर के प्रकाशित होने पर लोगों में भड़कने वाले रोष को शान्त करने के लिए यह आवश्यक हो गया था कि टिहरी सरकार सुनोरियों के खिलाफ तुरन्त कदम उठाए ताकि आम जनता को यह विश्वास हो सके कि टिहरी सरकार इन सुनोरियों के अवैध कार्यों के साथ नहीं है । पोलिटिकल एजेन्ट के अनुसार यह मामला बहुत गम्भीर हो गया था और राज्य सरकार को अपनी इज्जत बचाने के लिए शीघ्र ही कोई ठोस कार्यवाही करनी चाहिए थी ।

यद्यपि पोलिटिकल एजेन्ट बुन्देलखण्ड का मानना था कि इस विषय पर डेविडसन, ललितपुर के जिला सुपरिंटेंडेंट आफ पुलिस द्वारा सरकार को प्रेषित रिपोर्ट जिसमें टिहरी सरकार द्वारा सुनोरियों को संरक्षण दिये जाने का वर्णन भी था, का आधार सुनोरी चोरों द्वारा प्रदत्त जानकारी ही थी और चूंकि वे स्वयं अपराधी थे इसलिए उनकी सूचना पर बिना सोचे समझे विश्वास नहीं किया जाना चाहिए था । सुनोरी जिसने अपना अपराध स्वीकार कर लिया हो उसके विरूद्ध प्रमाण प्रस्तुत करना आसान था लेकिन टिहरी दरबार के विरूद्ध केवल आरोप लगाए गए थे और वह भी सुनोरियों द्वारा लेकिन डेविडसन द्वारा यह आरोप बिना आधार सत्य मान लिए गए थे । पोलिटिकल एजेन्ट के अनुसार टिहरी दरबार पर लगे आरोपों की जांच तभी सम्भव थी यदि किसी अधिकारी को कुछ समय तक टिहरी

में रहकर इस विषय की जानकारी प्राप्त करने के लिए कहा जाए । उसे डर था कि यदि दरबार के विरूद्ध लगाए गए आरोप असत्य प्रमाणित हुए तो इससे ब्रिटिश सरकार की छवि को हानि हो सकती थी । टिहरी जाकर इस विषय की सत्यता जानने के लिए कैप्टन खिन्चिड नामक अधिकारी, जो बुन्देलखण्ड में सहायक पोलिटिकल एजेन्ट थे, को चुना गया।

पंजाब को छोड़ कर भारत का कोई भी हिस्सा सुनोरियों से मुक्त नहीं था । बड़े-बड़े गिरोह जिनकी कार्य प्रणाली, कसम और रीति-रिवाज मिलते-जुलते थे, अलग-अलग नामों से अवध, उत्तर पश्चिम प्रान्त और दतिया में पाए जाते थे । अवध के गिरोहों को 'बरवार' कहा जाता था और उत्तर पश्चिम प्रान्त के गिरोह 'उठाईगिरे' कहे जाते थे । वे बुनदेलखण्ड के सुनोरियों के साथ मिलकर चोरियां करते थे अथवा नहीं, इसके बारे में निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता लेकिन ललितपुर के जिला सुपरिंटेंडेंट का मानना था कि यह गिरोह अलग-अलग ही अपना काम करते थे ।[1]

एक रिपोर्ट के अनुसार सुनोरियों के बारे में गहरी छानबीन करने से यह बात सामने आई कि यह एक दिल्ली सम्राट (जिसके नाम की ठीक-ठीक जानकारी नहीं मिलती) के साम्राज्य में चोरों की एक अलग पहचान रखने वाली जाति थी और इन्हें आगरा जिले के 'बसिये' (Busseye) नामक गांव में निवास करने की अनुमति दे दी गई थी । उस समय

---

1 फाइल संख्या 26/1868-71-पैत्र दिनांक 30 दिसम्बर, 1867

इन्हें सन्नाड़ ब्राह्मण (Sanaad) कहा जाता था और यह दुबैन (Doobains) नाम से पंजीकृत होते थे ।[1] ऐसा लगता है कि इन्हें दुबैन नाम इसलिए दिया गया था ताकि इनकी उन ब्राह्मणों से अलग पहचान हो सके जो चोर नहीं थे । दुबैन की संख्या लगभग 500 थी और यह अपनी जाति के अतिरिक्त किसी और को अपनी श्रेणी में शामिल नहीं करते थे । इनके पेशे को तब 'उठाईगिरी' (Oothaigeerie) कहा जाता था। यह ज्ञात नहीं हो सका है कि उठाईगिरी से यह नाम 'सुनोरी' में कब परिवर्तित हुआ ।[2]

यद्यपि इन्हें एक गांव में रहने की अनुमति प्राप्त थी, यह पंजीकृत होते थे और इनकी निगरानी भी की जाती थी किन्तु धीरे-धीरे आगरा, दिल्ली और आस-पास के क्षेत्रों में सन्नाड़ ब्राह्मणों द्वारा की जाने वाली चोरियों की संख्या बहुत बढ़ने लगी । यहां तक कि आखिर में इनको राज्य से निष्काषित करने के आदेश पारित कर दिए गए ।[3]

ऐसा कहा जाता है कि वे सन्नाड़ ब्राह्मण जो इस प्रकार निष्काषित कर दिए गए उनमें से अधिकांश दतिया जिले के रूरा और पडरी में जाकर बस गए और शेष जामनेर,

---

1 फाइल संख्या 26/1868-71

2 -वही-

3 -वही-

मिनोवरा, छुरकुआ पहाड़ी, बानपुर और बीड़ में जा बसे और फिर इनकी संख्या में लगातार वृद्धि होती रही ।[1] ये सभी क्षेत्र जहां ये लोग आकर बस गए थे उस समय ओरछा राजा बीरसिंह देव और रामसहाय के अधीन थे ।

इस प्रकार बसे क्षेत्र शीघ्र ही समृद्ध हो गए जिसका एक कारण सम्भवत: यह भी था कि इन्हें राजा सहित क्षेत्र के अन्य प्रभावशाली व्यक्तियों का संरक्षण प्राप्त था ।

एक रिपोर्ट के अनुसार प्रारम्भ में गिरोह के वृद्ध और युवा दोनों ही एक समान चोरी करते थे । प्रारम्भ में गिरोह में केवल ब्राह्मणों को शामिल किया जाता था लेकिन क्षेत्र में अंग्रेजी शासन होने के बाद गिरोह के वृद्ध सदस्यों ने चोरी करना बन्द कर दिया और इस कार्य के लिए लड़कों को लगाया गया । बाद में सफाई करने वालों को छोड़कर सभी जातियों को सुनोरी गिरोहों में शामिल किया जाने लगा ।[2]

इस परिवर्तन का एक मुख्य कारण यह था कि लड़कों को बड़े आदमी की अपेक्षा कम सजा मिलती थी । इसलिए सुनोरियों द्वारा इस बात का लाभ उठाने के उद्देश्य से गिरोह में लड़कों को शामिल किया जाने लगा । जिला सुपरिंटेंडेंट आफ पुलिस, ललितपुर का मानना था कि इन लड़कों से कोई भी जानकारी प्राप्त करना बहुत कठिन कार्य था इसलिए इन व्यक्तियों की अपेक्षा इन लड़कों से निपटना अति मुश्किल था । सुनोरियों द्वारा इन्हें

---

1 फाइल संख्या 26/1868-71

2 -वही-

कोई भी सख्त सजा सहने के लिए प्रेरित किया जाता था और अगर यह कड़ा रूख अपनाने में सफल हो जाते तो इन्हें पुरस्कार दिया जाता था ।[1]

सुनारियों के गिरोह फतेहपुर से लेकर कलकत्ता तक, ललितपुर से टिहरी तक, बम्बई और कराची के बीच सभी बड़े और सम्पन्न शहरों का नियमित भ्रमण करते थे । इन सभी स्थानों पर ऐसे बनिया और ब्राह्मण थे, जो इन्हें अग्रिम धन की सहायता देते और लूट का माल ले लेते थे । बांदा, कानपुर, इलाहाबाद, बनारस, गया, मुर्शिदाबाद , राजमहल, घोषपुर (जिला गाजीपुर), पटना, बर्दवान, कलकत्ता, ढाका, कुश्तिया, सागौर, जबलपुर, होशंगाबाद, नरसिंहपुर, बैतूल, एलिचपुर, अमरावती, बरहानपुर, धूरिया, नासिक, पूना, सतारा, कर्नाटक, रामनाथ तीर्थ, इन्दौर, उज्जैन, बड़ौदा, सूरत, अहमदाबाद, द्वारका, हैदराबाद, नागपुर, मोपारा और बम्बई इनके प्रमुख गढ़ थे । इनके अतिरिक्त कुछ अन्य स्थान भी थे जहां सुनोरियों ने गिरफ्तारी के भय से आना जाना कम कर दिया था।

एक रिपोर्ट के अनुसार इन सभी शहरों में ठगी एवं चोरी का माल प्राप्त करने के स्थान थे। विशेषतौर पर बर्दवान, अमरावती और मोपारा अति प्रसिद्ध भंडारण गृह थे । इन्हें थग (Thaug) कहा जाता था।[2]

---

1 फाइल संख्या 26/1868-71

2 -वही-

## सुनोरियों से निबटने के उपाय :

जिला सुपरिंटेंडेंट आफ पुलिस, ललितपुर का विचार था कि सुनोरियों को समाप्त करने के लिए आवश्यक था कि इन थगों (Thaugs) को तोड़ा जाए और इनके मालिकों को कानून के अंतर्गत कड़ी सजा दी जाए ।

यद्यपि शुरू में बारागांव नाम से प्रसिद्ध बारह सुनोरी गांव थे लेकिन बाद में सुनोरिया गिरोहों में अन्य जातियों के लोगों के मिल जाने से बानपुर और बीड़ के आसपास गांव में भी ये लोग बस गए और इनके गांवों की संख्या धीरे-धीरे सोलह हो गई थी।[1] सुनोरियों से निपटने में एक प्रमुख कठिनाई यह थी कि इन्हें जमींदारों का संरक्षण प्राप्त था । अधिकतर ऐसा होता था कि ये जमींदार चोरी के कार्य पर स्वयं निकलते थे और किसी दूसरे की निगरानी में गिरोह कम ही बाहर भेजे जाते थे ।[2]

बानपुर में इंस्पेक्टर अथवा सब इंस्पेक्टर के पद पर किसी अच्छे और ईमानदार अधिकारी का न होना सुनोरियों से निपटने के उपाए कार्यान्वित करने में एक अन्य मुख्य कठिनाई थी । ऐसा कहा जाता था कि बानपुर पुलिस स्टेशन पर जिस भी पुलिस अधिकारी की नियुक्ति की जाती थी उसे लूट में से हिस्सा प्राप्त हो जाता था। इस प्रकार बानपुर पुलिस स्टेशन पर नियुक्त सभी अधिकारियों पर भ्रष्टाचार के आरोप थे । जिला सुपरिंटेंडेंट

---

1 फाइल संख्या 26/1868-71

2 -वही-

आफ पुलिस, ललितपुर के अनुसार सुनोरियों को गिरफ्तार करके की गई जांच के दौरान उसने यह पाया कि सुनोरी स्वयं मानते थे कि बानपुर पुलिस हमेशा से उनकी मित्र रही है।[1] जिला पुलिस अधीक्षक के अनुसार इन्स्पेक्टर रघुनाथ प्रसाद जिसको बाद में सरकारी रेलवे पुलिस में स्थानान्तरित कर दिया गया था और उसके अधीन काम करने वाले अन्य पुलिस कर्मचारियों को सुनोरियों की लूट में निरन्तर हिस्सा प्राप्त होता था,ऐसा भी आरोप था कि इन गिरोहों के आने व जाने के समय भी पुलिस द्वारा इनसे उचित फीस ली जाती थी । बानपुर में नियुक्त भगवान प्रसाद, हैड कांस्टेबल की भी इन गिरोहों से अच्छी सांठ-गांठ थी अतः उसे पुलिस अधीक्षक द्वारा स्थानान्तरित कर दिया गया था ।[2]

ऐसी प्रथा थी कि हर सुनोरी चोरी के अभियान पर जाते समय थानेदार को एक या दो रूपए देकर जाता था और लौटने पर भी लगभग इतना ही 'नजूर'(Nuzzur) पेश किया जाता था । इससे उनसे अधिक पूछताछ नहीं की जाती थी। इसीलिए बानपुर पुलिस स्टेशन पर नियुक्ति एक अच्छी नियुक्ति मानी जाती थी । इन्स्पेक्टर रघुनाथ प्रसाद भी सम्भवतः इसीलिए यहां से अपने स्थानान्तरण से खुश नहीं था बल्कि उसने यहां पुनःनियुक्ति के लिए प्रयास भी किए थे । यद्यपि उसे बानपुर से रेलवे पुलिस में स्थानान्तरित कर दिया गया

---

1 फाइल संख्या 26/1868-71

2 -वही-

था किन्तु जिला पुलिस अधीक्षक का मानना था कि सुनोरियों पर उसका दबदबा बाद में भी बना रहा क्योंकि कलकत्ता को जाने वाला मुख्य रास्ता फतेहपुर रेलवे स्टेशन से होकर जाता था और रेलवे में की गई अधिकतर चोरियां सुनोरियों द्वारा ही की गई थीं । ऐसे प्रमाण भी मिले थे कि इंस्पेक्टर रघुनाथ प्रसाद बानपुर के अपने पुराने सुनोरी मित्रों से बाद में भी मिलता रहा ।[1]

इसलिए बानपुर पुलिस स्टेशन पर एक ईमानदार पुलिस अधिकारी को नियुक्त किया जाना सुनोरियों से निपटने के लिए एक आवश्यक कदम था । जिला पुलिस अधीक्षक का मानना था कि यहां कम-से-कम इंस्पेक्टर स्तर के अधिकारी की नियुक्ति आवश्यक थी । यह भी आवश्यक था कि उसे उच्च वेतन दिया जाए ताकि वे अपना कार्य ईमानदारी से निभा सके और सुनोरियों द्वारा दिए गए प्रलोभन में न आए । बानपुर पुलिस पदों पर नियुक्ति करते समय अधिकारी की जाति का ध्यान रखना भी आवश्यक था । सुनोरी चूंकि मुख्यतः ब्राह्मण और खूंगर जाति के थे इसलिए यह संस्तुति की गई थी कि यहां पुलिस पदों पर ब्राह्मणों और कैथ जाति के लोगों को नियुक्त नहीं किया जाना चाहिए था ।[2] यह भी सुझाव दिया गया कि बानपुर पुलिस स्टेशन पर पुलिस दल में वृद्धि की जाए। बानपुर के लिए कम-से-कम एक इंस्पेक्टर और बारह कांस्टेबलों की सिफारिश की गई।

---

1 फाइल संख्या 26/1868-71

2 -वहीं-

आसपास के सुनोरी बहुल क्षेत्रों के लिए दो अतिरिक्त पुलिस चौकियों की संस्तुति की गई ।[1]

बुहेलियों को उन दिनों स्थान छोड़ कर जाने की अनुमति प्राप्त करनी पड़ती थी । जिला पुलिस सुपरिंटेंडेंट, ललितपुर का विचार था कि बुहेलियों (Buhalies) की तरह ही सुनोरियों द्वारा भी गांव से बाहर जाने के लिए अनुमति प्राप्त करने का नियम बनाया जाना चाहिए ।[2] वे अधिक-से-अधिक दस दिन तक गांव से बाहर रह सकते हैं यदि कोई इससे अधिक दिनों तक अनुपस्थित रहे तो उसे कड़ी सजा दी जानी चाहिए । गांव के जमींदारों को वहां के सभी लोगों की उपस्थिति के लिए उत्तरदायी ठहराया जाए । जब तक यह बात सख्ती से लागू नहीं की जाएगी, सुनोरी पुलिस को धोखा देते रहेंगे और एक बार पुलिस से बच जाने पर उन्हें दोबारा पकड़ना मुश्किल था ।[3]

एक सुझाव यह भी था कि किसी सुनोरी के गांव से चले जाने का पता लगते ही उन सभी स्थानों पर जहां वे अक्सर जाया करते थे उसका पूरा विवरण प्राप्त किया जाए, लेकिन जिला पुलिस सुपरिंटेंडेंट, ललितपुर के विचार में इस उपाए से अधिक लाभ की आशा नहीं थी क्योंकि सुनोरियों के अनुसार उन्होंने हर शहर की पुलिस को उनका हिस्सा दे

---

1 फाइल संख्या 26/1868-71

2 -वही-

3 -वही-

रखा था इसलिए सुनोरियों का विवरण प्राप्त होने के बाद भी वह पुलिस कर्मी उनके विरूद्ध कुछ नहीं करते थे । पुलिस कर्मियों का चरित्र निश्चय ही विवादास्पद था इसीलिए सुनोरियां के विरूद्ध सफलता मिलने में कठिनाई थी ।

सुनोरियों को समाप्त करने के लिए यह आवश्यक था कि 'थग' या लूट का सामान प्राप्त करने वाले स्थानों को नष्ट किया जाए । इन चोरों को कैद की सजा देने का इन पर अधिक प्रभाव नहीं पड़ता था बल्कि इससे वे अपने नए अभियान के लिए और अधिक उत्साहित होते थे । जब तक पकड़े गए आदमी जेल में रहते थे उनकी पत्नी एवं बच्चों का भरण-पोषण एवं संरक्षण गांव के जमींदार और बनिया द्वारा किया जाता था । इस ऋण को वह जेल से छूट जाने के बाद चुकता कर देते थे । यह एक पुरानी प्रथा थी कि कैद हो जाने पर उसके परिवार की देखभाल जमींदार करेगा और इस प्रकार जो कर्ज चढ़ जाता था वे उसे सम्मान की बात समझते थे और उसे चुकाने में कभी नहीं चूकते थे ।

ललितपुर के जिला पुलिस सुपरिटेंडेंट का सुझाव था कि सुनोरी केवल देश निकाला की सजा से डरते थे और केवल इसी सजा से उनसे प्रभावी रूप से निपटा जा सकता था । सुनोरियों के स्वयं के अनुसार कैद आसान हो या कड़ी उसका उन पर कोई असर नहीं पड़ता था बल्कि वे उसे केवल कुछ समय की परेशानी से अधिक नहीं समझते थे ।[1]

---

1 फाइल संख्या 26/1868-71-पत्र दिनांक 30 दिसम्बर, 1867

जुलाई, 1868 में टिहरी दरबार द्वारा राज्य में सुनोरियों से निपटने के लिए कुछ प्रबन्ध किए गए । इसके अनुसार 44 सुनोरी गांवों में से प्रत्येक में एक-एक सिपाही की नियुक्ति की गई । इनकी सहायता के लिए 11 अधिकारी और 21 मुहर्रिर भी नियुक्त किए गए । यह नियम बनाया गया कि सुबह शाम गांव के सुनोरियों की उपस्थिति सुनिश्चित की जाएगी । यदि गांव में कोई अजनबी सुनोरिया दिखाई पड़े तो उसे उसकी सम्पत्ति के साथ गिरफ्तार कर लिया जाएगा । अधिकारियों द्वारा क्षेत्र में गश्त की जाएगी ।[1]

सुनोरियों के विषय में हर महीने सूचना एजेंसी को भेजी जाएगी । सुनोरियों को गांव छोड़ने से पहले अधिकारियों से अनुमति लेनी होगी । उसे यह सूचना देनी होगी कि वह किस गांव में जा रहा है और कब जाएगा तथा कब लौटेगा । राज्य छोड़ने के लिए सुनोरिया को दरबार की अनुमति प्राप्त करनी होगी । यह अनुमति उससे धरोहर राशि जमा कराने के बाद ही दी जाएगी ।[2]

समय-समय पर सुनोरियों के बारे में सरकारी रिपोर्ट पेश की जाती रही । लेकिन इनसे सफलतापूर्वक निपटना एक कठिन कार्य था । बुशबी जो एजेन्ट गवर्नर जनरल फार सक्रेडेव डोमिनियनस थे, उसने 7 फरवरी, 1851 को भारत सरकार के सचिव को भेजी अपनी रिपोर्ट में सुझाव दिया कि वे राज्य जो सुनोरी चोरों को शरण देने के लिए प्रसिद्ध थे

---

1 फाइल संख्या 26/1868-71-पत्र दिनांक 30 दिसम्बर, 1867

2 फाइल संख्या 26/1868-71

उन्हें इस बारे में चेतावनी दी जानी चाहिए और टिहरी तथा बानपुर राज्य दरबार पर क्रमशः 5000 रूपए और 1000 रूपए का जुर्माना लगाया जाना चाहिए क्योंकि इन राज्यों में शरण प्राप्त सुनोरियों द्वारा की गई लूट से ब्रिटिश सरकार के नागरिकों को बहुत हानि पहुंची थी ।[1] इस जुर्माने में वह मूल्य भी शामिल था जो 13 सुनोरियों को दी गई सात साल की सजा की अवधि में उनके खान-पान पर सरकार द्वारा उठाया जाना था । ठगी एवं डकैती विभाग के जनरल सुपरिंटेंडेंट सी.हर्वी द्वारा 1867 में बुशबी के इस सुझाव की पुनः संस्तुति की गई थी । जनरल सुपरिंटेंडेंट के अनुसार इन सुनोरियों को ठगी एवं डकैती विभाग के नियमों के अंतर्गत लाने का कोई लाभ नहीं था जब तक कि किसी विशेष कानून द्वारा इन्हें लम्बी अवधि की सजा देने का प्रावधान न किया जाए ।[2]

इस प्रकार ब्रिटिश सरकार यह भली-भांति समझती थी कि जब तक इन सुनोरी चोरों को किसी न्यायालय द्वारा आजीवन कैद अथवा लम्बी अवधि की सजा नहीं दी जाएगी समाज को इनके द्वारा होने वाली क्षति से मुक्त नहीं किया जा सकता था । सरकार के गृह विभाग द्वारा इस विषय में यह कहा गया[3] कि ऐसे व्यक्ति जो छोटे-छोटे स्थानीय

---

1 फाइल संख्या 2/1867-68

2 -वही-

3 माननीय डायरेक्टर कोर्ट का डिस्पैच दिनांक 1 अक्तूबर, 1847-फाइल संख्या 2/1867-68

प्रमुखों के गांवों के थे एवं दूर-दूर जाकर विभिन्न स्थानों पर चोरियां करते थे उन्हें उनके द्वारा चोरी की गई सम्पत्ति के साथ उसी स्थान पर सजा दे दी जानी चाहिए जहां उन्हें पकड़ा गया हो, क्योंकि ऐसा विश्वास था कि उन क्षेत्रों के स्थानीय अधिकारी जहां यह सुनोरी साधारणतः रहते थे, इन सुनोरियों से अपना हिस्सा प्राप्त करते थे अतः वे इन्हें दण्डित नहीं करते थे।

इन सुनोरी चोरों को दण्डित करने के लिए कानून भी बनाए गए । 1848 का एक्ट XI इसी का परिणाम था जिसमें ऐसे चोरों एवं लुटेरों को, जो डकैत नहीं थे, सजा देने का प्रावधान था । भारतीय दंड संहिता के सेक्शन 401 के अंतर्गत भी इन्हें दंडित करने संबंधी नियम बनाया गया लेकिन इन कानूनों के अंतर्गत इन्हें अधिक-से-अधिक सात वर्ष के कारावास का दंड दिया जा सकता था लेकिन इस प्रकार दंडित सुनोरी सजा की अवधि समाप्त होने पर अधिक सावधानीपूर्वक एवं अधिक निपुणता से अपने इस अपराध कार्य के लिए पुनः तैयार हो जाते थे।[1] इस प्रकार इस अपराध को पूर्ण रूप से समाप्त करना बहुत कठिन था । अतः इनसे छुटकारा पाने के लिए इस बात की आवश्यकता थी कि स्थानीय प्रमुखों द्वारा इन सुनोरी चोरों को कोई संरक्षण न प्रदान किया जाए एवं इनसे सख्ती से निपटा जाए । सरकार द्वारा इनके गिरोहों को तोड़ कर ही इनसे जनता को छुटकारा प्रदान किया जा सकता था ।

---

1 फाइल संख्या 2/1867-68

<u>बुन्देलखण्ड क्षेत्र में डकैती :</u>

सन् 1889 से बुन्देलखण्ड एवं आस-पास के क्षेत्रों में डकैतों का प्रकोप बढ़ने लगा था । 1890 में क्षेत्र में डकैतियों की संख्या बहुत बढ़ गई थी इसलिए सरकार द्वारा इन डकैतों को पकड़ने एवं क्षेत्र के लोगों को डकैतियों से राहत दिलाने के लिए अनेक कदम उठाए गए । श्री ए.सी.हैन्किन को डकैती से निपटने के लिए विशेष अधिकारी नियुक्त किया गया । हैन्किन बुन्देलखण्ड एजेन्सी में 7 नवम्बर, 1892 में आए थे और तभी से उसने इन डकैतों से निपटने के प्रयास तेजी से शुरू कर दिए । उसने डकैतों के बारे में सरकार को एक रिपोर्ट पेश की[1] जो इस विषय पर एक महत्वपूर्ण उपलब्धि कही जा सकती है क्योंकि इस रिपोर्ट में डकैतों के गिरोहों, उनके मुखिया, उनके द्वारा की गई डकैतियों एवं उन व्यक्तियों का विवरण दिया गया है जिनके द्वारा डकैतों को शरण दी जाती थी । क्षेत्र में 1890 में डकैती चरमोत्कर्ष पर थी लेकिन सन् 1889 से ही डकैतियों की शुरूआत हो चुकी थी । अतः हैन्किन की रिपोर्ट में क्षेत्र में 1 जनवरी, 1889 से विभिन्न गिरोहों द्वारा की गई डकैतियों का विवरण मिलता है ।

रिपोर्ट[2] के अनुसार 1889 से 1893 तक बुन्देलखण्ड में गई डकैतियों की

---

1 फाइल संख्या 13/1894

2 -वही-

की संख्या इस प्रकार थी :-

| वर्ष | डकैती |
|---|---|
| 1989 | 30 |
| 1990 | 82 |
| 1991 | 66 |
| 1992 | 47 |
| 1993 | 7 |
| कुल | 232 डकैतियां |

इस प्रकार केवल 5 वर्षों में क्षेत्र में हुई कुल 232 डकैतियां सरकार के लिए चिन्ता का विषय बन चुकी थीं । इनमें डकैतों के प्रकोप से सबसे अधिक प्रभावित क्षेत्र ओरछा एवं पन्ना थे, जहां क्रमशः 53 एवं 67 डकैतियां पड़ीं । क्षेत्र के विभिन्न राज्यों में पड़ने वाली डकैतियों की संख्या इस प्रकार थी :-

| क्षेत्र | डकैतियों की संख्या |
|---|---|
| ओरछा | 53 |
| पन्ना | 67 |
| बिजावर | 36 |

| | |
|---|---|
| छतरपुर | 30 |
| चरखारी | 12 |
| आजमगढ़ | 0 |
| दतिया | 10 |
| समथर | 0 |
| अलीपुरा | 9 |
| गरोला | 5 |
| लुगासी | 4 |
| टेरी फतेहपुर | 1 |
| गौरीहार | 2 |
| नौगांव रिबाइ | 1 |
| बिहट | 1 |
| जिगनी | 1 |
| कुल | 232 |

सन् 1890 की 82 डकैतियों में से 33 ओरछा में, 27 पन्ना में और 9 बिजावर में थीं। 1891 की 66 डकैतियों में से 21 पन्ना राज्य में, 17 बिजावर में और 4 ओरछा

में हुई। 1892 में 47 डकैतियों में से 18 पन्ना में थीं, 14 छतरपुर राज्य में और 9 बिजावर में हुई । इस प्रकार पन्ना में डकैतियों की संख्या इन पांच वर्षों में सबसे अधिक रही ।

इस समय क्षेत्र में डकैतों के अनेक गिरोह थे जिनके द्वारा अलग-अलग डकैतियां डाली जाती थीं । प्रमुख गिरोहों के सरगना दुर्गे लोदी, महाराज सिंह, दुर्ग सिंह, विक्रमाजीत, कल्याण सिंह और हिरदैशाह थे ।

पन्ना में अधिकतर डकैतियां दुर्गे लोदी और महाराज सिंह के गिरोहों द्वारा डाली गईं । ओरछा में लूटमार एवं डकैती करने वालों में कल्याण सिंह और सुल्तान सिंह थे । बिजावर क्षेत्र भी दुर्गे लोदी के भय से आतंकित था । इसके अतिरिक्त यहां राघोनाथ सिंह और विक्रमाजीत के गिरोह द्वारा भी डाके डाले जाते रहे । छतरपुर में डाकू दुर्ग सिंह का प्रकोप छाया हुआ था । अलीपुरा में अधिकतर डकैतियां डाकू जोधा सिंह द्वारा डाली गईं।

इन पांच वर्षों में (1889 से 1893 तक) प्रमुख डाकूओं के गिरोहों द्वारा क्षेत्र में कुल निम्नलिखित डकैतियां डाली गईं :-

| | | | |
|---|---|---|---|
| दुर्गे लोदी | 68 | कल्याण सिंह | 14 |
| महराज सिंह | 20 | सुल्तान सिह | 11 |
| दुर्ग सिह | 20 | राधोनाथ सिंह | 10 |
| विक्रमाजीत | 16 | जोधा सिंह | 8 |

हिरदेशाह 7

हैन्किन द्वारा एकत्रित डकैतियों के इन आंकड़ों से स्पष्ट है कि इन दिनों बुन्देलखण्ड क्षेत्र में सबसे अधिक प्रसिद्ध डाकू दुर्गे लोदी था । उसने सबसे अधिक डकैतियां डालीं जो पन्ना राज्य एवं बिजावर क्षेत्र में डाली गईं ।

क्षेत्र म बढ़ती हुई डकैतियों के अनेक कारण थे । हैन्किन के अनुसार[1] सन् 1888-89 में केवल ग्वालियर क्षेत्र में लगभग 141 डकैतियां पड़ीं । उस समय इन डकैतों से निपटने के अनेक उपाए किए गए । इनके पुनर्वास के प्रयास भी किए गए किन्तु इनमें से कुछ डकैती के लाभ एवं उसके तरीके से अत्याधिक उत्साहित थे । अतः वे यह पेशा छोड़ने के लिए तैयार नहीं हुए । कुछ ऐसे भी थे जिन्होंने किसी न किसी कारण से सरकार द्वारा घोषित रियायतों का लाभ लेने से इन्कार करदिया । बुन्देलखण्ड के प्रसिद्ध डकैतों में से अधिकांश ने ग्वालियर क्षेत्र में प्रशिक्षण प्राप्त किया था, ग्वालियर के बाद ललितपुर में भी डकैतियों की संख्या बढ़ने लगीं । बुन्देलखण्ड चूंकि ललितपुर से अधिक दूर नहीं था अतः यह डकैत बुन्देलखण्ड में भी आ गए । यद्यपि 1889 से पहले भी बुन्देलखण्ड में डकैतियां पड़ती थीं लेकिन बाद में ग्वालियर, ललितपुर और फिर ओरछा से बुन्देलखण्ड में आए डकैतों द्वारा यहां अपने गिरोहों में नए डकैतों को शामिल करने एवं इन गिरोहों को सुदृढ़ करने में कोई कठिनाई नहीं हुई । बिजावर में सरकार

---

1 फाइल संख्या 13/1894

बिल्कुल कमजोर एवं स्वेच्छाचारी थी एवं कई स्थानों पर बहुत से अप्रभावी ठाकुर थे। इसके अतिरिक्त विभिन्न राज्यों के बीच अपने सीमा क्षेत्रों को लेकर विवाद थे । हैन्किन के अनुसार यह दोनों कारण क्षेत्र में डाकुओं का प्रभुत्व बढ़ने में सहायक सिद्ध हुए ।

एजेन्सी न्यायालयों द्वारा सजा दिए गए 183 डकैतों में से 70 ब्रिटिश भारत में थे। इनमें से सभी को अलग-अलग सजा दी गई थी लेकिन किसी को भी पांच वर्ष से कम का कारावास नहीं दिया गया था । एक बार सफल हो जाने पर डकैतों का साहस, उनकी गतिविधियां और उनकी ताकत धीरे-धीरे बढ़ने लगी थी । इन डाकुओं के गिरोहों के लगभग सभी सरगना ठाकुर थे । क्षेत्र में इनका बहुत प्रभुत्व था लेकिन एक बार डकैती में परोक्ष अथवा अपरोक्ष रूप से नाम जुड़ जाने पर स्वयं को सजा एवं गिरफ्तारी से बचाने के लिए आखिरकार ये लोग प्रत्यक्ष रूप से डाकू गिरोहों में शामिल हो गए । इसके अतिरिक्त वे लोग जिन्होंने डाकुओं को संरक्षण दे रखा था वे उनके विरूद्ध कोई सूचना देने से डरते थे । इसका कारण यह था कि अधिकांश स्थानों पर डकैत सरकारी तन्त्र से अधिक शक्तिशाली थे और इस प्रकार डाकुओं के विरूद्ध कोई जानकारी देने में इनाम से अधिक डाकुओं द्वारा दी जाने वाली सजा निश्चित थी । इसका एक अन्य कारण यह भी था कि उन्हें इस बात का डर था कि डकैत यदि पकड़े गए तो उनके साथ अपने सम्बन्धों के बारे में जानकारी दे देंगे जिससे उन्हें भी सजा भुगतनी पड़ेगी । क्षेत्र में डकैतियां बढ़ने का एक प्रमुख कारण सम्भवतः यह भी था कि कुछ ठाकुरों का विचार था

कि यदि वह दरबार के नियंत्रण के बाहर हो जाएं तो सरकार उन्हे पुनः बसाने का प्रयास करेगी और इस प्रयास में उन्हें कुछ भूमि भी प्रदान की जाएगी ।

हैन्किन ने अपनी रिपोर्ट में डकैतों एवं उनके द्वारा की जाने वाली डकैतियों संबंधी आंकड़ों का विश्लेषण भी किया है, जैसा कि निम्न सारणी से स्पष्ट है :-

| डकैत का नाम | डकैतियों की संख्या | राज्य | | | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| | | बिजावर | टीकमगढ़ | पन्ना | छतर पुर | चरखारी | अलीपुरा | लुगासी | गरौली | नेगांव रिबाइ | टोरी फताह पुर | [illegible] | दति या |
| दुर्ग लोधी | 68 | 15 | 3 | 44 | 5 | 1 | - | - | - | - | - | - | - |
| महा राज सिंह | 20 | 4 | 1 | 13 | 2 | - | - | - | - | - | - | - | - |
| राधा नाथ सिंह | 10 | 6 | 1 | 1 | 2 | - | - | - | - | - | - | - | - |
| विक्रमाजीत | 16 | 6 | - | 2 | 4 | 4 | - | - | - | - | - | - | - |
| दुर्ग सिंह | 20 | 3 | - | 3 | 10 | 2 | - | 1 | 1 | - | - | - | - |
| हिरदे शाह | 7 | - | 4 | - | 1 | 1 | - | - | - | 1 | - | - | - |
| सुल तान सिंह | 11 | - | 7 | - | - | - | 1 | - | - | - | 1 | 1 | 1 |
| कल्याण सिंह | 14 | - | 14 | - | - | - | - | - | - | - | - | - | - |
| जोधा सिंह | 8 | 1 | 1 | - | - | - | 6 | - | - | - | - | - | - |
| अन्य | 86 | - | - | - | - | - | - | - | - | - | - | - | - |

इन डकैतियों में लगभग रूपए 316467-8-4 की सम्पत्ति लूटी गई और इसमें से बहुत कम ही सरकार द्वारा वापिस प्राप्त किया जा सका ।

**डकैती रोकने के उपाय :-**

बुन्देलखण्ड क्षेत्र में डकैती को समाप्त करने में अनेक कठिनाईयां थीं । इसका प्रमुख कारण था कि क्षेत्र छोटे-छोटे अनेक राज्यों में बंटा था जिससे क्षेत्र प्रमुखों के क्षेत्राधिकार स्पष्ट नहीं थे । दरबार प्रमुखों ने भी यह बात समझने में अधिक बुद्धिमत्ता का परिचय नहीं दिया था कि प्रत्येक के क्षेत्र की शान्ति एवं सुरक्षा के लिए आवश्यक था कि वे सभी मिल-जुल कर इन डकैतों का सामना करें चाहे इन डकैतों का निवास स्थान अथवा कार्य-क्षेत्र कहीं भी क्यों न हो ।

ब्रिटिश भारत क्षेत्र में भी इन डकैतों के विरूद्ध कार्यवाही करने में बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ा । ब्रिटिश न्यायिक अधिकारियों द्वारा अपराध एवं संरक्षण शब्दों की व्याख्या और डाकुओं के साथियों द्वारा उपलब्ध कराए गए प्रमाणों के आधार पर इन्हें अपराधी घोषित करने में रूचि न लिए जाने के कारण ब्रिटिश भारत में उन लोगों को सजा देना लगभग असम्भव हो गया जो डकैतों की सहायता करते थे । ब्रिटिश भारत में यहां के स्थानीय निवासियों द्वारा की जाने वाली डकैतियों की संख्या बहुत कम थी और अंग्रेजी पुलिस अपने क्षेत्र में डकैतियों की कम संख्या इसलिए दिखा सकती थी क्योंकि यहां डकैतों को सीमा के सभी ओर से मुक़ाबला करने में असुविधा थी ।

डकैतों को पकड़ने में एक और कठिनाई यह थी कि दुर्ग लोदी को छोड़कर सभी डकैत नेता ठाकुर थे और उनके भू-स्वामियों एवं अधिकारियों से सम्बन्ध थे। अधिकतर डकैत इन्हीं में से थे इसके अतिरिक्त एक महत्वपूर्ण बात यह भी थी कि डकैतों ने थोड़े ही समय में बहुत सम्मान प्राप्त कर लिया था । बहादुरी से लड़कर उन्होंने धन एवं बल सभी कुछ प्राप्त कर लिया था। क्षेत्र की रियासती सरकारों की सेवाएं उनसे मुकाबला करने में सक्षम नहीं थीं एवं उनके पास उचित हथियार भी नहीं थे । इन्हीं कारणों से डकैत लम्बे समय तक अपने अभियानों में सफलता प्राप्त करते रहे । इसीलिए सरकार द्वारा डाकुओं को पकड़ने के लिए नियुक्त बहुत से अधिकारियों ने इन डाकुओं से मित्रता करने में ही अपनी बुद्धिमानी समझी । डाकुओं पर आक्रमण करने के लिए गठित एक दल के मुखिया कलन्दर सिंह ने डाकू दुर्ग सिंह से मित्रता कर ली थी जबकि मूरत सिंह और चमन्दर दो अधिकारियों ने भी इस प्रकार दुर्ग लोदी से समझौता कर लिया था ।

दुर्ग सिंह पर आक्रमण किया गया और पीछा करके उसे लखेरी पहाड़ियों में खदेड़ दिया गया । लुगासी में खुर्दा डकैती के समय पुनः उसका सामना किया गया । इसी तरह डूंगरपुर डकैती के बाद डाकू दुर्ग लोदी को उसके गिरोह के साथ चारों ओर से पूरी तरह से घेर लिया गया । इन सभी डकैतियों के समय डाकुओं पर आक्रमण करने वाले दल असफल रहे । यद्यपि कभी-कभी कुछ सफलता भी मिली लेकिन यह सफलता महाराजा ओरछा एवं महाराजा पन्ना की सेनाओं द्वारा हासिल की गई ।

डाकुओं का सामना करने में एक अन्य कठिनाई भी थी जिसके कारण नौगांव गैरिसन (Nowgaon Garrison) से प्रभावी सहायता प्राप्त करने में कठिनाई थी । इसका कारण यह था कि डाकुओं के आवागमन के बारे में पहले से सही जानकारी प्राप्त नहीं होती थी । गांव के लोग या तो डाकुओं के भय से या फिर किसी अन्य कारण से तब तक सरकारी अधिकारियों को डाकुओं के बारे में सूचना देने में कोई सहायता नहीं करते थे जब तक उनमे से कुछ को सरकार द्वारा यह सूचना न देने के लिए और डाकुओं को शरण देने के लिए दण्डित नहीं किया गया अथवा जब तक उन्हें इस बात का पूरी तरह विश्वास नहीं हो गया कि सरकार इन डाकुओं को कुछ ही समय में किस भी कीमत पर गिरफ्तार करना चाहती है अथवा मार डालना चाहती है । इस प्रकार डाकुओं की गतिविधियों के बारे में सही जानकारी न होना उन्हें पकड़ने में सबसे बड़ी कठिनाई थी।

ऐसा कहा जाता है कि एक बार डाकू सुल्तान सिंह अपने गिरोह के 15-16 सदस्यों के साथ 8-10 दिनों तक झांसी जिले में कटेरा से जिगनी तक सफर करता रहा और पुलिस को इस गिरोह के वहां होने की कोई सूचना नहीं थी । एक अन्य घटना में लगभग 80 डाकू एक साथ बिजावर के पारा नामक क्षेत्र में एकत्र हुए । उन्हें तब तक कोई कठिनाई नहीं हुई जब तक कि उनमें से कुछ पास के एक गांव में नहीं घुस गए जहां एक पुलिस दल पहले से उपस्थित था । इस दल द्वारा इन डाकुओं पर हमला किया गया लेकिन एक डाकू को घायल करने के बाद डाकुओं की संख्या अधिक होने के कारण इस

पुलिस दल को हथियार डालने पड़े । घायल डाकू को उसके साथियों द्वारा लगभग तीन महीने तक अपने साथ ले जाया गया और फिर वह मर गया लेकिन न तो उसे और न ही उसके साथियों को कभी पकड़ा जा सका । एक अन्य घटना में डकैत लम्बे समय तक अलीपुरा एवं झांसी के सीमावर्ती क्षेत्र पर स्थित धसान के पास पड़ाव डाले रहे और अपनी सुविधानुसार ही वे स्थान छोड़ कर गए लेकिन पुलिस उनका कुछ नहीं बिगाड़ सकी ।

बुन्देलखण्ड एजेन्सी में 7 नवम्बर, 1892 को हैन्किन ने अपनी नियुक्ति के पश्चात डाकुओं से निपटने के लिए कई महत्वपूर्ण कदम उठाए । छः माह के भीतर ही उसने दुर्ग लोदी और दुर्ग सिह के गिरोहों का पता लगा लिया एवं उन डाकुओं की जानकारी भी प्राप्त कर ली जो उसके बुन्देलखण्ड आने से पूर्व ही अपना मुखिया खो चुके थे । इसके लिए हैन्किन ने जो योजना बनाई उसके अनुसार उसने पहले उन लोगों को पकड़ने का प्रयास किया जो डाकुओं से सहानुभूति रखते थे एवं उनकी सहायता करते थे। इनके माध्यम से डाकुओं को पकड़ना निश्चय ही आसान हो गया था । हैन्किन की यह योजना पूर्णतः सफल रही । पोलिटिकल एजेंट बुन्देलखण्ड का विश्वास था कि इस योजना के दूरगामी परिणाम होंगे और काफी समय तक क्षेत्र में डाकुओं का प्रकोप पुनः नहीं बढ़ेगा । हैन्किन द्वारा गिरफ्तार कराए गए डाकुओं को एजेन्सी न्यायालयों द्वारा

नियमानुसार कड़े दंड दिए गए जिससे आस-पास के उन क्षेत्रों के लोगों को एक सीख मिली जहां लोगों में कानून का भय कम हो गया था ।

1 जनवरी, 1889 से 10 अक्तूबर, 1893 तक एजेन्सी न्यायालयों द्वारा डाकुओं को निम्नलिखित सजाएं दी गईं इनमें से अधिकांश डाकू ओरछा एवं पन्ना में डकैतियों के लिए पकड़े गए थे :-

| सजा | डाकुओं की संख्या |
|---|---|
| मौत की सजा | 30 |
| आजीवन कारावास | 113 |
| 10 वर्ष का कारावास | 36 |
| 7 वर्ष का कारावास | 5 |
| 6 वर्ष का कारावास | 5 |
| 5 वर्ष का कारावास | 27 |
| 4 वर्ष का कारावास | 8 |
| 3 वर्ष का कारावास | 16 |
| 2 वर्ष का कारावास | 13 |
| 1 वर्ष का कारावास | 4 |
| कुल | 257 |

इस प्रकार एजेन्सी न्यायालयों द्वारा 257 लोगों को डकैती के लिए दन्डित किया गया जिनमें से नौगांव कैन्टूमैंट का एक बनिया भी था जो डकैतों को हथियार दिया करता था । इस विवरण में वे व्यक्ति शामिल नहीं हैं जिन पर 10 अक्तूबर, 1893 को अभी मुकद्दमा चल रहा था। इनके अतिरिक्त राज्य सरकारों के न्यायालयों (Native State Courts) द्वारा डाकुओं को शरण देने एवं उनकी सहायता करने के अपराध के लिए 383 लोगों को दण्डित किया गया था । बुन्देलखण्ड के पोलिटिकल एजेन्ट के अनुसार सम्भवतः राजकीय न्यायालयों द्वारा अधिक लोगों को दंडित किया गया था लेकिन उनकी गणना ठीक से नहीं हो सकती थी क्योंकि सरकारी रिकार्ड ठीक से तैयार नहीं किए गए थे। कुछ गांवों में, जहां आवश्यक था, दण्ड देने वाली पुलिस चौकियां भी बनाई गई थीं।

पोलिटिकल एजेन्ट, बुन्देलखण्ड का मानना था कि बुन्देलखण्ड क्षेत्र में बढ़ती डकैतियों से दतिया एवं समथर राज्यों का प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं था, बल्कि कुछ सीमा तक डकैती के कारण बढ़ने वाली कठिनाइयों का एक कारण 1884 में इन दरबारों द्वारा अपनाया गया असाधारण रवैया था । ओरछा के महाराजा की प्रशंसा करते हुए पोलिटिकल एजेन्ट ने लिखा था कि महाराजा ओरछा ही केवल ऐसा दरबार प्रमुख था जिसने बिना किसी सहायता के डकैतों का सामना करने में सफलता प्राप्त की । कई अवसरों पर उसके अधिकारियों द्वारा बहुत से डकैत पकड़े गए ।[1] पन्ना दरबार ने

---

1 फाइल संख्या 13/1894

अतिरिक्त पुलिस व्यवस्था पर बहुत सा धन खर्च किया और ब्रिटिश सरकार द्वारा डकैती से निपटने के लिए लागू किए गए उपायों को कार्यान्वित करने में पूरा सहयोग प्रदान किया । पोलिटिकल एजेन्ट के अनुसार चरखारी और छतरपुर राज्यों ने भी डकैती से निपटने के लिए कोई कमी नहीं रहने दी थी । छतरपुर राज्य ने इस कार्य के लिए सेन्ट्रल प्रोविन्सिस से एक इन्स्पेक्टर आफ पुलिस की सेवाएं भी प्राप्त की थीं । अजयगढ़ राज्य से किसी डकैती की सूचना नहीं थी लेकिन ऐसा माना जाता था कि डकैतों को इस राज्य में शरण प्राप्त थी ।[1] दरबार प्रमुख के एक सम्बन्धी को एक डाकू दुर्ग सिंह को एक 'मार्टिनी हेनरी कार्बाइन' (Martini Henry Carbine) देने के अपराध में दरबार द्वारा सजा भी दी गई थी ।

अलीपुरा, गरौली, बीहट और लुगासी की छोटी जागीरों पर भी डाकुओं का साथ देने का सन्देह था । इनका प्रशासन इतना कमजोर था कि डकैतों के शक्तिशाली गिरोहों को सन्तुष्ट करने के लिए अवश्य ही इन्हें भारी कीमत चुकानी पड़ी होगी ।

श्री हैन्किन द्वारा डकैती के संबंध में पेश की गई रिपोर्ट में अलीपुरा के राव की निन्दा भी की गई है।[2] इस रिपोर्ट के अनुसार अप्रैल, 1883 में श्री हैन्किन की प्रतिनियुक्ति के संबंध में केवल 200 रूपए का मासिक अंशदान देने के अतिरिक्त इस

---

1 फाइल संख्या 13/1894

2 -वही-

जागीर द्वारा डकैती से निपटने के संबंध में कोई ठोस कदम नहीं उठाए गए । अलीपुरा जागीर के गांवों में की जाने वाली नौ डकैतियों में से छः डाकू जोधा सिंह द्वारा डाली गई थीं जिसकी अलीपुरा के राव से व्यक्तिगत दुश्मनी थी । हैन्किन ने अपनी रिपोर्ट में लिखा है कि वे व्यक्ति जो डकैतों के भोजन इत्यादि की व्यवस्था करते थे या उनकी सहायता करते थे यह वही लोग थे जो लगभग 20 वर्ष पूर्व स्वयं इस पेशे से जुड़े थे । ऐसा प्रतीत होता है कि 1889 से 1893 के दौरान की जाने वाली डकैतियों से जुड़े उन लोगों को सजा नहीं मिली थी जो डाकुओं की सहायता करते थे। ब्रिटिश क्षेत्र के आस-पास के स्थानों पर डाकुओं को दंडित करने के उद्देश्य से स्थापित की गई दण्ड देने वाली चौकियों को इस लिए समाप्त कर दिया गया क्योंकि खराब मौसम के कारण फसलों के प्रभावित होने से लोग इनका खर्च उठाने में असमर्थ थे ।

पोलिटिकल एजेंट के अनुसार 1884 में बुन्देलखण्ड में जानमाल की सुरक्षा को केवल भगवान का वरदान समझा जा सकता था । क्षेत्र के लोग एवं दरबार प्रमुख भी इस से पूर्णतः अवगत थे । इससे पहले ठाकुर भी अपने-अपने दरबारों के प्रति इतने नम्र कभी नहीं रहे । लेकिन दूसरी ओर गांव के धनी वर्ग ने इन डकैतियों के कारण इतनी हानि उठाई कि इन गांवों में साधारण बैंकिग कामकाज एवं किसानों के लिए बीज इत्यादि का प्रबन्ध करने में यह वर्ग अधिक सहायता कर सकने में असमर्थ था।

हैन्किन की रिपोर्ट के अनुसार डकैती से निपटने के लिए किए गए विशेष उपायों का एक महत्वपूर्ण परिणाम यह हुआ कि विधान परिषद के समक्ष एक बिल पेश किया गया जिसमें अपराध (Offence) शब्द के तकनीकी अर्थ को बदलने की व्यवस्था थी । पोलिटिकल एजेन्ट का मानना था[1] कि जैसे ही यह बिल कानून बन जाएगा ब्रिटिश भारत में रहकर उन डकैतों को जिन्होंने किसी देशी राज्य में डकैती की है अथवा करने वाले हैं उनको शरण देना अथवा किसी प्रकार से उनकी सहायता करना अत्याधिक खतरनाक हो जाएगा ।

डकैती को समाप्त करने के लिए राज्यों को अतिरिक्त खर्च भी वहन करना पड़ा। उन्हें अपनी पुलिस एवं सिपाहियों की संख्या में वृद्धि करनी पड़ी थी । इस कार्य में बहुत से सरकारी कर्मचारियों की सहायता भी लेनी पड़ी । मई 1892 से ठगी एवं डकैती विभाग के अधिकारी बुन्देलखण्ड क्षेत्र में डकैती समाप्त करने के उद्देश्य से कार्यरत थे । इनमें एक इन्स्पेक्टर (11 मई, 1892 से) एक डिप्टी इन्स्पेक्टर (1 मई, 1892 से 19 जून, 1893 तक), एक दफादार, जिसका नाम रामनारायण था और दस नजीब थे । इन पर होने वाला खर्च अजयगढ़, बिजावर, चरखारी, छतरपुर और पन्ना राज्यों द्वारा समान रूप से वहन किया गया । 31 अक्तूबर, 1893 तक इन अधिकारियों पर लगभग 8,200 रूपए का खर्च आया ।

---

1 फाइल संख्या 13/1894

श्री हैन्किन को डकैती से निपटने के उद्देश्य से ब्रिटिश सरकार द्वारा विशेष अधिकारी के रूप में नियुक्त किया गया था । देशी राज्यों द्वारा श्री हैन्किन की नियुक्ति पर उनके वेतन, कार्यालय खर्च इत्यादि के रूप में 7 नवम्बर, 1892 से अक्तूबर, 1893 तक लगभग 15600 रूपए का खर्च वहन किया गया । इस खर्च का एक चौथाई भाग अजयगढ़, बिजावर एवं पन्ना राज्यों द्वारा दिया गया तथा चरखारी एवं छतरपुर प्रत्येक द्वारा आठवां भाग खर्च प्रदान किया गया । राज्यों को ब्रिटिश सरकार द्वारा उपलब्ध कराई गई सुविधाओं में ठगी एवं डकैती विभाग के अधिकारियों की निःशुल्क सेवाएं एवं डकैती मामलों को निपटाने के लिए एक विशेष अधिकारी की सेवाएं सम्मिलित थीं । इस विशेष अधिकारी का नाम कैप्टन ए.एस.राकी (A.S.Rooke) था जिसे ब्रिटिश सरकार द्वारा 800 रूपए प्रतिमाह वेतन दिया जाता था । बाद में राज्यों द्वारा 100 रूपए प्रतिमाह भत्ते के रूप में भी दिए जाते थे ।

बुन्देलखण्ड के पोलिटिकल एजेंट के अनुसार दरबारों द्वारा डाकुओं के बारे में सही सूचना देने के लिए पुरस्कार भी दिए जाते थे । 1 मई, 1893 से पोलिटिकल एजेन्ट ने इस सम्बन्ध में स्वयं लगभग 15,000 रूपए वितरित किए थे और 300 रूपए मूल्य का एक गांव उस व्यक्ति को पुरस्कार स्वरूप दिया था जिसकी सूचना के आधार पर सरकार द्वारा डाकू दुर्ग सिंह को गिरफ्तार किया जा सका था ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि क्षेत्र में 1889 से प्रारम्भ हुई डकैतियों को समाप्त करने के लिए ब्रिटिश सरकार एवं राज्य दरबारों द्वारा यथा-सम्भव प्रयत्न किए गए । इसीलिए इस दिशा में सरकार को अच्छी सफलता भी मिली लेकिन डाकुओं के पकड़े जाने एवं उन्हें एजेन्सी न्यायालयों द्वारा सजा दिए जाने के साथ ही सरकार की डाकुओं संबंधी कठिनाईयां समाप्त नहीं हुईं बल्कि पकड़े गए एवं एजेन्सी न्यायालयों द्वारा सजा दिए जाने वाले डाकुओं को कई वर्ष, जितनी उन्हें सजा हुई, तक जेल में रखने पर होने वाले खर्च का भार भी सरकार एवं संबंधित राज्य सरकारों पर आ पड़ा । सरकारी आदेशों के अनुसार एजेन्सी न्यायालयों द्वारा सजा दिए गए सभी अपराधियों को ब्रिटिश जेलों में रखा जाता था और उस राज्य को जिसके क्षेत्राधिकार में वह अपराध किया जाता था, उस अपराधी पर होने वाले खर्च का भार उठाना पड़ता था जब तक कि ब्रिटिश सरकार द्वारा विशेष रूप से उस राज्य को इस खर्च से मुक्त न कर दिया गया हो । ऐसा केवल उस राज्य के अत्याधिक निर्धन होने की दशा में ही किया जाता था । चूंकि इन वर्षों में क्षेत्र में बहुत सी डकैतियां पड़ीं और कई डकैतों को गिरफ्तार कर उनमें से कुछ को इस अपराध के लिए कैद की सजा और कुछ को काले पानी की सजा भी दी गई इसलिए पोलिटिकल एजेंट, बुन्देलखण्ड का मानना था कि देशी राज्य सरकारों से इस संबंध में लिए जाने वाले खर्च को सावधानीपूर्वक तय किया जाना चाहिए।[1] एक सरकारी

---

1 फाइल संख्या 13/1894

आदेशानुसार। यह प्रावधान था कि यदि कोई व्यक्ति भिन्न-भिन्न राज्यों में किए गए अपराधों के लिए दोषी पाया जाता है और उसे सजा दी जाती है तो ऐसी स्थिति में उस पर सजा की अवधि में होने वाले खर्च को गवर्नर जनरल के एजेन्ट के आदेशानुसार उन राज्यों में बांटा जा सकता था जिनके क्षेत्राधिकार में वे अपराध किए गए हों किन्तु डकैती के संबंध में इस सरकारी आदेश को लागू करना अत्यन्त कठिन था क्योंकि अधिकतर डकैत जिन्हें गिरफ्तार कर सजा दी गई थी उन्होंने अलग-अलग राज्यों में कई डकैतियां डाली थीं किन्तु सम्भवतः केवल एक डकैती के लिए ही उन पर मुकद्दमा चला और उन्हें सजा दी गई थी । मुकद्दमे के लिए इस डकैती का चयन भी उन पर होने वाले खर्च को ध्यान में रखकर नहीं किया गया था । अधिकांश मामलों में उस डकैती के अपराध में मुकद्दमा चलाया गया था जिसमें कोई हत्या भी की गई थी अथवा ऐसी डकैती के लिए मुकद्दमा चलाया गया था जिसके आधार पर अधिक-से-अधिक व्यक्तियों पर मुकद्दमा चल सके और उन्हें सजा दी जा सके अथवा ऐसी डकैती जिसमें गवाह एवं तथ्य आसानी से उपलब्ध हो सकें । उदाहरण के लिए डाकू दुर्ग सिंह ने बिजावर में तीन, पन्ना में तीन, छतरपुर में दस, चरखारी में दो, लुगासी में एक और गरौली में एक डकैती डाली। डाकू गम्भीर सिंह, जो छतरपुर का रहने वाला था, पन्ना एवं बिजावर की एक-एक डकैती को

1 फाइल संख्या 13/1894-विदेश विभाग आदेश संख्या 2729-I दिनांक 7 अगस्त, 1886

छोड़कर इन सभी डकैतियों में डाकू दुर्ग सिंह के साथ था । उसे गरौली की डकैती के लिए काले पानी की उम्र कैद की सजा हुई । सरकार के उपरोक्त आदेशानुसार अन्डमान में उसकी उम्र कैद के खर्च को गरौली जागीर द्वारा वहन किया जाना चाहिए यदि इस जागीर को निर्धनता के आधार इस खर्च से मुक्त न कर दिया जाए । ऐसी दशा में यह खर्च ब्रिटिश सरकार को उठाना होगा ।

इन उम्र कैद की सजा प्राप्त किए डाकुओं के खर्च के संबंध में बुन्देलखण्ड के पोलिटिकल एजेन्ट द्वारा एक महत्वपूर्ण सुझाव दिया गया । इसके अनुसार यदि किसी व्यक्ति द्वारा दस डकैतियां डाली गई हों वे राज्य जिनमें यह डकैती डाली गई उनमें से प्रत्येक को हर डकैती के लिए उस व्यक्ति पर होने वाले खर्च का 1/10 भाग खर्च उठाना चाहिए। इस सुझाव को लागू करने में एक मात्र कठिनाई यह थी कि ओरछा एवं पन्ना राज्यों में यदि किसी व्यक्ति द्वारा डकैती डाली गई हो, इन राज्यों को फौजदारी शक्तियां होने के कारण यह उस डाकू को ब्रिटिश न्यायालय द्वारा सजा दिए जाने पर उसके खर्च के संबंध में कुछ भी देने का विरोध करते । इस कठिनाई को दूर करने के लिए पोलिटिकल एजेन्ट का सुझाव था कि यदि किसी व्यक्ति द्वारा 10 डकैतियां डाली गई हों जिनमें से 2 पन्ना में और 2 ओरछा में हों तो ऐसी स्थिति में अन्य राज्यों से उसके खर्च का 1/6 भाग प्रत्येक डकैती के लिए ले लिया जाए । इस प्रकार हर डाकू द्वारा डाली गई कुल डकैतियों की संख्या में से पन्ना और ओरछा में डाली गई डकैतियों की संख्या घटा दी जानी चाहिए

और इस तरह प्रत्येक राज्य द्वारा उस डाकू की सजा की अवधि का खर्च तय किया जाना चाहिए । यद्यपि इस विधि से खर्च तय करने से ऐसा प्रतीत होता है कि ओरछा एवं पन्ना राज्यों का पक्ष लिया गया किन्तु पोलिटिकल एजेन्ट का मानना था कि केवल यही एक तरीका था जिसके अनुसार प्रत्येक कैदी पर आने वाले खर्च का राज्यों में उचित प्रकार से बंटवारा किया जा सकता था । इन राज्यों के संबंध में पोलिटिकल एजेन्ट का विचार था कि ओरछा राज्य की सरकार स्वयं काफी सुदृढ़ थी और अपने राज्य में होने वाली डकैतियों से निपटने में सक्षम थी । पन्ना राज्य से डाकुओं के विभिन्न गिरोहों में केवल 5 व्यक्ति शामिल थे लेकिन अन्य राज्यों के डाकू गिरोहों द्वारा इस राज्य की प्रजा को काफी हानि पहुंचाई गई थी । इस राज्य द्वारा ब्रिटिश अधिकारी श्री हैन्किन के डाकुओं को पकड़ने के प्रयासों में भी बहुत सहायता की गई थी । इसीलिए पोलिटिकल एजेंट ने डाकुओं की सजा की अवधि के दौरान उन पर होने वाले खर्च को ओरछा एवं पन्ना राज्यों द्वारा न वहन करने की सिफारिश की थी ।

एक अन्य सुझाव यह भी था कि उम्र कैद के सभी डाकुओं की एक सूची तैयार की जाए और उनमें से प्रत्येक के बारे में यह जानकारी दी जाए कि सजा की अवधि (25 वर्ष) पूरी कर लेने के पश्चात उसे बुन्देलखण्ड में आने की अनुमति दी जाए अथवा नहीं। पोलिटिकल एजेन्ट का विश्वास था कि ऐसी सूची बनाने से कम-से-कम उन डाकूओं के प्रति नरम रूख अपनाने का अवसर प्राप्त हो सकेगा जिन्होंने डकैती के

अपराध में सजा हो जाने के बाद अन्य डाकुओं को गिरफ्तार करवाने में सरकार की सहायता की थी ।

क्षेत्र में डकैती से निपटने के लिए उस समय कुछ अन्य सुझाव भी दिए गए ।.श्री हैन्किन का सुझाव था कि इस कार्य के लिए एक नियमित पुलिस व्यवस्था की जाए । राज्य दरबारों को भी इस सुझाव से अवगत करा दिया गया था ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि 1889 से बुन्देलखण्ड में बढ़ने वाली डकैतियों से छुटकारा प्राप्त करने के लिए ब्रिटिश सरकार द्वारा सफलतापूर्ण कदम उठाए गए । इस कार्य के लिए सरकार द्वारा नियुक्त ब्रिटिश अधिकारी श्री हैन्किन की लगन और कर्मठता के कारण उसे डकैती रोकने के अभियान में महत्वपूर्ण सफलता मिली । उसके प्रयासों की पोलिटिकल एजेंट, बुन्देलखण्ड द्वारा भी भूरि-भूरि प्रशंसा की गई । इस दिशा में पन्ना के महाराजा और छतरपुर के राजा द्वारा किए गए प्रयासों की भी सरकार द्वारा प्रशंसा की गई । ब्रिटिश सरकार द्वारा इस संबंध में मध्य भारत के एजेंट, गवर्नर जनरल को यह सुझाव दिया गया कि उचित अवसर देखकर वह इन राज्यों को डकैती से निपटने के लिए उनके द्वारा किए गए प्रयासों के बारे में ब्रिटिश सरकार की खुशी से अवगत करा दें । उम्र कैद एवं लम्बी सजा प्राप्त डाकूओं के खर्च संबंधी पोलिटिकल एजेन्ट के सुझाव के बारे में ब्रिटिश सरकार का मत था कि यद्यपि भारत सरकार साधारणतः देशी राज्यों से उन कैदियों के खर्च उठाने की आशा नहीं रखती थी जिन्होंने उनके क्षेत्राधिकार से हटकर

डकैती की और उन्हें इसके लिए सजा दी गई किन्तु चूंकि अनेक राज्यों ने श्री हैन्किन द्वारा तैयार किए गए डाकुओं संबंधी विवरण को आधार बना कर लोगों में पुरस्कार इत्यादि बांटे थे और इसलिए इन डाकुओं पर होने वाले खर्च को भी पोलिटिकल एज़ेन्ट द्वारा दिए गए सुझावों के अनुसार हैन्किन की सूची के अनुसार क्षेत्र के विभिन्न राज्यों एवं जागीरों में बांटने के सुझाव को सरकार ने स्वीकार कर लिया । पन्ना एवं ओरछा राज्यों को कोई खर्च न देने का सुझाव भी ब्रिटिश सरकार द्वारा विशेष परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए स्वीकार कर लिया गया ।

नशीले पदार्थों की तस्करीः

बुन्देलखण्ड में चोरी एवं डकैती के अपराधों के अतिरिक्त गांजा, चरस, अफीम इत्यादि की तस्करी जैसे गम्भीर अपराध भी हो रहे थे जिन्हें रोकने के लिए सरकार को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा ।

गाजा एवं अफीम नशीले पदार्थ थे जिनका प्रयोग दवाएं इत्यादि बनाने में किया जाता था किन्तु इसका सेवन लोगों द्वारा नशे के रूप में अधिक किया जाता था । इस कारण क्षेत्र में इसके अवैध व्यापार को बढ़ावा मिलने लगा । बुन्देलखण्ड के कुछ राज्यों में गांजा एवं अफीम बहुत कम मूल्य पर उपलब्ध हो जाते थे लेकिन ब्रिटिश भारत में यह सरकार द्वारा निर्धारित मूल्य पर ही बेचा जाता था । मूल्य में अन्तर अधिक होने के कारण इसकी तस्करी बढ़ने लगी ।

क्षेत्र में गांजा के उत्पादन के बारे में सही आंकड़ों का अनुमान लगाना कठिन था। इसका एक मुख्य कारण था कि दरबारों को इस बात का भय था कि गांजा के सही उत्पादन की जानकारी ब्रिटिश सरकार के आबकारी विभाग को हो जाने पर वह उनके आबकारी नियमों में हस्तक्षेप करेगी जिसके लिए वे बिल्कुल तैयार नहीं थे । ब्रिटिश अधिकारी, तहसीलदार, डिप्टी कलेक्टर एवं ब्रिटिश बुन्देलखण्ड के अन्य अधिकारियों को इन रियासतों एवं जागीरों में गांजा की पैदावार के बारे में उचित जानकारी नहीं थी और न ही उन्हें इन दरबारों द्वारा लागू आबकारी नियमों की जानकारी थी । इसीलिए इस संबंध में आंकड़े प्राप्त करने का स्रोत दवाईयां बनाने वाले ठेकेदार एवं अन्य सामान्य लोग ही थे लेकिन इनकी सूचना पर्याप्त नहीं थी और परस्पर विरोधी होती थी ।

दतिया इस समय एक मात्र ऐसा राज्य था जिसमें गांजा की पैदावार बड़े पैमाने पर की जाती थी । पोलिटिकल एजेंट बुन्देलखण्ड की सूचना के अनुसार दतिया में लगभग 76 मन गाजा प्रति वर्ष पैदा होता था ।[1] दतिया दरबार द्वारा इस राज्य में गांजा उत्पन्न किए जाने को आधिकारिक तौर पर स्वीकार किया गया था । क्षेत्र के दूसरे राज्यों में गांजा की खेती करना या तो मना था या फिर दरबारों द्वारा दी गई सूचना के अनुसार उनके यहां गांजा की पैदावार न के बराबर थी लेकिन आबकारी कमिश्नर जे.एच.काक्स (J.H.Cox) के अनुसार ब्रिटिश बुन्देलखण्ड के राज्यों में यह रोक दृढ़ता से कभी लागू

---

1 फाइल संख्या 42/1903

नहीं की गई थी और यद्यपि गांजा अधिक मात्रा में नहीं पैदा किया जाता था लेकिन आमतौर पर घरेलू प्रयोग के लिए इसकी खेती की जाती थी । घरेलू प्रयोग के लिए की जाने वाली इस खेती के पीछे एक मुख्य उद्देश्य सम्भवत: ब्रिटिश बुन्देलखण्ड के साथ गैर-कानूनी ढंग से गांजा का व्यापार करना भी था क्योंकि कानूनी रूप से गांजा की उपलब्धता सीमित ही थी।

दतिया में गांजा की पैदावार या निर्यात पर कोई प्रतिबंध नहीं था जबकि ग्वालियर में यद्यपि पैदावार पर कोई रोक नहीं थी किन्तु गांजा निर्यात करने पर प्रति मन 5 रूपए का निर्यात शुल्क देना पड़ता था । क्षेत्र के दूसरे राज्य गांजा की अपनी आवश्यकता के लिए दतिया एवं ग्वालियर पर निर्भर थे । दतिया एवं ग्वालियर के सीमावर्ती राज्य समथर में आयात की मात्रा पर कोई प्रतिबंध नहीं था लेकिन दूसरे राज्यों द्वारा किया जाने वाला गांजा का आयात जिसे ब्रिटिश भारत से होकर ले जाना पड़ता था उसके लिए पोलिटिकल एजेंट, बुन्देलखण्ड द्वारा अनुमति पत्र जारी किए जाते थे । पोलिटिकल एजेंट द्वारा किसी राज्य को उसके सामान्य प्रयोग से अधिक मात्रा में गांजा ले जाने के लिए अनुमति पत्र जारी नहीं किया जाता था । यह मात्रा पिछले आंकड़ों के आधार पर तय की जाती थी लेकिन जब पोलिटिकल एजेंट को इस बात की सूचना मिली कि कई राज्य खान्डवा से गांजा प्राप्त कर रहे थे जिसके लिए उस जिले के ब्रिटिश अधिकारियों द्वारा बिना पोलिटिकल एजेंट की जानकारी के इस आयात के लिए अनुमति पत्र जारी किए जा

रहे थे तो उसे बहुत आश्चर्य हुआ ।[1] इस प्रकार ब्रिटिश बुन्देलखण्ड से होकर किस राज्य द्वारा औसत रूप से कितना गांजा आयात किया जा रहा था इसके बारे में सही अनुमान लगाना बहुत कठिन था ।

इसी प्रकार दो देशी रियासतों के बीच गांजा का आयात-निर्यात किस प्रकार एवं कितनी मात्रा में हो रहा था इसकी जानकारी सम्भवतः पोलिटिकल एजेंट को नहीं थी । वास्तव में वे राज्य जिनके पक्ष में पोलिटिकल एजेंट द्वारा कभी अनुमति पत्र जारी नहीं किए गए थे वे अपनी आवश्यकता की पूर्ति छतरपुर राज्य एवं ऐसे ही कुछ अन्य राज्यों से करते थे । यद्यपि इस संबंध में राज्यों में यह समझौता था कि कोई भी राज्य दूसरे राज्य को बिना अनुमति पत्र जारी किए निर्यात की अनुमति नहीं देगा किन्तु वास्तव में यह समझौता किस सीमा तक प्रभावी था इसके विषय में कुछ भी कहना कठिन है ।[2]

बुन्देलखण्ड के सभी राज्यों में गांजा बेचने का अधिकार किसी एक ठेकेदार को दिया जाता था जो अधिकतर आबकारी एवं तम्बाकू का संयुक्त ठेका ले लेता था । गांजा बेचने वाली दुकानों की संख्या नियमानुसार यद्यपि सीमित थीं किन्तु वास्तव में यह संख्या सीमित नहीं होती थी । नियम के अनुसार तीन मील पर एक दुकान होनी चाहिए थी किन्तु वास्तव में यह नियम लागू नहीं किया गया था । ऐसे राज्य भी थे जिनमें यदि यह

---

1 फाइल संख्या 42/1903

2 -वही-

नियम लागू किया जाता तो पूरे राज्य में सम्भवत: एक भी ऐसी दुकान न होती क्योंकि इन राज्यों एवं बहुत सी जागीरों का क्षेत्र बहुत कम था ।

बुन्देलखण्ड के ब्रिटिश क्षेत्र में बहुत सी दुकानें गांजा चरस की थीं । यद्यपि इन्हें भी गांजा पोलिटिकल एजेंट द्वारा जारी किए गए अनुमति पत्र पर ही प्राप्त होता था लेकिन यह सच था कि यह नशीले पदार्थ ब्रिटिश क्षेत्र में बिना किसी अनुमति के ही लाए जाते थे उदाहरण के लिए जालौन में सामी (Sami) गांव जहां गांजा चरस की एक दुकान थी जिसमें बहुत बिक्री होती थी लेकिन इस दुकान द्वारा पिछले तीन वर्षों में कभी भी गांजा अनुमति पत्र के आधार पर आयात नहीं किया गया था ।[1]

ब्रिटिश साम्राज्य का वह क्षेत्र जो स्थानीय रियासतों से घिरा था उसमें गांजा की कोई दुकान नहीं थी क्योंकि वहां गांजा का व्यापार करना सम्भव नहीं था । इसका एक कारण यह था कि स्थानीय रियासतों में गांजा आसानी से एवं सस्ते मूल्य पर उपलब्ध हो जाता था । स्थानीय रियासतों में भी गांजा का मूल्य अलग-अलग क्षेत्रों में अलग-अलग था । कहीं यह 12 आना प्रति सेर था और कहीं गांजा 2 रूपए प्रति सेर मिलता था । एक अन्य महत्वपूर्ण बात यह थी कि यह मूल्य पश्चिमी राज्यों की अपेक्षा पूर्वी क्षेत्र के राज्यों

---

1 फाइल संख्या 42/1903-आबकारी कमिश्नर का बुंदेलखंड के पोलिटिकल एजेंट को पत्र दिनांक 24.8.1903

में अधिक था।[1]

बुन्देलखण्ड के अतिरिक्त आसपास के क्षेत्रों से भी गांजा की तस्करी की जाती थी । रीवा तथा चौबे जागीरें जो बघेलखण्ड एजेन्सी के अन्तर्गत आती थीं और बांदा जिले की सीमा पर थीं इनमें यद्यपि आबकारी के वही नियम लागू होते थे जो बुन्देलखण्ड में थे लेकिन बांदा के अधिकारियों का विश्वास था कि इन क्षेत्रों में गांजा का व्यापार बड़े पैमाने पर किया जाता था यद्यपि चौबे जागीरदारों के अनुसार इन जागीरों में निम्न श्रेणी का गांजा कुछ ही मात्रा में पैदा किया जाता था । रीवा में गांजा की खेती करना मना था लेकिन विश्वस्त सूत्रों के अनुसार यहां गांजा का गैर कानूनी व्यापार होता था । इसके प्रमाण में बांदा के अधिकारियों का तर्क था कि रीवा राज्य में वर्ष 1900 में केवल 4 मन गांजा ही वैध रूप से आयात किया गया था जबकि उतनी ही जनसंख्या वाले बुन्देलखण्ड राज्यों में इस वर्ष लगभग 200 मन गांजा आयात किया गया था। इसलिए सम्भवतः गांजा की शेष आवश्यकता की पूर्ति अवैध रूप से की गई थी ।

आबकारी कमिश्नर जे.एच.काक्स (J.H.Cox) के अनुसार चूंकि इन देशी रियासतों एवं राज्यों में गांजा की खेती पर लगाए गए प्रतिबन्ध पूर्णतः अप्रभावी थे इसीलिए ब्रिटिश भारत में गांजा की तस्करी रोकने के लिए सरकार द्वारा किए गए उपाय प्रभावहीन हो गए थे । छोटे-छोटे वे राज्य जो मिलकर बुन्देलखण्ड एजेंसी का एक बड़ा

---

1 फाइल संख्या 42/1903

भाग थे इनमें गांजा की खेती पर लगाए गए प्रतिबन्ध लगातार असफल रहे थे क्योंकि इन राज्य प्रमुखों द्वारा इन्हें लागू करने में अधिक रूचि नहीं ली गई थी । इसलिए पूरे क्षेत्र में इन प्रतिबन्धों को प्रभावी रूप से लागू करने के लिए आवश्यक था कि यह राज्य इन्हें लागू करने में या ते स्वयं रूचि लें या फिर ऐसा करने के लिए उन पर सरकार द्वारा अत्याधिक दबाव डाला जाए ।

गांजा की तस्करी रोकने के लिए यदि बुन्देलखण्ड राज्यों को इसका आयात तथा इसकी खेती करने से रोका भी जाता तब भी इसमें एक कठिनाई यह थी कि झांसी से होकर यह अवैध आयात आसानी से किया जा सकता था क्योंकि झांसी ग्वालियर और इन राज्यों के बीच स्थित था और इस आयात के लिए व्यापारियों को झांसी के बहुत कम क्षेत्र को पार करना पड़ता था । अतः यह आवश्यक था कि ग्वालियर और इन्दौर में गांजा की खेती पर रोक लगाई जाएऔर खान्डवा से किए जाने वाले इसके निर्यात को रोका जाए ।

एक अन्य उपाय यह था कि राज्यों द्वारा स्वयं इस रोक को सख्ती से लागू किया जाए लेकिन आबकारी कमिश्नर का मानना था कि यह स्थानीय राज्य ऐसा कर सकने में असमर्थ थे क्योंकि ऐसा करके वे गांजा के उन ग्राहकों को इस नशीले पदार्थ के प्रयोग से पूर्णतः वंचित नहीं कर सकते थे जिन्हें एक लम्बे समय से इस नशे की लत पड़ चुकी थी।

क्षेत्र में गांजा के अवैध व्यापार को रोकने की योजना के अनुसार यह सुझाव दिया गया कि इसके लिए स्थानीय रियासतों एवं जागीरों को इस बात के लिए सहमत किया जाए कि वह अपने-अपने क्षेत्र में गांजा पर कर लगाकर इसके मूल्य में वृद्धि करें ताकि यह मूल्य ब्रिटिश भारत में इसके मूल्य के लगभग बराबर हो सके । लेकिन इस योजना की सफलता के लिए ग्वालियर तथा दतिया राज्यों का सहयोग अति आवश्यक था । चूंकि ग्वालियर एवं दतिया राज्यों में गांजा की अच्छी पैदावार होती थी अत: यह आवश्यक था कि ये राज्य अपने-अपने क्षेत्र में गांजा की खेती को नियंत्रित करें या फिर इसकी फसल को राज्य के गोदामों में जमा कर दिया जाए एवं स्थानीय उपयोग के लिए इसे बढ़े हुए मूल्य अथवा कर लगाकर इसका मूल्य बढ़ाकर बेचा जाए जिससे यह मूल्य ब्रिटिश भारत में बेचे जाने वाले गांजा के मूल्य के बराबर हो जाए ताकि अवैध व्यापार को रोका जा सके ।

अन्य राज्यों के लिए यह सुझाव दिया गया कि इन राज्यों द्वारा गांजा का स्थानीय उत्पादन बन्द कर दिया जाना चाहिए एवं इसका आयात अनुमति पत्रों के द्वारा नियंत्रित किया जाना चाहिए । खान्डवा से आयात किए जाने वाले गांजा पर भी कर लगाने की आवश्यकता थी । अत: बुन्देलखण्ड क्षेत्र में गांजा की तस्करी के लिए बघेलखण्ड के इन राज्यों से भी सहयोग की अपेक्षा की गई ।[1]

---

1 फाइल संख्या 42/1903

पोलिटिकल एजेंट को विश्वास था कि उपरोक्त सुझावों को लागू करके जहां एक ओर राज्यों को कर लगाकर अतिरिक्त आय प्राप्त होती दूसरी ओर गांजा का मूल्य बढ़ जाने से ब्रिटिश भारत में इसके अवैध व्यापार को रोका जा सकता था ।

लेकिन फिर भी इस योजना को लागू करने में कुछ कठिनाइयां थीं । यद्यपि बहुत से राज्य इन सुझावों के पक्ष में थे किन्तु कुछ ऐसे भी थे जिन्होंने इन सुझावों को लागू करने में अधिक रूचि नहीं दिखाई थी । कुछ समय पहले इसी प्रकार की एक योजना अफीम की अवैध बिक्री रोकने के उद्देश्य से भी बनाई गई थी लेकिन इसे अभी तक ग्वालियर सरकार का सहयोग प्राप्त नहीं हो सका था इसीलिए आबकारी विभाग के अधिकारियों का मानना था कि गांजा के लिए उपरोक्त वर्णित सुझावों को कार्यान्वित करने का अभी उचित अवसर नहीं था । उनका विचार था कि उपरोक्त योजना को कार्यान्वित करने के लिए सरकार को तीन-चार वर्ष तक प्रतीक्षा करनी चाहिए क्योंकि तब तक अफीम की इसी प्रकार की योजना के अन्तर्गत लगाए गए करों से राज्य सरकारों को लाभ का अनुभव होने लगेगा और ये राज्य गांजा से संबंधित इसी प्रकार के उपरोक्त वर्णित उपायों को स्वेच्छा से स्वीकार कर लेंगे ।

इस प्रकार आबकारी अधिकारियों द्वारा दिए गए उपरोक्त सुझाव यद्यपि क्षेत्र में गांजा की तस्करी रोकने के लिए उपयुक्त थे तथा पोलिटिकल एजेंट भी इन सुझावों से सहमत था किन्तु उसका विचार था कि गांजा से संबंधित यह उपाय कार्यान्वित करने से

पहले अफीम के अवैध व्यापार को रोकने संबंधी उपायों को सख्ती से लागू करने की आवश्यकता थी । पोलिटिकल एजेंट के अनुसार क्षेत्र में दतिया एकमात्र ऐसा राज्य था जहां की सरकार द्वारा राज्य में गांजा की पैदावार को स्वीकार किया गया था । वर्ष 1902 में इस राज्य द्वारा लगभग 77 मन गांजा उत्पन्न किया गया था लेकिन अनेक रियासतें ऐसी थीं जहां गांजा उत्पन्न तो किया जाता था किन्तु यहां की सरकारों द्वारा सदैव यही घोषणा की जाती थी कि यहां गांजा उत्पन्न नहीं किया जाता । इसलिए पोलिटिकल एजेंट द्वारा यह सुझाव भी दिया गया कि ऐसे राज्य जो अपने यहां गांजा की पैदावार को स्वीकार नहीं करते उन्हें गांजा के उत्पादन पर पूरी तरह रोक लगा देनी चाहिए ।

छतरपुर राज्य द्वारा यद्यपि गांजा की स्थानीय पैदावार को स्वीकार नहीं किया गया था किन्तु यह आस-पास के राज्यों को गांजा वितरण करने का एक मुख्य केन्द्र था इसीलिए पोलिटिकल एजेंट का विचार था कि इस राज्य को यह निर्देश दिया जा सकता था कि किसी भी राज्य को एजेंसी के अनुमति पत्रों के बिना गांजा का निर्यात न किया जाए । इसी प्रकार खजुराहो के गांजा विक्रेताओं को भी बिना इन अनुमति पत्रों के थोक में गांजा बेचने की मनाही कर दी गई लेकिन स्थानीय राज्यों में गांजा के मूल्य में अचानक अत्याधिक वृद्धि करके उसे ब्रिटिश क्षेत्र में गांजा के मूल्य के समकक्ष लाना सम्भव न था इसीलिए इस मूल्य में धीरे-धीरे वृद्धि करने का निर्णय लिया गया ।

यद्यपि ब्रिटिश भारत में गांजा के अवैध आयात को प्रभावी ढंग से रोकने के लिए यह आवश्यक था कि इसका मूल्य बढ़ाकर कम-से-कम 8 रूपए से 9 रूपए प्रति सेर कर दिया जाए किन्तु अभी तक यहां गांजा का मूल्य बहुत कम था । आबकारी कमिश्नर के अनुसार यह मूल्य 400% से बढ़ाकर 1000% नहीं किया जा सकता था । इस मूल्य में धीरे-धीरे वृद्धि की जा सकती थी ।

ऐसे स्थानीय गांव जो ब्रिटिश क्षेत्र से घिरे थे वहां गांजा के आयात के लिए गांव की जनसंख्या के अनुसार पोलिटिकल एजेंट द्वारा अनुमति पत्र जारी करने की योजना शुरू की गई । यद्यपि वर्ष 1903 तक भी पोलिटिकल एजेंट द्वारा कुछ गांवों में इस आयात के लिए इस प्रकार केअनुमति पत्र प्रदान किए जाते थे लेकिन किस क्षेत्र के लिए इस प्रकार के कितने अनुमति पत्र दिए जाएं इस संबंध में कोई नियम सख्ती से लागू नहीं किए गए थे । नई योजना के अनुसार गांजा का आयात क्षेत्र की जनसंख्या के अनुपात में किए जाने का सुझाव था ।

ब्रिटिश क्षेत्र के अन्तर्गत आने वाले वे गांव जो स्थानीय गांवों से घिरे थे वहां गांजा के अवैध व्यापार को रोकने के संबंध में तब तक ठोस उपाय नहीं किए जा सकते थे जब तक आस-पास के स्थानीय गांवों में गांजा ब्रिटिश ठेकेदार द्वारा बेचे जाने वाले गांजा के मूल्य से कम मूल्य पर उपलब्ध था । इसका केवल एक ही उपाय था कि स्थानीय राज्यों द्वारा गांजा के मूल्य में वृद्धि करके उसे ब्रिटिश क्षेत्र में बिकने वाले मूल्य

के लगभग बराबर कर दिया जाए ताकि मूल्य में अन्तर के कारण इसके अवैध व्यापार को पूरी तरह रोका जा सके ।

गांजा के अतिरिक्त इस अवधि में चरस के व्यापार से संबंधित भी कुछ आंकड़ें उपलब्ध हैं । पालिटिकल एजेंट के अनुसार क्षेत्र में केवल चार राज्यों द्वारा ही चरस आयात की जाती थी । कुल वार्षिक आयात औसत लगभग एक मन वार्षिक था जो बाउनीं, चरखारी, अलीपुरा व ओरछा राज्य द्वारा किया जाता था।

| | mrs | chs |
|---|---|---|
| बाउनी | 15 | 1 |
| चरखारी | 6 | 7 |
| अलीपुरा | 0 | 10 |
| ओरछा | 17 | 10 |
| कुल | 39 | 13 |

चरस का यह आयात होशियारपुर से तथा बाउनी द्वारा उरई से किया जाता था। अन्य राज्यों में चरस की खपत सम्बन्धी विशेष जानकारी नहीं मिलती ।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि बुन्देलखण्ड में चोरी, डकैती, तस्करी जैसे सभी गम्भीर अपराध हो रहे थे जिससे सरकार की चिंता बढ़ना स्वाभाविक था । इन अपराधों के कारण जन-जीवन प्रभावित हुआ । लोगों को एक ओर चोरी डकैती बढ़ने के कारण धन की क्षति हुई वहीं नशीले पदार्थों के मूल्यों में अन्तर के कारण क्षेत्र में इनके अवैध व्यापार को बढ़ावा मिला । अतः सरकार के लिए आवश्यक हो गया कि बढ़ते हुए अपराधों पर नियत्रण प्राप्त करने के लिए क्षेत्र में पुलिस बल को बढ़ाया जाए । सरकार द्वारा पुलिस का मनोबल बढ़ाने के उद्देश्य से पुलिस में विभिन्न स्तरों पर वेतन में वृद्धि करने पर भी विचार किया गया ताकि पुलिस व्यवस्था को सुदृढ़ किया जा सके ।

नौगांव क्षेत्र में पुलिस व्यवस्था किस प्रकार की थी एवं इसे मजबूत करने के लिए सरकार द्वारा क्या प्रयास किए गए इसके बारे तत्कलीन फाइलों इत्यादि के आधार पर हमें निम्नलिखित जानकारी प्राप्त हुई है ।

**पुलिस व्यवस्था :**

सन् 1872 में नौगांव कैन्टूनमेंट क्षेत्र की आबादी लगभग 4,000 थी । इस समय यहां के पुलिस विभाग में निम्नलिखित अधिकारी एवं कर्मचारी नियुक्त किए गए

थे जिनका प्रतिमाह वेतन इस प्रकार था :

| | | | वेतन (प्रतिमाह) |
|---|---|---|---|
| | | | रू. आ. पै. |
| 1 | कोतवाल | | 30 - 0 - 0 |
| 1 | मुख्य कांस्टेबल | | 15 - 0 - 0 |
| 1 | मुर्हरिर हैड कांस्टेबल | | 12 - 0 - 0 |
| 2 | हैड कांस्टेबल | @ 10 | 20 - 0 - 0 |
| 3 | हैड कास्टेबल | @ 8 | 24 - 0 - 0 |
| 7 | कांस्टेबल | @ 6 | 42 - 0 - 0 |
| 25 | कांस्टेबल | @ 5 | 125 - 0 - 0 |
| कुल 40 | | | 268 - 0 - 0 |

इस प्रकार नौगांव पुलिस पर प्रतिवर्ष लगभग रूपए 3216 खर्च होता था । क्षेत्र में जनसख्या बढ़ने के साथ-साथ पुलिस दल में वृद्धि की आवश्यकता अनुभव की गई । 1882 में यहां की जनसंख्या लगभग 7000 व्यक्ति हो गई थी इसीलिए सन् 1886 में केन्टूनमेंट मजिस्ट्रैट कैप्टन एफ.जी.एलेक्जेन्डर ने बुन्देलखण्ड के पोलिटिकल एजेंट से नौगांव केन्टूनमेंट में पुलिस व्यवस्था को अधिक सुदृढ़ किए जाने के संबंध में

सरकार की अनुमति प्राप्त करने का अनुरोध किया ।[1] उनका विचार था कि उपरोक्त पुलिस दल में एक हैड कांस्टेबल 8 रूपए प्रतिमाह वेतन पर और चार कांस्टेबल 6 रूपए प्रति व्यक्ति प्रतिमाह वेतन पर और सम्मिलित किए जाने चाहिएं । इस वृद्धि के मुख्य दो कारण थे : एक यह कि क्षेत्र की जनसंख्या में 1886 तक हुई वृद्धि के अनुपात में पुलिस व्यवस्था में वृद्धि करना आवश्यक था। दूसरा कारण यह था कि कैन्टूनमेंट के विशाल क्षेत्र की देख रेख के लिए उपरोक्त वर्णित पुलिस दल पर्याप्त नहीं था । पुलिस में वृद्धि के इस सुझाव को स्वीकार करने पर सरकार को लगभग 528 रूपए प्रति वर्ष का अतिरिक्त व्यय वहन करना पड़ता । इसलिए इस व्यय की पूर्ति के लिए कैन्टूमेंट मजिस्ट्रेट द्वारा यह सुझाव रखा गया[2] कि वर्ष 1884 में चूंकि प्राप्तियां पिछले वर्षों की अपेक्षा अधिक होने की संभावना थी क्योंकि अब कैन्टूनमेंट भूमि का पुनः सर्वेक्षण करके उसे छोटे-छोटे भूखण्डों में बेचने की योजना बनाई गई थी । इसके पूर्व यह भूमि धनी लोगों को बेची जाती थी जो शीघ्र ही अपने लाभ के लिए इसे छोटे-छोटे भूखण्डों में बांट कर पुनः बेच देते थे । अतः इस योजना से प्राप्त होने वाले धन से अतिरिक्त पुलिस के खर्च की व्यवस्था की जा सकती थी लेकिन मध्य भारत के गवर्नर जनरल के एजेंट द्वारा सन् 1886 में यह कह कर नौगांव पुलिस दल में वृद्धि के प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया गया कि क्षेत्र में अपराध दर में

---

1 फाइल संख्या 10/1886-पत्र सं. 36 दिनांक 15 जनवरी, 1886

2 फाइल संख्या 10/1886

इतनी वृद्धि नहीं हुई थी कि अतिरिक्त पुलिस दल की आवश्यकता हो । अतः इस प्रस्ताव को यथा समय बाद में प्रस्तुत किया जाए ।[1]

इसके पश्चात जुलाई, 1887 में केन्टूनमेंट मजिस्ट्रेट द्वारा पुनः पोलिटिकल एजेंट बुन्देलखण्ड को नौगांव पुलिस के वेतनमान में वृद्धि करने का प्रस्ताव भेजा गया । इसका मुख्य कारण यह था कि 1872 की अपेक्षा कैन्टूनमेंट क्षेत्र की जनसंख्या इस समय तक बहुत बढ़ गई थी । सदर बाजार क्षेत्र में घरों की संख्या अधिक हो गई थी । उपलब्ध आंकड़ों के अनुसार 1876 में सदर बाजार की आबादी लगभग 3921 थी जो वर्ष 1887 तक बढ़कर 5186 हो गई थी तथा कैन्टूमेंट के लगभग 11 वर्ग मील क्षेत्र के लिए यहां तैनात पुलिस दल की संख्या पर्याप्त नहीं थी ।

केन्टूनमेंट क्षेत्र की सीमा में इस समय तीन पुलिस चौकियां थीं । इन पर न्यूनतम आवश्यक 10 पुलिस जवान एवं 2 हैड कांस्टेबल तैनात करने के बाद शेष केवल 22 पुलिस जवान लगभग 8000 आबादी वाले इस क्षेत्र के लिए , सदर बाजार क्षेत्र के लिए एवं केन्टूनमेंट मजिस्ट्रेट के कार्यालय की दिन एवं रात की ड्यूटी के लिए पर्याप्त नहीं थे । अतः केन्टूनमेंट मजिस्ट्रेट के अनुसार अब पुलिस व्यवस्था को सुदृढ़ किए जाने की अति आवश्यकता थी ।[2]

---

1 फाइल संख्या 10/1886-पत्र संख्या 208 ए दिनांक 5 फरवरी, 1886

2 फाइल संख्या 10/1886-पत्र संख्या 585 दिनांक 18 जुलाई, 1887

नौगांव केन्टूनमेंट कमेटी द्वारा 6 जुलाई, 1887 को एक प्रस्ताव पारित किया गया। इस प्रस्ताव के अनुसार नौगांव केन्टूनमेंट पुलिस अपने कार्य को भली-भांति करने के लिए न तो गिनती में ही पर्याप्त थी और न ही इन अधिकारियों एवं जवानों को पर्याप्त वेतन मिलता था । अतः इनकी संख्या एवं वेतन में वृद्धि किए जाने का एक प्रस्ताव पारित करके सरकार को भेजा गया ।

नौगांव केन्टूनमेंट कमेटी के इस निर्णय के अनुसार पुलिस दल की संख्या 40 से 50 किए जाने का प्रस्ताव था । सभी पुलिस अधिकारियों एवं जवानों के वेतनमानों में भी वृद्धि की संस्तुति की गई थी । इस प्रस्ताव के अनुसार पुलिस के विभिन्न स्तरों के लिए निम्नलिखित संख्या एवं वेतन होने चाहिएं :

| संख्या | पद | वेतन (प्रतिमाह) | रूपए | आना | पैसा |
|---|---|---|---|---|---|
| 1 | कोतवाल | @ 30 रूपए | 30 | - | - |
| | घोड़े के लिए भत्ता | @ 15 रूपए | 15 | - | - |
| 1 | चीफ कांस्टेबल | @ 20 रूपए | 20 | - | - |
| 2 | हैड कांस्टेबल | @ 10 रूपए | 20 | - | - |
| 3 | हैड कांस्टेबल | @ 9 रूपए | 27 | - | - |
| 10 | कांस्टेबल | @ 7 रूपए | 70 | - | - |
| 15 | कांस्टेबल | @ 6 रूपए | 90 | - | - |

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| 17 | कांस्टेबल | @ 5 रूपए | 85 | - | - |
| 1 | मुहर्रिर | @ 12 रूपए | 12 | - | - |
| 50 | | कुल रूपए (प्रतिमाह) | 369 | - | - |
| | | कुल खर्च रूपए(प्रतिवर्ष) | 4428 | - | - |

कैन्टूनमेंट मजिस्ट्रेट द्वारा भेजे गए नौगांव केन्टूनमेंट कमेटी के उपरोक्त प्रस्ताव को स्वीकार करने से पहले एजेंट, गवर्नर जनरल क्षेत्र की जनसंख्या एवं वहां तैनात यूरोपीय एवं देशी सेनाओं की संख्या जानना चाहते थे । अतः पोलिटिकल एजेंट द्वारा अक्तूबर, 1887 को एजेंट गवर्नर जनरल को इस संबंध में आंकड़े भेजे गए । यह विवरण इस प्रकार था :

| | | |
|---|---|---|
| 1. | क्षेत्र की जनसंख्या | 5859 |
| | ब्रिटिश सेनाएं | |
| 2. | P.Battery 4th Brigade R.A. | 145 |
| 3. | Wing 2nd Devonshire Regiment | 452 |
| | देशी सेनाएं | |
| 4 | 11th (PWO) Bengal Lancers | 624 |
| 5 | Wing 3rd Bengal Infantary | 484 |

| | | |
|---|---|---|
| 6 | Depot 10th Bengal Infantry | 178 |
| 7 | Native followers with European & Native Troops | 907 |
| | कुल | 8649 |

कैन्टूनमेंट मेजिस्ट्रेट द्वारा नौगांव क्षेत्र की पुलिस व्यवस्था को सुदृढ़ करने का उपरोक्त प्रस्ताव इसके सभी पहलुओं पर विचार करने के पश्चात् सरकार द्वारा 1 अप्रैल, 1888 से लागू किए जाने के लिए स्वीकृत कर लिया गया । यद्यपि एजेंट गवर्नर जनरल का विचार था कि उन 17 कांस्टेबलों की संख्या में से 2 कांस्टेबल कम कर दिए जांए जो प्रस्ताव के अनुसार 5 रूपए प्रतिमाह पर नियुक्त किए जाने थे और उन सभी का वेतन 5 रूपए प्रतिमाह के स्थान पर 6 रूपए प्रतिमाह कर दिया जाए लेकिन बाद में कैन्टूनमेंट मजिस्ट्रेट की संस्तुति पर इन कांस्टेबलों की संख्या में कोई कमी नहीं गई और उनका वेतन 5 रूपए प्रतिमाह से बढ़ाकर 6 रूपए प्रतिमाह कर दिया गया । यह परिवर्तित वेतन नौगांव कैन्टून्मेंट फन्ड से दिया जाना सरकार द्वारा स्वीकार कर लिया गया।

इस प्रकार अप्रैल, 1888 से नौगांव में पुलिस बल की संख्या में वृद्धि के साथ-साथ उनके वेतन में वृद्धि होने से क्षेत्र की पुलिस का मनोबल बढ़ा । सरकार का यह कदम निश्चय ही क्षेत्र की प्रगति की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम माना जा सकता है क्योंकि

पुलिस सुसंगठित होने का अर्थ था कि अब क्षेत्र में अपराधों पर अधिक अच्छी तरह नियंत्रण पाया जा सकता था ।

**नौगांव जेल का प्रबन्ध :**

पुलिस व्यवस्था सुदृढ़ करने के साथ-साथ सरकार ने क्षेत्र में जेलों के सुधार पर भी ध्यान दिया । विशेष रूप से नौगांव जेल के प्रबन्ध में सुधार के लिए कैप्टन रामसे (Captain Ramsay) द्वारा सन् 1894 में विशेष नियम बनाए गए जिन्हें 9 जून, 1894 को एजेंट गवर्नर जनरल द्वारा कुछ संशोधनों के साथ पारित कर दिया गया । अभी तक नौगांव जेल की व्यवस्था अच्छी नहीं थी । जेल के कर्मचारियों को बहुत कम वेतन मिलता था । वे जेल के रखरखाव पर अधिक ध्यान नहीं देते थे । सम्भवतः जेल अधिकारियों को जेल सम्बन्धी नियमों की अधिक जानकारी नहीं थी । अतः इस जेल का प्रशासन सुधारने की अति आवश्यकता थी । कैप्टन रामसे के अनुसार उसने नौगांव जेल के लिए यह विशेष नियम पूर्वोत्तर प्रोविन्सेस जेल मैन्युअल का भली-भांति अध्ययन करके बनाए थे । इस प्रकार नौगांव जेल की व्यवस्था एवं प्रशासन में सुधार लाने के लिए जो नियम बनाए गए उनमें से कुछ मुख्य नियम इस प्रकार थे[1] :-

1. इन नियमों के अनुसार यह आवश्यक कर दिया गया था कि Prisoners Act, Act XXII, 1870 की अंग्रेजी एवं स्थानीय भाषा में एक-एक प्रति जेल में

---

1 फाइल संख्या 32/1893

रखी जाए । दरोगा इस एक्ट के प्रावधानों को अपने अधीन जेल के सभी कर्मचारियों को समझाएगा और पोलिटिकल एजेंट को इस बारे में सन्तुष्ट करेगा कि उसने ऐसा किया है ।

2. यदि कैदियों को बाहरी श्रम के लिए ले जाया जाए तो एक सिपाही को अधिक-से-अधिक सात कैदियों की निगरानी का काम सौंपा जाए और इन सात में से भी कम-से-कम एक ऐसा हो जो अपनी सजा लगभग पूरी कर रहा हो ।

3. पोलिटिकल एजेंट की विशेष अनुमति के बिना पांच साल से अधिक की कड़ी सजा प्राप्त कैदी को बाहरी श्रम के लिए नहीं भेजा जाना चाहिए ।

4. पुरूष कैदियों को जेल से दूसरी जगह स्थानान्तरित करते समय उनके साथ जाने वाले सिपाहियों की संख्या पोलिटिकल एजेंट द्वारा तय की जायेगी । स्थानान्तरण के समय उन्हें हमेशा हथकड़ी में ले जाया जाएगा ।

5. जेल का प्रत्येक अधिकारी एवं कर्मचारी यह सुनिश्चित करेगा कि जेल नियमों के उल्लंघन अथवा दुर्व्यवहार की कोई भी घटना उसकी जानकारी में आने पर वह दरोगा या पोलिटिकल एजेंट को तुरन्त इसकी सूचना दे ।

6. कैदियों को श्रम के लिए जेल से बाहर ले जाते समय उनका इन्जार्च उनकी गिनती करके दरोगा या ड्यूटी पर तैनात अन्य अधिकारी को सूचित करेगा ।

वह उनकी सुरक्षा के लिए जिम्मेदार होगा और यह सुनिश्चित करेगा कि वे काम में जाते समय या काम करते समय किसी अन्य से बात न करें और गैर-कानूनी ढंग से किसी से कोई हथियार न प्राप्त कर सकें ।

7. महिला कैदी जिन्हें छः माह से कम की सजा हुई हो उन्हें वार्डन की निगरानी में रखा जाएगा ।

8. छः महीने से अधिक सजा प्राप्त महिला कैदियों को इन्दौर रेजीडेन्सी की जेल में भेज दिया जाए ।

महिला कैदियों के संबंध में यह नियम सम्भवतः इसलिए बनाए गए थे क्योंकि नौगांव जेल में महिला कैदियों की देखरेख के लिए महिला वार्डन नहीं थीं अतः कैप्टन रामसे का सुझाव था कि कम समय की सजा प्राप्त महिला कैदियों के जेल में आने पर महिला वार्डन की अस्थायी नियुक्ति कर ली जाए । लम्बी सजा प्राप्त महिला कैदियों को उन जेलों में भेज दिया जाए जहां उनके रहने की उचित व्यवस्था हो ।

9. इन नियमों के अनुसार जेल के महिला वार्ड में कोई भी पुरूष अधिकारी अकेला नहीं जाएगा ।

10. कोई भी जेल कर्मचारी अथवा अधिकारी जेल की चारदीवारी के भीतर तम्बाकू, अफीम, गांजा या अन्य प्रतिबन्धित वस्तु नहीं ले जाएगा ।

11. एक महत्त्वपूर्ण नियम के अनुसार प्रत्येक अधिकारी किसी अन्य अधिकारी अथवा कैदी के साथ किसी प्रकार का नजदीकी अथवा दूर का संबंध होने पर पोलिटिकल एजेंट को इसकी सूचना देगा । इस नियम की अवहेलना करने पर उसे नौकरी से निकाला जा सकता था ।

12. जेल का प्रत्येक अधिकारी यह सुनिश्चित करेगा कि पोलिटिकल एजेंट की अनुमति के बिना उसके अधीन किसी भी कैदी को परोक्ष या अपरोक्ष रूप से किसी व्यक्ति के निजी लाभ के लिए रोजगार में न लगाया जाए ।

13. दरोगा जेल की सफाई इत्यादि के लिए उत्तरदायी होगा । वह यह सुनिश्चित करेगा कि कोई सीढ़ी, रस्सी, पटरे इत्यादि जेल में ऐसे स्थान पर न छोड़े जाएं जहां इनसे कैदियों के जेल से भागने में सहायता मिल सके ।

14. नियमानुसार किसी भी कर्मचारी को अधिक-से-अधिक केवल चार घंटे तक जेल से अनुपस्थित रहने की अनुमति दी जा सकती थी ।

15. नौगांव जेल में अनुशासन रखने के लिए जेल एक्ट एक मार्गदर्शक का कार्य करेगा । इसलिए इन नियमों द्वारा जेल अधिकारियों एवं कर्मचारियों को चेतावनी दी गई कि यदि निम्न नियमों का उल्लंघन होगा तो उन्हें इसकी सजा अवश्य मिलेगी-

    i. ड्यूटी पर सोना, चाहे दिन की ड्यूटी हो अथवा रात की ;

ii. जेल में सीढ़ी, बांस या कैदियों के भागने में सहायक किसी और वस्तु का पड़ा रहना, औजार, यन्त्र इत्यादि अपने सुनिश्चित स्थान पर न रखकर उनके जेल में इधर-उधर पाए जाने पर ;

iii. कैदियों को जेल में अथवा बाहर बिना किसी अधिकृत कर्मचारी की निगरानी के छोड़ दिए जाने पर अथवा कैदियों द्वारा किसी बहाने से अपना काम छोड़ देने पर संबंधित अधिकारी/कर्मचारी को दोषी माना जाएगा ;

iv. जेल की किसी कोठरी अथवा जेल के मुख्य द्वारा को बिना ताला लगाए छोड़ देने पर या उसकी चाबियां असावधानी से रखने पर ;

v. किसी कर्मचारी द्वारा कैदियों की किसी कोठरी में रात को बिना आज्ञा प्रवेश करने पर ;

vi. यदि किसी कैदी द्वारा जेल अधीक्षक, चिकित्सा अधिकारी या किसी सरकारी आगुन्तक से मिलने की इच्छा प्रकट की जाए और उसकी इस इच्छा को उस कर्मचारी द्वारा जान- बूझ कर संबंधित अधिकारी की जानकारी में न लाए जाने पर ;

vii. जेल में अथवा जेल से बाहर बाहरी व्यक्तियों को बिना अधिकृत अधिकारियों की आज्ञा से कैदियों से बातचीत की अनुमति देना

अथवा उन्हें कैदियों की कोठरी में जाकर उनसे घुल मिल कर बातें करने देना ;

viii. अपने अधीन कैदियों की जांच और उनकी हथकड़ी अथवा उनकी कोठरी के ताले इत्यादि की जांच करने में लापरवाही करना;

ix. कैदियों को बाहर ले जाते समय और काम से वापिस लाते समय उनकी गिनती न करना ।

इन नियमों के अन्तर्गत जेलर, वार्डन, रात की ड्यूटी के चौकीदार आदि के कर्तव्यों को स्पष्ट रूप से उल्लिखित किया गया । इसके अतिरिक्त जेल में कैदियों के प्रवेश, उनके स्थानानतरण, उनको दिए जाने वाले भोजन, जेल में कैदियों को दिए जाने वाले कपड़े, मृत्यु की सजा आदि से संबंधित नियम एवं इसी प्रकार के अन्य महत्वपूर्ण नियम बनाए गए ।

नियमों के अनुसार जेलर की यह ड्यूटी थी कि सभी विभागों में आर्थिक मितव्ययता लागू की जाए । वह प्रतिदिन जेल के हर हिस्से का निरीक्षण करेगा । जेल की सलाखें, तालें, नालियां इत्यादि का निरीक्षण करेगा और यह सुनिश्चित करेगा कि कोई सीढ़ी या रस्सी इत्यादि जेल में इधर-उधर न पड़ी रहे । वह उम्र कैद की सजा प्राप्त कैदियों

की प्रतिदिन स्वयं तलाशी लेगा और उनकी बेड़ियों, कपड़ों, टिकट नम्बर और बिस्तर की जांच सुनिश्चित करेगा ।

कैदियों को प्रतिदिन दिए जाने वाले भोजन की गुणवत्ता और मात्रा के लिए जेलर उत्तरदायी होगा । हर जेलर अपना कार्यभार ग्रहण करने से पहले प्रतिभूति (Security) के रूप में 300 रूपए जमा करेगा ।

जेलर की भांति ही प्रत्येक कारापाल अथवा वार्डर की यह जिम्मेदारी होगी कि उसके अधीन सभी कैदियों द्वारा अपना कार्य भली-भांति किया जाए । दरोगा अथवा उससे उच्च अधिकारी की अनुमति के बिना वार्डर जेल से अनुपस्थित नहीं हो सकता था । नियमों के अंतर्गत यह स्पष्ट किया गया कि वार्डर तथा कैदियों के बीच किसी प्रकार की घनिष्ठता नहीं होनी चाहिये ।

रात की ड्यूटी के कर्मचारियों के कर्तव्यों एव अधिकारों का भी इन नियमों में स्पष्ट उल्लेख किया गया । साधारणतः जेल में एक रात्रि चौकीदार पर्याप्त होगा और उसकी ड्यूटी लगातार 3 घण्टों से अधिक नहीं होगी लेकिन जेल में खतरनाक कैदियों के होने पर ड्यूटी पर एक से अधिक चौकीदार होने चाहिये । रात भर जेल में घूम कर वह यह सुनिश्चित करेगा कि हर कैदी अपने अपने स्थान पर है, जेल में रोशनी (Lights) जल रही हैं और ताले, सलाखें, दरवाजे इत्यादि ठीक तरह बन्द हैं ।

इन नियमों के अनुसार जेल में किसी व्यक्ति के कैदी के रूप में प्रवेश के लिए यह आवश्यक था कि उसके पास वारन्ट अथवा सरकारी अधिकारी द्वारा प्रदत्त इस आशय का कोई प्रमाण हो । प्रत्येक सजायाफ्ता कैदी के जेल में आने पर उसे नहलाया जाएगा और उसकी तलाशी ली जाएगी । उसे जेल के कपड़े और एक टीन की प्लेट और एक टीन का प्याला (Mug) दिया जाएगा । कोई लौटा, थाली इत्यादि बर्तन रखने की अनुमति नहीं दी जा सकती ।

प्रत्येक कैदी को गले में एक कार्ड और एक टिकट धारण करना आवश्यक था जिसमें उसका नाम, कैदी नम्बर, अपराध जिसके लिए उसे सजा दी गई है उसका विवरण, सजा, सजा की तारीख और सजा से मुक्त होने की तारीख लिखी होगी । हर कैदी को जेल में प्रवेश देने से पूर्व उसकी तलाशी लेकर उससे प्राप्त वस्तुओं, सम्पत्ति आदि की सूची बनाकर उनका विवरण उसके वारन्ट के पीछे तथा इस आशय के एक रजिस्टर में लिख दिया जाएगा और इस सामान को अच्छी तरह बांध कर स्टोर रूम में जमा करा दिया जाएगा ।

कैदी की किसी भी सम्पत्ति को उसके जेल में रहने की अवधि के दौरान बिना पोलिटिकल एजेंट अथवा सहायक पोलिटिकल एजेंट की अनुमति के बेचा नहीं जा सकता था ।

जेल में प्रवेश के बाद किसी कैदी के पास कोई सम्पत्ति अथवा धन मिलने पर उसे जब्त कर लिया जाएगा और पोलिटिकल एजेंट अथवा सहायक पोलिटिकल एजेंट की आज्ञा से उसका निपटान किया जाएगा ।

मृत्यु दंड प्राप्त कैदियों के संबंध में भी यह नियम बहुत स्पष्ट थे । इनके अनुसार मृत्यु दंड प्राप्त कैदियों को हथकड़ी और बेड़ी में रखा जाएगा । उनकी और उनकी कोठरी की दरोगा द्वारा प्रतिदिन तलाशी ली जाएगी ।

मृत्यु दंड प्राप्त कैदियों के लिए एक विशेष सिपाही की ड्यूटी भी लगाई जाएगी । उनका भोजन उन्हें दरोगा की उपस्थिति में एवं उसके द्वारा जांच किए जाने के बाद दिया जाएगा । उन्हें जेल का साधारण भोजन ही दिया जाएगा और जेल में कोई अतिरिक्त सुविधाएं नहीं दी जाएंगी ।

फांसी की सजा देने से पहले कैदी की दरोगा एवं जेल के एक अन्य अधिकारी द्वारा वारन्ट में लिखे विवरणानुसार पहचान सुनिश्चित की जाएगी और सजा देने के लिए उपस्थित प्रमुख अधिकारी द्वारा उस वारन्ट का निरीक्षण किया जाएगा ।

प्रत्येक फांसी दंड के समय पोलिटिकल एजेंट अथवा उसका सहायक एवं एजेंसी सर्जन का उपस्थित रहना आवश्यक होगा ।

यह नियम सरकार द्वारा 1894 को पारित कर दिए गए । इनसे निश्चय ही नौगांव जेल के प्रशासन में सुधार लाने में बहुत सहायता मिली ।

समय-समय पर इस जेल के प्रशासन एवं प्रबन्ध में सुधार किए गए । सन् 1901 में जेल अधीक्षक वी.जी.ड्रेक ब्रोकमैन (V.G.Drake Brockman) ने पोलिटिकल एजेंट को सुझाव दिया कि नौगांव जेल में प्रशासन संबंधी कुछ परिवर्तन किए जाने चाहिए।[1] यद्यपि यह जेल चतुर्थ श्रेणी की जेल थी किन्तु अधिकारियों और कर्मचारियों का वेतन बहुत कम था और सम्भवतः इसलिए वे जेल के उचित रख-रखाव में अधिक रूचि नहीं लेते थे । जनवरी, 1901 तक जेल में निम्नलिखित पदाधिकारी थे तथा उनका वेतन इस प्रकार था :-

| संख्या | पदाधिकारी | वेतन प्रतिमाह |
|---|---|---|
| 1 | जेलर (Jailor) | रू. 45/- |
| 1 | सहायक जेलर (Assistant Jailor) | रू. 11/- |
| 1 | टर्नकी (Turnkey) | रू. 8/- |
| 7 | वार्डर (Warder) | रू. 6/- प्रत्येक |
| 1 | माली (Gardener) | रू. 5/- |
| 1 | सफाई कर्मचारी (Sweeper) | रू. 5/- |

जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है कि जेल मैनुअल में दिए गए वर्गीकरण के

1 फाइल संख्या 60/1901-पत्र संख्या 25/1901

अनुसार नौगांव जेल चतुर्थ श्रेणी (4th class) की जेल थी । जेल अधीक्षक के अनुसार इस जेल में रिजर्व गार्ड मिलिट्री विभाग द्वारा उपलब्ध कराई गई थी जबकि अन्य जेलों में ऐसा नहीं था । नौगाव जेल में रिजर्व गार्ड द्वारा मुख्य द्वार पर केवल एक संतरी दिन में एवं जेल के बाहर 4 संतरी रात की ड्यूटी के लिए दिए जाते थे । यह रिजर्व गार्ड इसके अतिरिक्त अन्य कोई कार्य नहीं करती थी जबकि अन्य सरकारी जेलों में रिजर्व गार्ड द्वारा रात के पहरे के लिए भी एक सन्तरी उपलब्ध कराया जाता था । इसके अतिरिक्त अन्य जेलों में आवश्यकता पड़ने पर रिजर्व गार्ड की सेवाओं को जेल के अन्य कार्यों के लिए भी प्रयोग किया जा सकता था लेकिन नौगांव जेल में अन्य किसी कार्य में इस गार्ड का बिल्कुल सहयोग प्राप्त नहीं था इसीलिए जेल अधीक्षक का सुझाव था कि रात के पहरे के लिए जेल में एक अतिरिक्त वार्डर की नियुक्ति कर ली जाए । बाजार से अनाज लाने इत्यादि जैसे बाहरी कार्यों के लिए जेल के माली को चपरासी के पद पर नियुक्त करके उसकी सेवाएं ली जा सकती थीं क्योंकि माली के पद पर कार्य करने वाला व्यक्ति माली के काम के लिए बिल्कुल बेकार था । जेल अधीक्षक का सुझाव था कि नौगांव जेल का प्रशासन अन्य सरकारी जेलों की भांति ही सुदृढ़ किया जाना चाहिए । यहां जेलर और सहायक जेलर का वेतन भी अन्य चतुर्थ श्रेणी जेलों के जेलर और सहायक जेलर से कम था इसलिए यह सुझाव दिया गया कि सरकार द्वारा जेल के अधिकारियों एवं कर्मचारियों के निम्नलिखित

वेतन स्वीकृत किए जाएं :-

| संख्या | पद | वेतन |
|---|---|---|
| 1 | जेलर 4th ग्रेड | रू. 60 बढ़कर 70 तक , वार्षिक वृद्धि रू.2 |
| 1 | सहायक जेलर 2nd ग्रेड | रू.25 बढ़कर 30 तक, वार्षिक वृद्धि रू.1 |
| 1 | मुख्य वार्डर 2nd ग्रेड | रू. 15 |
| 2 | वार्डर 1st ग्रेड | रू. 9 प्रत्येक (कुल रू. 18) |
| 1 | वार्डर 2nd ग्रेड | रू. 8 |
| 6 | वार्डर 3rd ग्रेड | रू. 7 प्रत्येक (कुल रू. 42) |
| 1 | चपरासी | रू. 5 (माली को चपरासी के पद पर नियुक्त किया जाएगा) |
| 1 | सफाई कर्मचारी | रू. 5 |

जेल अधीक्षक के इस सुझाव को 21 जनवरी, 1904 को स्वीकृति दे दी गई ।[1] इस प्रकार 1904 में नौगांव जेल को वास्तविक रूप से चतुर्थ श्रेणी जेल बनाने का प्रयास किया गया । जेलर एवं अन्य पदाधिकारियों की वेतन वृद्धि हो जाने से उनकी जेल के कार्य में रूचि बढ़ी और जेल का प्रशासन सुदृढ़ हुआ ।

---

1 फाइल संख्या 60/1901

सन 1903 में सैन्ट्रल इंडिया में गवर्नर जनरल के प्रथम सहायक ने बुन्देलखण्ड में पोलिटिकल एजेंट से जानना चाहा[1] कि यदि नौगांव जेल में युनाइटेड प्रोविन्सस जेल मैनुअल (United Provinces Jail Mannual) लागू किया जाए तो उसमें उन्हें किसी प्रकार की आपत्ति तो नहीं है । युनाइटेड प्रोविन्सेस जेल मैनुअल सैन्ट्रल इंडिया एजेंसी की इंदौर जेल मे तथा राजपूताना की जेलों में अपनाया गया था । गवर्नर जनरल के प्रथम सहायक का विचार था कि यदि नौगांव जेल में यह मैनुअल लागू किया जाए तो इससे जेल के प्रशासन में अधिक सुविधा होगी । पोलिटिकल एजेंट की रिपोर्ट के अनुसार सैन्ट्रल प्रोविन्सेस जेल मैनुअल (Central Provinces Jail Mannual) तथा यूनाइटेड प्रोविन्सस जेल मैनुअल (United Provinces Jail Mannual) में कोई विशेष अन्तर नहीं था ।[2] अतः पोलिटिकल एजेंट द्वारा यह संस्तुति की गई कि क्षेत्र की अन्य जेलों में यूनाइटेड प्रोविन्सस जेल मैनुअल ही अपनाया जाता था अतः नौगांव जेल में भी यही मैनुअल लागू किया जा सकता था ।[3]

अभी तक सम्भवतः नौगांव जेल में सैन्ट्रल प्रोविन्सस जेल मैनुअल अपनाया जाता था अतः सन् 1915 में नौगांव जेल के अधीक्षक लेफ्टीनेन्ट कर्नल हारवेस्ट

---

1 फाइल संख्या 32/1893-पत्र संख्या 8576 दिनांक 18 सितम्बर, 1903

2 फाइल संख्या 32/1893-पत्र संख्या 4089 दिनांक 2 नवम्बर, 1903

3 -वही-

(Liet.Col.Harvest) ने पोलिटिकल एजेंट से यह स्पष्ट प्रार्थना की कि नौगांव जेल के प्रशासन के लिए दोनों में से कौन सा मैनुअल अपनाया जाना चाहिए ।[1] जेल अधीक्षक के अनुसार नौगांव जेल में लेफ्टीनेन्ट कर्नल वी.जी.ड्रेक ब्रोकमैन ( Liet. Col. V.G.Drake Brockman) द्वारा कार्य ग्रहण करने से पहले जेल में यूनाइटेड प्रोविन्सस जेल मैनुअल ही लागू था किन्तु अनधिकृत रूप से सैन्ट्रल प्रोविन्सस जेल मैनुअल नौगांव जेल में लागू कर दिया था ।

पोलिटिकल एजेंट ने सन् 1915 में यह स्पष्ट किया कि यूनाइटेड प्रोविन्सस जेल मैनुअल जो मध्य भारत के अन्य जेलों में लागू था, वही नौगांव जेल में भी लागू होगा ।[2]

इस प्रकार सन् 1894 में नौगांव जेल के अच्छे प्रबन्ध के लिए नौगांव जेल नियम बनाए गए तथा 1915 में यह निर्णय लिया गया कि जेल में यूनाइटेड प्रोविन्सस जेल मैनुअल ही अपनाया जाएगा ।

---

1 फाइल संख्या 32/1893-पत्र संख्या 415 दिनांक 11 अक्तूबर, 1915

2 फाइल संख्या 32/1893-पत्र संख्या $\frac{3913\ B}{32-93}$ दिनांक 23 अक्तूबर, 1915

## एजेंसी न्यायालयों में फीस संबंधी नियमः

बुन्देलखण्ड एजेंसी के विभिन्न न्यायालयों में विभिन्न मुकद्दमों के लिए ली जाने वाली फीस में समानता रखने के प्रयास में दिसम्बर, 1894 में गवर्नर जनरल के एजेंट द्वारा इंदौर रेजीडेंसी के न्यायालयों में लागू किए जाने हेतु बनाए गए नियम बुन्देलखण्ड के पोलिटिकल एजेंट को इस आशय से भेजे गए कि क्षेत्रीय परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए वह इन नियमों को बुन्देलखण्ड के विभिन्न न्यायालयों में लागू करने अथवा न करने के संबंध में अपनी संस्तुति कर सके । ऐसे ही नियम ब्रिटिश सरकार द्वारा बंगाल रेजीडेंसी के न्यायालयों में भी लागू किए गए थे ।[1]

सुदृढ़ न्याय व्यवस्था के लिए यह आवश्यक था कि सभी न्यायालयों में मुकद्दमों की श्रेणी के अनुसार प्रार्थी से ली जाने वाली फीस की समान व्यवस्था हो । अतः सरकार द्वारा इस दिशा में प्रयत्न किए गए । इस संबंध में इन्दौर रेजीडेंसी न्यायालयों में लागू किए जाने वाले इन नियमों को पांच प्रमुख भागों में विभक्त किया गया था ।[2] नियम प्रथम के अन्तर्गत विभिन्न कार्यों के लिए ली जाने वाली फीस का वर्णन था । इस नियम को पुनः तीन भागों में विभक्त किया गया था ।

प्रथम भाग में उच्च न्यायालय के अपीलीय क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत आने वाले

---

1 फाइल संख्या 25/1894

2 -वही-

मुकद्दमों के संबंध में ली जाने वाली फीस का विवरण दिया गया था। इसके अनुसार प्रत्येक Summon, Subpoena, Rule, Notice, Proclamation, Injunction अथवा अन्य कोई आदेश जो नियम के इस भाग में उल्लिखित न हो उसके लिए 3-0-0 रूपए फीस निर्धारित की गई ।

इसी प्रकार क्षेत्रीय स्तर पर जांच करने या evidence लेने या अन्य किसी आशय से बनाए गए प्रत्येक कमीशन के लिए रूपए 3-0-0 फीस निर्धारित की गई । इस फीस के अतिरिक्त कमीशन अधिकारी के प्रतिदिन देय भत्ते के लिए न्यायालय द्वारा तय की जाने वाली धनराशि भी कमीशन के निर्धारित शुल्क रूपए 3-0-0 के अतिरिक्त कमीशन की अवधि तक के लिए शुल्क के रूप में कमीशन की रिपोर्ट आने से पहले जमा किए जाने का प्रावधान था । यदि कमीशन का कार्य निर्धारित अवधि में समाप्त नहीं होता तो बढ़ी हुई अवधि के लिए भी शुल्क देय होगा । उच्च न्यायालय के अपीलीय क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत किसी व्यक्ति को गिरफ्तार करने के लिए वारंट जारी करने का शुल्क रूपए 3-0-0 निर्धारित किया गया ।

नियम प्रथम के भाग द्वितीय एवं तृतीय के अन्तर्गत उच्च न्यायालयों के अतिरिक्त इन्दौर रेजीडेंसी के अन्य न्यायालयों में विभिन्न कार्यों के लिए शुल्क निर्धारित किया गया था । विभिन्न प्रकार के कार्यों के लिए देय यह शुल्क इस प्रकार था :[1]

---

1 फाइल संख्या 25/1894

| नियम प्रथमः | भाग प्रथम | भाग द्वितीय | भाग तृतीय |
|---|---|---|---|
| देय शुल्क | उच्च न्यायालय के अपीलीय क्षेत्राधिकार | उच्च न्यायालय के अतिरिक्त इंदौर रेजीडेंसी के अन्य न्यायालयों में शुल्क की दर जबकि मुकद्दमें की राशि 1000 रू. से अधिक हो | उच्च न्यायालय के अतिरिक्त इंदौर रेजीडेंसी के अन्य न्यायालयों में शुल्क की दर जबकि मुकद्दमें की राशि 1000 रू. से कम हो |
| | रू. आना पैसा | रू. आना पैसा | रू. आना पैसा |
| i) प्रत्येक Summon, Subpoeona, notice, proclamation, injunctionया अन्य कोई आदेश जो इस भाग में अन्य कहीं उल्लिखित नहीं है | 3 0 0 | 0 4 0 | 0 4 0 |
| ii) क्षेत्रीय जांच या evidence लेने या अन्य किसी आशय से कमीशन बनाए जाने पर :- | | | |
| i)कमीशन के लिए | 3 0 0 | 2 0 0 | 1 0 0 |
| ii)कमीशन अधिकारी के प्रतिदिन देय भत्ते के लिए | जैसा न्यायालय द्वारा निर्धारित हो | 3 0 0 | 3 0 0 |
| iii) किसी व्यक्ति को गिरफ्तार करने के लिए वारंट जारी करने हेतु | 3 0 0 | | |

| | | | |
|---|---|---|---|
| iv) किसी नोटिस या proclamation द्वारा सम्पत्ति कुर्क करने के process हेतु | | 2 0 0 | 1 0 0 |
| v)Actual seizure द्वारा सम्पत्ति कुर्क किए जाने की प्रक्रिया हेतु:- | --- | | |
| i) attachment के वारंट के लिए | | 2 0 0 | 1 0 0 |
| ii) सम्पत्ति की रखवाली के लिए नियुक्त प्रत्येक व्यक्ति के प्रतिदिन देय भत्ते के लिए | | 0 6 0 (कम से कम एक महीने की राशि वारंट की राशि के साथ जमा करनी हागी) | 0 4 0 |
| vi) व्यक्ति की गिरफ्तारी द्वारा सम्पत्ति के attachment की प्रक्रिया के लिए | | 5 0 0 | 2 0 0 |
| vii) सम्पत्ति बेचने हेतु किए जाने वाले प्रत्येक आदेश के लिए- | | | |
| i) बेचने के आदेश के लिए | | 2 0 0 (यह धनराशि कोर्ट से आदेश प्राप्त करते समय जमा करनी होगी) | 1 0 0 |
| ii) 1000 रू. तक की बिक्री पर poundage के तौर पर- | | 2% (यह धनराशि कोर्ट द्वारा धन देते समय काट ली जाएगी) | 2%(यह धनराशि कोर्ट द्वारा धन देते समय काट ली जाएगी) |

| और 1000 से अधिक की कुल बिक्री पर फीस के तौर पर | | 1% | 1% |
|---|---|---|---|

इस प्रकार इन नियमों के अन्तर्गत न्यायालय का आदेश प्राप्त करने के लिए फीस निश्चित कर दी गई थी । भिन्न भिन्न प्रकार के आदेशों के लिए अलग-अलग शुल्क निर्धारित किया गया था ।

नियम द्वितीय में प्रावधान था कि कोर्ट द्वारा स्वयं किसी कार्य का संदर्भ लेकर अथवा कोर्ट की अवमानना में कहे गए शब्दों का संदर्भ लेते हुए दण्ड देने के उद्देश्य से कोई सम्मन, नोटिस या गिरफ्तारी का वारंट जारी करने के संबंध में किसी आदेश संबंधी प्रक्रिया के लिए कोई फीस देय नहीं होगी ।[1]

तृतीय नियम के अनुसार नियम प्रथम के अन्तर्गत विभिन्न आदेशों को प्राप्त करने के लिए संबंधित व्यक्ति द्वारा न्यायालय से लिखित प्रार्थना करनी आवश्यक होगी और उस दस्तावेज पर नियम प्रथम में निर्धारित शुल्क की stamps लगाना आवश्यक होगा । इस दस्तावेज द्वारा जिसमें कोर्ट से लिखित प्रार्थना की गई है और निर्धारित stamps लगाई गई हैं उस प्रक्रिया की फीस देय मानी जाएगी ।[2]

चौथे एवं पांचवें नियम के अनुसार नियम प्रथम के अन्तर्गत देय वह शुल्क जो

---

1 फाइल संख्या 25/1894

2 -वही-

प्रक्रिया प्रारम्भ करने के बाद दिया जाना है उसके संबंध में कोर्ट से लिखित प्रार्थना करनी होगी और इस प्रार्थना के दस्तावेज पर अतिरिक्त देय शुल्क के बराबर stamps लगाई जाएंगी और इसके साथ उस उद्देश्य का मेमोरैंडम भी लगाया जाएगा जिसके लिए वह शुल्क देय है ।

इन नियमों को बुन्देलखण्ड एजेंसी के न्यायालयों में लागू करने अथवा न करने के संबंध में पोलिटिकल एजेंट से रिपोर्ट मांगी गई थी । पोलिटिकल एजेंट ने संस्तुति की कि फीस संबंधी यह नियम बुन्देलखण्ड एजेंसी के न्यायालयों में लागू किए जा सकते थे ।[1] पोलिटिकल एजेंट की इस संस्तुति के पश्चात् गवर्नर जनरल ने आदेश दिया कि बुन्देलखण्ड एजेंसी के ब्रिटिश न्यायालयों में इन नियमों को 1 फरवरी, 1895 से लागू कर दिया जाए ।[2] इस प्रकार फरवरी 1895 से एजेंसी के ब्रिटिश न्यायालयों में फीस के इन नियमों को लागू कर दिया गया ।

----------------

1 फाइल संख्या 25/1894-पत्र दिनांक 11 जनवरी, 1895

2 फाइल संख्या 25/1894-पत्र दिनांक 18 जनवरी, 1895

# अध्याय षष्ठम

## एक मूल्यांकन

## एक मूल्यांकन

बुन्देलखन्ड भारत के मध्य स्थित होने के कारण भौगोलिक दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण रहा है। इसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि भी सदैव से ही भारतवर्ष के लिये गौरवमयी रही है। ब्रिटिश शासन के समय इसका ऐतिहासिक गौरव और अधिक बढ़ गया जब 1857 ई. के विद्रोह में बुन्देलखन्ड क्षेत्रवासियों की सक्रिय भूमिका रही। लेकिन अपने इस भौगोलिक महत्व एवं ऐतिहासिक गौरव के बावजूद यह क्षेत्र सदियों से पिछड़ा रहा है।

अंग्रेजी शासन की दमनकारी नीतियों एवं विभिन्न प्राकृतिक आपदाओं के कारण बुन्देलखन्ड का आर्थिक विकास नहीं हो सका जिसका प्रभाव क्षेत्र के सामाजिक जीवन पर भी पड़ा। निर्धनता एवं रूढ़िवादी विचारों ने यहां की शिक्षा व्यवस्था को प्रभावित किया। अधिकांश लोगों में शिक्षा के प्रति रूचि नहीं थी। वे सम्भवतः शिक्षा के लाभ से अनभिज्ञ थे। रियासती दरबारों एवं ब्रिटिश अधिकारियों द्वारा भी शिक्षा के महत्व को साधारण लोगों को समझाने में कोई रूचि नहीं ली गई थी। शिक्षा के प्रति इस उदासीनता ने समाज की न्याय व्यवस्था को भी प्रभावित किया। समाज में चोरी, डकैती, तस्करी जैसे अपराध हो रहे थे। एक समय तो इन अपराधों में इतनी वृद्धि हो गयी थी कि लोग अपने जान माल की सुरक्षा को केवल भगवान का वरदान समझने लगे थे। चिकित्सा सम्बन्धी सुविधाओं का अध्ययन

करने पर यह स्पष्ट होता है कि क्षेत्र में मूलभूत चिकित्सा सुविधाओं का पर्याप्त विकास नहीं हुआ था।

शिक्षा, चिकित्सा एवं न्याय व्यवस्था तीनों ही किसी भी क्षेत्र के विकास में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। इस शोध प्रबन्ध में क्षेत्र की शिक्षा व्यवस्था, नागरिकों को उपलब्ध चिकित्सा सुविधा एवं न्याय व्यवस्था के आधार पर बुन्देलखन्ड के विकास के आकलन का प्रयत्न किया गया है।

ब्रिटिश सरकार द्वारा बुन्देलखन्ड में शिक्षा की प्रगति के उद्देश्य से नौगांव में राजकुमार कालेज की स्थापना करके निश्चित रूप से एक सराहनीय कार्य किया गया। इससे पूर्व क्षेत्र में इस प्रकार की शिक्षा सुविधाएं उपलब्ध नहीं थीं। नौगांव कालेज की स्थापना में विभिन्न रियासती दरबारों द्वारा आर्थिक सहायता प्रदान की गई। कालेज में इन दरबारों द्वारा दी गई आर्थिक सहायता के अनुरूप छात्रों को नामित करने का अधिकार था। इस प्रकार सम्भवतः ब्रिटिश सरकार का उद्देश्य कालेज में उच्च वर्ग के लड़कों को शिक्षा प्रदान करना ही था। ऐसा प्रतीत होता है कि इस कालेज की स्थापना करके ब्रिटिश सरकार रियासती दरबारों को ही प्रभावित करना चाहती थी। सरकार को साधारण वर्ग के लोगों के बच्चों की शिक्षा में विशेष रूचि नहीं थी। कुछ वर्षों की निरीक्षण रिपोर्टों के आधार पर बुन्देलखन्ड की विभिन्न रियासतों के स्कूलों में शिक्षा के स्तर का आकलन करने का प्रयास किया गया है। इनके आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि 19 वीं शताब्दी में बुन्देलखन्ड

की लगभग सभी रियासतों में शिक्षा के क्षेत्र में अधिक प्रगति नहीं हुई थी । जिसके मुख्य कारण थे कि लोगों की शिक्षा में अधिक रूचि नहीं थी। रियासती दरबारों द्वारा शिक्षा के विकास के लिये पर्याप्त प्रयत्न नहीं किये गये थे। अध्यापकों को अपने कार्य से अधिक लगाव नहीं था। सम्भवत: कम वेतन मिलने के कारण वे अध्यापन कार्य में अधिक रूचि नहीं लेते थे। स्कूलों में अनुशासन की कमी थी। चूंकि अध्यापक स्वयं अनुशासन के नियमों का पालन नहीं करते थे इसलिये छात्रों में भी अनुशासन लागू नहीं किया जा सकता था। यह सभी शिक्षा के पिछड़े स्तर का ही संकेत थे। लेकिन जिन राज्य सरकारों द्वारा अपने क्षेत्र में शिक्षा के विकास की ओर ध्यान दिया गया था वहां निश्चित रूप से शिक्षा का विकास हुआ। किन्तु यह दु:ख की बात थी कि बुन्देलखन्ड की अधिकांश रियासतें ऋण के बोझ से ग्रस्त थीं एवं निर्धन थीं। अत: शिक्षा का विकास उनकी प्राथमिकता नहीं थी। ब्रिटिश सरकार द्वारा यद्यपि शिक्षा के विकास के लिये कुछ प्रयास किये गये थे लेकिन बुन्देलखन्ड की आवश्यकताओं को देखते हुए यह प्रयास पर्याप्त नहीं थे। सरकार की शिक्षा सम्बन्धी योजनाओं का मूल उद्देश्य रियासती दरबारों को प्रभावित करना ही प्रतीत होता है। जागीरदारों एवं राजप्रमुखों के पुत्रों को उच्च शिक्षा के लिये डेली कालेज, इन्दौर भेजने की सरकार की योजना इसका ही प्रमाण है। साधारण छात्रों के लिये इस प्रकार के विशेष प्रयास सरकार द्वारा नहीं किये गये थे। लेकिन ब्रिटिश सरकार द्वारा नौगांव कालेज के प्रिंसीपल को विभिन्न रियासती स्कूलों के निरीक्षण का कार्य सौंपा

गया था जिससे निश्चित रूप से शिक्षा के स्तर का विकास हुआ। प्रतिवर्ष निरीक्षण दल द्वारा विभिन्न राज्य स्कूलों का निरीक्षण किया जाता था एवं स्कूलों का स्तर बेहतर बनाने के उद्देश्य से आवश्यक सुझाव भी दिये जाते थे। इन्हीं सुझावों के परिणामस्वरूप अनेक दरबारों ने अपने अपने क्षेत्र में शिक्षा के विकास में रूचि ली। अध्यापकों के वेतन में वृद्धि की गई। स्कूलों में पढ़ाई निश्चित पाठ्यक्रम के अनुसार कराई जाने लगी। प्रधानाध्यापकों के पद पर योग्य व्यक्तियों की नियुक्ति सुनिश्चित की गई। अध्यापकों एवं छात्रों में अनुशासन की भावना बढ़ी एवं छात्रों की पढ़ाई पर अधिक ध्यान दिया जाने लगा। ब्रिटिश सरकार के यह प्रयास अवश्य ही सराहनीय थे।

लड़कियों की शिक्षा पर अधिक ध्यान नहीं दिया गया था लेकिन जिन रियासती सरकारों द्वारा लड़कियों की शिक्षा के प्रबन्ध किये गये थे उन क्षेत्रो में लड़कियों की शिक्षा का स्तर अपेक्षाकृत सन्तोषजनक था। फिर भी रूढ़िवादी विचारों के कारण लोग लड़कियों को उच्च शिक्षा देने के पक्ष में नहीं थे। यदि सरकार द्वारा लोगों को स्त्री शिक्षा के महत्व की उचित जानकारी दी जाती तो लड़कियों की शिक्षा में और अधिक सुधार किया जा सकता था।

शिक्षा के अतिरिक्त बुन्देलखन्ड के विभिन्न राज्यों एवं ब्रिटिश सरकार द्वारा उपलब्ध कराई गई चिकित्सा सुविधाओं के बारे में जानने का प्रयास भी इस शोध प्रबन्ध में किया गया है। बुन्देलखन्ड के नौगांव क्षेत्र में ब्रिटिश सरकार द्वारा

अस्पताल की स्थापना करके एक अति प्रशंसनीय कार्य किया गया। धीरे-धीरे इस अस्पताल में अनेक सुविधाएं उपलब्ध करायी गयी। इस अस्पताल की स्थापना से नौगांव एवं आसपास के क्षेत्रों के निवासियों को चिकित्सा की आवश्यक सुविधाएं प्राप्त हुई। अस्पताल द्वारा नौगांव में मातृ एवं शिशु कल्याण के लिये सराहनीय कार्य किया गया। समय समय पर बुन्देलखन्ड में शिशु सप्ताह का आयोजन भी किया गया। इनसे जनता को लाभ हुआ। विभिन्न रियासतों द्वारा लोगों को मूलभूत चिकित्सा सुविधाएं उपलब्ध कराने के उद्देश्य से अपने अपने क्षेत्र में अस्पतालों एवं डिस्पेन्सरियों को स्थापना की गई। लेकिन इनके रख रखाव पर धन की कमी के कारण यथोचित ध्यान नहीं दिया जा सका। परिणामस्वरूप इनकी स्थापना के समय इनसे जिस लाभ की अपेक्षा की गई थी उतना लाभ प्राप्त नहीं हो सका। चिकित्सा जीवन की प्राथमिकता होने के कारण इन सुविधाओं को उपलब्ध कराने के सम्बन्ध में ब्रिटिश सरकार को रियासती दरबारों की अधिक सहायता करनी चाहिये थी। लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि ब्रिटिश अधिकारियों का उद्देश्य केवल इन अस्पतालों एवं डिस्पेन्सरियों पर अपना नियन्त्रण रखना था। वे इनके विकास के लिये चिन्तित नहीं थे। इसीलिये स्थापना के कुछ वर्षों पश्चात बहुत सी डिस्पेन्सरियों की स्थिति बिगड़ गई थी।

मिश्नरियों द्वारा भी बुन्देलखन्ड के विभिन्न स्थानों पर चिकित्सा सुविधाएं उपलब्ध करायी गयी थीं। यद्यपि चिकित्सा के दृष्टिकोण से इन मिश्नरियों का कार्य

अति सराहनीय था किन्तु इनका उद्देश्य चिकित्सा के साथ साथ धर्म प्रचार भी था। वे लोगों का हृदय जीत कर उन्हें धर्म परिवर्तन के लिये प्रेरित करना चाहती थीं। इसीलिये कुछ रियासतों द्वारा अपने क्षेत्र में इन मिश्नरियों द्वारा कार्य करने में आपत्ति की गई थी। इन सभी प्रयासों के बावजूद भी बुन्देलखन्ड के अनेक भागों में उचित चिकित्सा सुविधाओं का अभाव था।

19 वीं शताब्दी में बुन्देलखन्ड में सुनोरी चोरों के गिरोह चोरी के अपराध के लिये प्रमुख थे। सरकार द्वारा इन गिरोहों को पकड़ने के विशेष प्रयास किये गये। चोरी के अतिरिक्त यह क्षेत्र डकैती के लिये भी प्रसिद्ध हो गया था। इन डकैतों से न केवल लोगों को भय था बल्कि इनके द्वारा बढ़ती डकैतियों से ब्रिटिश सरकार भी चिन्तित हो उठी थी। सरकार द्वारा डकैतों को पकड़ने के अनेक उपाय किये गये। जिनके कारण बहुत से डकैतों को पकड़ा जा सका। इसके अतिरिक्त सरकार द्वारा सुदृढ़ न्याय व्यवस्था उपलब्ध कराने के उद्देश्य से नौगांव में पुलिस व्यवस्था का पुर्नगठन किया गया एवं नौगांव जेल के प्रबन्ध में सुधार किया गया। बुन्देलखन्ड एजेन्सी के विभिन्न ब्रिटिश न्यायालयों में समान अपराधों के लिये समान फीस सम्बन्धी नियमों को लागू करके ब्रिटिश सरकार द्वारा अति प्रशंसनीय कार्य किया गया।

अन्त में यह कहना गलत न होगा कि शिक्षा चिकित्सा एवं न्याय के सम्बन्ध में ब्रिटिश शासन में बुन्देलखन्ड में जो सुविधाएं उपलब्ध करायी गईं वे तत्कालीन

परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए ठीक ही थीं। यदि शिक्षा एवं चिकित्सा का पर्याप्त विकास नहीं हो सका था तो इसका एक मुख्य कारण क्षेत्र की निर्धनता एवं तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियां ही थीं जिससे स्थानीय दरबारों एवं लोगों द्वारा इनके विकास में पर्याप्त रूचि नहीं ली गई थी।

# BIBLIOGRAPHY

## HISTORICAL WORKS


| | | |
|---|---|---|
| 1. Andrew Gordon | : | Our India Mission, A Thirty History of the Indian Mission of the United Presbyterian Church. |
| 2. Anna Nixon, E. | : | A century of Planting:History of the American Mission of India. |
| 3. Bearce, George D. | : | British Attitudes Towards India 1784-1858. |
| 4. The Church Missionary Intelligencer, Extracts 1897-1904. | : | |
| 5. Dodewell, M.H. | : | The Cambridge History of India. |
| 6. Eddy, S. | : | India Awakening. |
| 7. The friends of India | : | Feb 12, 1857. |
| 8. Gibbs, M.R. | : | The Anglican Church in India (1600-1970) New Delhi, Indian Society for Propagation of Christian Knowledge, 1972. |
| 9. Heywood, John H | : | Our India Mission & our First Missionary, 1887. |
| 10. Lowrie, John C. | : | Two Years in Upper India. |
| 11. Mayhew, Arthur | : | Christianity & the Government of India. |

12. Mill & Wilson : History of British India Vol. 7.

13. Mishra A.S. : Nana Saheb Peshwa, Lucknow 1961.

14. Pathak, S.P. : Jhansi during the British Rule.

15. Russel, William Howard : My Indian Mutiny Diary.

16. Rev. Sherring, M.A. : The History of Protestant Mission of India.

17. Sharma, R.B. : Christian Missions in North India 1813-1913.

18. Sardesai, G.S. : New History of the Maratha, Vol.II.

19. Sen, S.N. : Eighteen fifty seven, the Publication Division, Government of India, 1957.

20. Tripathi, Motilal : Bundelkhand Darshan.

## GAZETTER

21. Atkinson, E.T. : Statistical Descriptive and Historical Account of the North West Provinces of India, Vol. I (Bundelkhand)] Allahabad, 1874.

22. Drake Brockman D.L. : Banda Gazetter, Allahabad, 1909.

23. Drake, Brockman D.L. : Jhansi; A Gazette, Jhansi, 1965.

24. Joshi E.B. : U.P. District Gazetter, Jhansi 1965.

25. U.P. District Gazetter : District Banda.

26. U.P. District Gazetter : District Hamirpur.

27. U.P. District Gazetter : District Jalaun.

28. Imperial Gazetter : United Provinces, Allahabad 1905.

29. Imperial Gazetter of India : Vol.II

30. Imperial Gazetter of India : Vol. IX.

## REPORTS & TREATIES

31. Aitchinson, C.U. : A collection of Treaties Engagements & Sanads, Vol. III & V, 1909.

32. American Board : First Ten Annual Reports.

33. American Board : "Centenary of America's Christian Connection with India:, Annual Report 1913.

34. Cadell, A : Settlement Report on the District of Banda(Exclusive of Karwi, Sub-Division) Allahabad, 1881, North West Provinces & Oudh Government.

35. The Charter Act of 1833 :

36. Calcutta Review Vol.XIII : January-June 1850.

37. Franklin. J. : Memoris of Bundelkhand, 1825.

38. Humphrees, M. : Final Report on the Revision of the Settlement of Banda District, Allahabad, 1909.

39. Impey, W.H.L. & Meston J.S. : Report on the second Settlement of Banda District (Excluding the Lalitpur Sub-division), North Western Provinces, Allahabad, 1982.

40. Jenkinson, E.G. : Report of the settlement of Jhansi District, Allahabad, 1871.

41. Ohio Yearly : Meeting minutes - 1909

42. Office Record : Mission Hospital Jhokanbagh, Jhansi.

43. Pim, A.W. : Final Settlement Report on the revision of the Jhansi District, including Lalitpur Sub-division, Allahabad, 1907.

44. Raw, W. : Final Report on the Revision of Settlement of the Hamirpur District, 1908.

## ORIGINAL FILES & OTHER RECORDS FROM BUNDELKHAND AGENCY

45. File No.17/1861 : Introduction of Eng. Language as official medium of correspondence with Native States.

| | | |
|---|---|---|
| 46. File No.3/1866-76 | : | Educational Progress in Schools of Datia & Charkhari State. |
| 47. File No1/1867 | : | Measures for suppression of Sunoria thieves of Orchha. |
| 48. File No. 2/1867-68 | : | Measures for suppression of Sunoria thieves of Orchha. |
| 49. File No. 26/1868-71 | : | Measures for suppression of Sunoria thieves in some of Statesof Bundelkhand Agency-History of Sunoria thieves. |
| 50. File No.5/1872-78 | : | Establishment of Rajkumar College at Nowgang in memory of Lord Mayo . |
| 51. File No.21/1871-80 | : | Appointment of Native Doctor and Compounder for Charitable Dispensary at Nowgang. |
| 52. File No.11/1872-84 | : | Purchase of House for Rajkumar College at Nowgang. |
| 53. File No.1/1878-84 | : | Inspection of Native State's School. |
| 54. File No.10/1886-88 | : | Proposed Increase of Police Establishment at Nowgang. |
| 55. File No.13/1894-99 | : | Docoity. |
| 56. File No10/1886-88 | : | Proposed increase of Police Establishment at Nowgang. |
| 57. File No.7/1888 | : | Political Intelligence Diary regarding treasury, toshakhana and Public Offices in Bundelkhand Agency. |

| | | |
|---|---|---|
| 58. File No.20/1894-1900 | : | Sonarias Professional Thieves. |
| 59. File No.2/1898 | : | Precaution against Plague. |
| 60. File No.56/1900-01 | : | Proposals of sending the boys of Chiefs and Jagirdars to Daly College, Indore. |
| 61. File No.60/1901-04 | : | Nowgong Jail - Reorganisation of Nowgong Jail Establishment. |
| 62. File No.2/1903 | : | Opening of Dispensary at Panna State - contain list of furnitures of The Bir Singh Dispensary - Suggestions for alterations of State Hospital Panna. |
| 63. File No.248/1904 | : | Primary Education in Native States of Bundelkhand Agency. |
| 64. File No.4/1907 | : | Introduction of subscription from European Officers for the support Of Nowgong Civil Hospital. |
| 65. File No.13/1909 | : | Opening of Dispensary at Padaria in Ajaigarh State. |
| 66. File No.33/1915 | : | Opening of Dispensary at Datia State. |
| 67. File No.4/1919 | : | Opening of Dispensary at Alipore. |
| 68. File No. 116/1921 | : | Amalgmation of post of Agency Surgeon in Bagelkhand with post of Agency Surgeon in Bundelkhand. |
| 69. File No.111/1923 | : | Opening of Zanana Hospital at Datia. |

| | | |
|---|---|---|
| 70. File No.111/1923 | : | Opening of Dispensary at Dhanwahi in Nagod State. |
| 71. File No.24/1924 | : | Opening of maternity and Child welfare Centre at Nowgong. |
| 72. File No.18/1930 | : | Organisation of Baby Week during 1930. |
| 73. File No.7/1931 | : | Opening of dispensary at Malehra (Chattarpur State). |
| 74. File No.12/1932 | : | Proposal for opening of Anti Rabic Centre at Nowgong Civil Hospital. |
| 75. File No.25/1938 | : | Medical Arrangement in Charkhari State. |
| 76. File No.49/1947 | : | Annual grant to Nowgong Civil Hospital. |
| 77. Introduction note to Bundelkhand Agency record, Vol.I 1865-1915. | | |